जमनालाल बजाज सेवा-ट्रस्ट-माला—२

स्मरणांजलि

गुरुजनो, मित्रों, संबंधियों तथा प्रशंसकों द्वारा
स्वर्गीय जमनालाल बजाज के
संस्मरण

●

संपादक-मंडल
काकासाहब कालेलकर,
हरिभाऊ उपाध्याय, शिवाजी भावे,
श्रीमन्नारायण, मार्तण्ड उपाध्याय

प्राक्कथन
बनारसीदास चतुर्वेदी

●

१ ९ ५ ७
सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

जमनालाल बजाज सेवा ट्रस्ट, बंबई
की ओर से
मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा
प्रकाशित

पहली बार : १९५७
मूल्य
सजिल्द अढाई रुपये
अजिल्द डेढ रुपया

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

प्रकाशकीय

स्व जमनालालजी बजाज के इष्टजनो का परिवार बडा विशाल था। उनकी इच्छा थी कि जमनालालजी के सस्मरणो का एक सग्रह प्रकाशित हो, जिसमें उन व्यक्तियो की भावनाएं समाविष्ट हो, जिन्हे उनके निकट सपर्क में आने का अवसर मिला था। वैसे जमनलालजी की विस्तृत जीवनी प्रकाशित हुई है, लेकिन उसमें वे सब प्रसग और घटनाए नही आ सकती थी, जो विभिन्न व्यक्तियो के पास सचित थी और जो जमनालालजी के जीवन के अनेक पहलुओ पर प्रकाश डालती थी। इष्टजनो की इच्छा को ध्यान में रख कर यह सग्रह प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें भारत के नेताओ, काग्रेसी तथा रचनात्मक कार्यकर्त्ताओ, मित्रो तथा कुटुबी जनो के सस्मरण एकत्र किये गए है। सारे सस्मरण बडी हार्दिकता के साथ लिखे गये है और उनमें कुछ तो इतने भावपूर्ण है कि पढकर आखें डबडवा आती है। कुछ बडे ही शिक्षाप्रद है और कुछ उनके अनुशासन, वात्सल्य, परदुख-कातरता, सेवा-परायणता, निर्भीकता आदि गुणो की मधुर झाकी प्रस्तुत करते है। कुल मिला कर पुस्तक उपयोगी बन पडी है।

यह प्रकाशन बहुत पहले पाठको को सुलभ हो जाना चाहिए था, लेकिन देर से भले ही निकल रहा हो, हमें इस बात का सतोष है कि इसके लिए बहुत-से सुदर सस्मरण प्राप्त हो गये।

पुस्तक का प्रकाशन 'जमनालाल बजाज, सेवा ट्रस्ट, बबई' की ओर से हो रहा है। लेकिन इसका प्रमुख विक्रेता 'सस्ता साहित्य मडल' है, 'सर्व सेवा सघ', प्रकाशन-विभाग, वाराणसी से भी इसकी प्रतिया मिल सकती है।

हमें खेद है कि स्थानाभाव के कारण बहुत-से सस्मरण हम प्रकाशित नही कर सके। आशा है, उनके लेखक क्षमा करेंगे।

हम उन लेखको के आभारी है, जिन्होने हमारे अनुरोध पर अपने सस्मरण लिख भेजने की कृपा की। पुस्तक का सुदर प्राक्कथन लिख देने के लिए हम श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी के आभारी है।

इस ग्रथ की तैयारी तथा सपादन आदि में जिन सज्जनो से सहायता मिली है, विशेष करके श्री यशपाल जैन तथा श्री राजबहादुरसिहजी से, उनके हम विशेष अनुगृहीत है।

यह स्मरणाजलि पाठको को पसद आई और उनके लिए प्रेरणा का छोटा सा भी स्रोत बनी तो प्रकाशको को सतोष होगा।

—मार्तण्ड उपाध्याय

दो शब्द

चि रामकृष्ण ने फिर से एक बार जमनालालजी के मेरे कुछ सस्मरण मैं लिखू ऐसा आग्रह किया। स्थूल स्मरण तो दिन-ब-दिन भूलता ही जा रहा हू। सूक्ष्म स्मरण सदैव मेरे मन में रहा है और भूदान-यज्ञ, सपत्तिदान-यज्ञ के रूप में वह प्रगट हो रहा है। जमनालालजी का स्मरण इन कामों में मुझे बल देता है, और मेरा विश्वास है, वह दुनिया के जिस किसी कोने में हों, इस काम के लिए शुभ कामना करते होगे।

पुस्तक तो, खैर, प्रकाशित होगी, फिर अप्रकाश में जायगी; लेकिन सद्भावना अनत काल काम करती रहेगी। स्थूल स्मृति के साधन मैंने अपने पास रखे नही। पत्र-टिप्पणिया आदि जो समय-समय पर लिखी गई, अग्नि-नारायण को अर्पित की गई। अब मेरे साथी मानो उसका प्रतिशोध ले रहे हैं और मेरे पत्रों का व्यर्थ सग्रह कर रहे हैं। मुझे आशा है, भगवान उनको सद्-बुद्धि देगा और भार लेकर असार मिटाने की शक्ति उनमें आयगी। सार जीवन में प्रगट होता है। वह स्वयमेव प्रकाशित है।

—विनोबा

पड़ाव : उकडाई
(तजावर)
२५-१-५७

प्राक्कथन

"आज का-सा अवसर मेरे जीवन में इससे पहले कभी नही आया था, और जहातक मै सोच पाता हू, आगे भी कभी नही आवेगा। . . .

"जमनालालजी की आख वद होते ही मैंने उनके बोझ का बँटवारा शुरू कर दिया है। आप देखेंगे कि जमनालालजी के कामो की जो फेहरिस्त आपको भेजी गई है, उसमे उनके आखिरी काम[1] को पहला स्थान मिला है। यह काम स्वराज्य प्राप्ति के काम से भी कठिन है। स्वराज्य मिलने से यह अपने-आप नही हो जायगा। यह सिर्फ पैसे से होनेवाला काम नही। मैं इस बात का साक्षी हू कि आजीवन अलौकिक निष्ठा से काम करनेवाले उस व्यक्ति ने किस अपूर्व निष्ठा से इस काम को शुरू किया था। उन्हें इस तरह काम करते देखकर एक दिन सहज ही मेरे मुह से निकल गया था कि जिस वेग से वह काम कर रहे है, उसे उनका शरीर सह सकेगा या नही? कही बीच ही में वह धोखा तो न दे जायगा! आज मेरा यह कथन भविष्य-वाणी साबित हुआ है—मानो उस समय भगवान ही मेरे मुह से बोल रहे थे। साराश यह कि यह काम पैसे से नहीं, एकनिष्ठा से ही होने वाला है।"

—महात्मा गांधी

दूसरे दिन की सभा में महात्माजी ने फिर कहा था :

"अगर जमनालालजी की मृत्यु से हम फायदा उठाना चाहते हैं तो हमें बहुत ज्यादा सावधान बनना होगा, बहुत ज्यादा सयम और त्याग सीखना होगा। . . .

"मैं अक्सर सोचता हू कि अगर हममें से हरएक को एक साल के फौजी अनुशासन का तजरबा रहता तो आज हमारी हालत कुछ और होती। जमनालालजी किसी फौजी विद्यालय में तालीम लेने नही गये थे। मगर उन्होंने खुद अपनी कोशिश से अपने अदर फौजी अनुशासन के गुण

---

[1] गोसेवा

पैदा कर लिये थे। वैसी ही तालीम हममें से हरएक को खुद लेनी होगी।

"इसलिए कल मैंने अपने से यह तय कर लिया था कि अगर इस मौके पर पैसा इकट्ठा करने के बजाय मैं आपको सावधान कर पाऊ तो वही मेरा सच्चा व्यापार होगा। मै फिर आपसे कहता हू कि आप अपने दिल को खूब टटोलकर देखिए और जहा कही जडता नजर आये, उसे उखाड फेंकिए और भविष्य के लिए यही सकल्प करके उठिए कि जो अच्छी सलाह आपको मिलेगी या अतर से जो प्रेरणा उठेगी उसके अनुसार आप तुरत काम में जुट जाया करेंगे। जमनालालजी के स्मारक की सच्ची स्थापना का इससे अच्छा या महत्वपूर्ण आरभ और क्या हो सकता है ?"

अगर इस पुस्तक 'स्मरणाजलि' की भूमिका के तौर पर केवल महात्माजी के उपर्युक्त वाक्य ही उद्धृत कर दिये जाते, तो इससे बढिया कोई चीज हो नहीं सकती थी। पर अच्छे-से-अच्छे प्रकाशको से भी कभी-कभी भूल हो जाती है और भाई मार्तण्डजी का यह आग्रह कि पुस्तक के लिए कुछ प्रारभिक शब्द मै लिख दू, इस भूल का साक्षात प्रमाण है।

इस महत्वपूर्ण पुस्तक को मैंने कई दिनतक उषाकाल में स्वाध्याय के तौर पर पढा और जितना मै आगे बढता गया, उतनी ही मेरी श्रद्धा भी उस स्वर्गीय महापुरुष के प्रति बढती गई। देश के अन्य सैकडो कार्यकर्ताओं की भाति मै भी निजीतौर पर स्वर्गीय जमनालालजी का ऋणी और कृतज्ञ हू। जब महात्माजी ने मुझे शातिनिकेतन से बुलाकर बबई मे रखा था, तो उसका खर्च डेड सौ रुपये महीने श्री जमनालालजी ने ही दिया था और तत्पश्चात् कई वर्षतक साबरमती-आश्रम में मेरे प्रवासी भारतीय सबधी कार्य के लिए उन्हींकी बबईवाली दुकान से ढाई सौ रुपये महीने आते थे। उन्हींकी दुकान से एक सौ रुपया उधार लेकर मैंने पूर्व अफ्रिका की यात्रा की थी और अपनी बबई-यात्राओ में तो मै उनके आदेशानुसार सदैव उन्हींकी दुकान पर ठहरा करता था।

इस ग्रन्थ को पढते हुए यह ज्ञात हुआ कि बडे-से-बडे आदमियों से लेकर छोटे-से-छोटे कार्यकर्ताओंतक को किस प्रकार उन्होंने अपना ऋणी बना लिया

था, बल्कि पूज्य काकासाहब के शब्दों में यों कहिए कि किस तरह वे उन सबके स्वजन बन गये थे।

श्रद्धेय राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने लिखा है :

"जब हम लोग इस कष्ट-निवारण (भूकम्प-सम्बन्धी कार्य) में लगे हुए थे, मेरे बड़े भाई बाबू महेन्द्रप्रसाद की मृत्यु से मैं व्यक्तिगत रूप से बड़ी विपत्ति में पड़ गया। उस समय जमनालालजी हमारे गांव में कई बार गये और केवल शब्दों द्वारा और साथ रहकर ही हमें सांत्वना नहीं दी, अपितु मेरे सारे कारोबार को सम्भालने का भार भी उन्होंने अपने ऊपर ले लिया। तब मैं कांग्रेस के अध्यक्ष-पद को स्वीकार कर सका। हमारा कारबार संभालना उस समय कोई सहज काम नहीं था, क्योंकि हम लोगों के ऊपर भारी ऋण का बोझ था। उससे हमको उस समय छुटकारा मिल गया और पीछे चलकर हम उनसे भी ऋण-मुक्त हो गये।"

बंधुवर सीतारामजी सेकसरिया ने जमनालालजी के जीवन की एक बड़ी हृदयस्पर्शी झांकी अपने लेख में दिखलाई है।

"१९३१ के गांधी-अर्विन-समझौते के बाद जबकि देश में चारों तरफ एक तरह से उल्लास, उत्साह और जोश की लहर-सी उठ रही थी, जमनालाल-जी को यह फिक्र थी कि आंदोलन की वजह से कितने कार्यकर्ता बीमार हो गये हैं? सरकार की दमन-नीति के प्रहार से कितनी संस्थाएं नष्ट हो गई हैं? मारपीट और गोलाबारी की बदौलत कितने आदमी अपंग और अपा-हिज हो गये हैं? उन सबसे मिलना चाहिए और उन्हें दिलासा देकर उनकी मदद करनी चाहिए। गुजरात, बंबई और वर्धा के आसपास के कार्यकर्ताओं से मिलने के बाद उन्होंने बंगाल जाने का विचार किया। मुझे पत्र लिखा कि फलानी तारीख को पहुंच रहा हूं। डाक्टर सुरेश बनर्जी और डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र घोष से मिलना है। सुरेशबाबू तो जेल में टी० बी० से बीमार हैं। दूसरे कार्यकर्ताओं से भी मिलना है। तुम्हें साथ चलना होगा।"

इसके बाद सेकसरियाजी ने सुरेशबाबू और जमनालालजी के मिलने का बड़ा ही हृदय-स्पर्शक चित्र खींचा है। उसे पाठक [illegible] में स्वतन्त्र देखेंगे ही। सेकसरियाजी ने लिखा है :

"जमनालालजी की निगाह में कार्यकर्ताओं का स्थान बहुत ऊंचा था। वह उनको अपने घर के लोगों से ज्यादा प्रेम करते थे। अपने साथ काम करनेवाले देश-सेवकों के दिल में अपने बर्ताव से, अपनी भावना से और अपनी कृतियों से उन्होंने यह विश्वास पैदा कर दिया था कि यदि किसी कार्यकर्ता को कोई शारीरिक, आर्थिक, पारिवारिक या सामाजिक तकलीफ हो तो वह उनकी हर तरह से मदद करेंगे। यही कारण है कि जमनालालजी के चले जाने से आज हजारों लोग यह अनुभव करते हैं कि उनका एक जबरदस्त सहारा जाता रहा।"

लगभग चार सौ पृष्ठों का यह ग्रंथ जमनालालजी के जीवन-चित्रों का एक ऐल्बम है, जो निस्सन्देह अत्यंत मनोहर है और जिसे देखते-देखते तबीयत नहीं भरती। इस ग्रंथ को पढ़कर हमारे मन में यह धारणा उत्पन्न होगई कि किसी महापुरुष के जीवन-चरित की अपेक्षा उसके विषय में संस्मरण-ग्रन्थ कहीं अधिक प्रभावशाली बन सकता है।

स्व जमनालालजी की पुत्री सौ० चि० मदालसा का लेख हमें अच्छा लगा है। वैसे उनकी पूज्य माताजी तथा भाइयों और बहनों के लेख भी काफी अच्छे बन पडे हैं और उनसे सेठजी के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इन लेखों के अच्छे अंशों पर हमने लाल स्याही से इसलिए निशान लगा दिये थे कि उन्हें भूमिका में उद्धृत किया जाय, पर पीछे गिनने पर वे स्थल इतने अधिक निकले कि उनको उद्धृत करने से एक छोटी-मोटी पुस्तिका ही बन जाती !

सेठजी निस्सन्देह कुशल व्यापारी थे—केवल आर्थिक जगत् के ही नहीं आध्यात्मिक क्षेत्र के भी, बल्कि यों कहना चाहिए कि उनका आर्थिक व्यापार भी मुख्यतया आध्यात्मिक क्षेत्र की सेवा के लिए ही अर्पित था। उनका रुपया किन-किन व्यापारों में लगा हुआ था, उसके जानने की इच्छा भी हमारे मन में कभी उत्पन्न नहीं हुई, पर इतना हम जानते हैं कि महात्माजी के कार्यों पर उनका जितना भी पैसा लगा, वही इस लोक और परलोक में भी सबसे अधिक मुनाफे का सौदा सिद्ध होगा, क्योंकि वह क्षेत्र ऐसा है, जहां का घाटा भी मुनाफा ही माना जाता है।

बापू ने लिखा था :

"यह मैं कैसे कहूं कि मुझे उनके जाने का दुःख नहीं हुआ ? दुःख होना तो स्वाभाविक था, क्योंकि मेरे लिए तो वही मेरी कामधेनु थे। आफत-मुसीबत हो तो बुलाओ जमनालालजी को, कुछ काम करना हो, कोई जरूरत आ पडी हो तो बुलाओ जमनालालजी को, और जमनालालजी भी ऐसे कि बुलाया नही और वह आये नही। ऐसे जमनालाल का दुःख कैसे न हो ?"

"मेरे लिए तो वही मेरी कामधेनु थे।" स्व. जमनालालजी को किसी प्रमाण-पत्र की आवश्यकता नही थी, उनके कार्य ही उनके सबसे बडे प्रमाण-पत्र थे, फिर भी महात्मा गाधीजी का यह एक वाक्य उनके समाधिस्थल या स्मृति-मंदिर पर लिखे जाने के लिए सर्वोत्तम सिद्ध होगा।

जितने विभिन्न क्षेत्रो के और तरह-तरह के छोटे-बडे आदमियो की श्रद्धाजलियाँ इस ग्रथ में इकट्ठी होगई हैं, उतनी शायद ही किसी अन्य व्यक्ति के लिए अर्पित होती। किसीका रेखाचित्र चित्रित करने अथवा सस्मरण लिखने में श्री श्रीप्रकाशजी को कमाल हासिल है। वह कोरमकोर प्रशसा न करके चरित्र का विश्लेषण भी करते है—मँजे हुए शब्दो में, तुली हुई भाषा में और अपनी स्वाभाविक शालीनता के साथ। अत्युक्तिमय प्रशसा या बेशुमार निंदा करना आसान है, पर तूलिका को इस खूबी के साथ चलाना कि छाया तथा प्रकाश का यथोचित सम्मिश्रण होता चले, किसी सिद्धहस्त चित्रकार का ही काम है और इस ग्रथ में दिये हुए श्रीप्रकाशजी के लेख में उनकी लेखनी का कौशल विद्यमान है।

श्री घनश्यामदासजी बिडला ने इस ग्रथ के ५९वें व ६०वें पृष्ठ पर जमनालालजी के जीवन की सूक्ष्म रूप में जो कहानी सुनाई है वह थोडे में बहुत कह देने की कला का नमूना है। जिस ग्रथ में सर्वश्री जवाहरलालजी, काकासाहब कालेलकर, दादा धर्माधिकारी, हरिभाऊ उपाध्याय प्रभृति लेखकों तथा सत्यनारायण, आबिदअली, मार्तण्ड उपाध्याय तथा शोभालाल गुप्त जैसे विभिन्न क्षेत्रो के प्रसिद्ध कार्यकर्ताओ की श्रद्धाजलिया एकत्र हो, उसकी भूमिका भला कोई क्या लिखेगा!

इस सग्रह के लेखो को लोग अपनी-अपनी रुचि और मनोवृत्ति के

अनुसार पसन्द करेंगे। मुझे जो लेख सबसे अधिक पसन्द आये हैं, वे हैं १. श्री दामोदर दास मूदडा का 'उनके वे शब्द' और २ श्री रिषभदास रांका का 'गो-सेवक'। सेठजी के निम्नलिखित शब्द हम सबके लिए एक सन्देश रखते हैं.

"एक व्यापारी के नाते मैं प्रतिवर्ष अपने जन्मदिन के अवसर पर अपना पूरा हिसाब जाँच लेता हूँ। अबतक की अपनी कमजोरियो में से मैं किन-किन को दूर कर सकता हूँ और अपनी मानसिक उन्नति के मार्ग में अब भी क्या-क्या रुकावटें हैं—इनका विचार करके, उनका इलाज ढूंढने की आदत मैंने डाल रक्खी है।" सेठजी का यह रूप मेरे सामने पहले कभी नहीं आया था। अमितगति आचार्य के 'सामायिक सार' में एक श्लोक आता है :

विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं मन वच. काय कषाय निर्मितं।
निहन्मि पापं भवदु खकारणं भिषग्विष मंत्रगुणैरिवाखिलम् ॥

यानी—"मैं निन्दा, आलोचना और घोर निन्दा द्वारा अपने सासारिक दु खो के कारण मन, वचन और शरीर द्वारा किये गए पापो का विनाश करता हूँ, उसी तरह जैसे कोई वैद्य मन्त्र-बल से विष का निवारण करता है।"

जैन लोगो द्वारा नित्यप्रति पढी जानेवाली इस पुस्तिका का नाम श्री जमनालालजी ने चाहे सुना हो या न सुना हो, पर इसके अनुसार कार्य अवश्य करते थे। आत्मचिन्तन तथा आत्मशुद्धि के अभ्यासी मनुष्यो के लिए सेठजी का यह उदाहरण अनुकरणीय है।

'गो-सेवक' नामक लेख में सेठजी का जो रूप सामने आता है, उसके सामने हमें नतमस्तक होना पडता है। धनी-मानी आदमियो के प्रति साधन-हीन व्यक्तियो के हृदय में एक प्रकार की घृणा होती है और ईर्ष्या भी; और आश्चर्य की बात यह है कि जो आदमी उन धनियो द्वारा उपकृत होते हैं, उनमें यह भावना और भी प्रबल हो उठती है। स्वय मुझमें इस प्रकार की अशोभनीय भावनाएँ थी, यह बात मुझे ईमानदारी और लज्जा के साथ स्वीकार करनी पडेगी। अब भी मेरा यह दृढ विश्वास है कि वह व्यवस्था ही शीघ्र-से-शीघ्र जड-मूल से बदल देनी चाहिए, जिसमें दो-चार दानवीर बन सकें और लाखो दान-पात्र। फिर भी इतना तो मानना ही पडेगा कि

वर्तमान परिस्थिति में उन साधन-सम्पन्न दानशील व्यक्तियो का यथोचित सम्मान होना चाहिए, जो केवल धन से नही, तन और मन से भी समाज-सेवा के कार्यों मे अपनेको खपा देते है। 'गो-सेवक' लेख को पढकर यह प्रतीत होता है कि जमनालालजी जीवन के कलाकार थे। जिस कौशल के साथ उन्होने अपने अंतिम दिन बिताये और जीवन को समाप्त कर दिया, वह लाखो में एकाध को ही प्राप्त होता है। सेठजी को मैंने भिन्न-भिन्न रूपो मे देखा था—आतिथ्य करनेवाले यजमान के रूप में, सहृदय दानी के रूप मे और राजनैतिक नेता के रूप में, पर वे सब रूप उनके अंतिम दर्शन के सामने नगण्य है। अपने अंतिम दिनो में एकाग्र-भाव से कपिला गाय की सेवा करनेवाले जमनालालजी का चित्र निस्सदेह उनका सबसे अधिक आकर्षक चित्र है। वह राजा दिलीप की गो-सेवा की याद दिलाता है, जिसका अत्यन्त मनोहर वर्णन महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश' में किया है। महात्मा गाधीजी ने कहा था—"आज तो गाय कगार पर खडी है। यदि वह डूबी तो हम भी—यानी हमारी सस्कृति भी—उसके साथ डूब जावेंगे।" यदि भारत में गो-माता और ग्रामीण सस्कृति की रक्षा हो सकी तो स्वर्गीय जमनालालजी की आत्मा निस्सदेह गो-लोक में असीम आनन्द का अनुभव करेगी।

जैसाकि मैं ऊपर कह चुका हू, मैं व्यक्तिगत रूप में सेठजी का ऋणी था। उनकी उदारता का क्या कहना! मैंने कई बार उनकी कठोर आलोचना की थी, पर उन्होंने कभी बुरा नही माना। जब वह मद्रास में हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति होनेवाले थे, तो निजी तौर पर मैंने उन्हें एक पत्र भेजकर इसका विरोध किया था। मेरा अनुरोध यही था कि उस वर्ष श्री काशीप्रसादजी जायसवाल-जैसे अंतर्राष्ट्रीय कीर्ति प्राप्त इतिहास-लेखक को इस पद पर प्रतिष्ठित करना चाहिए। श्री जमनालालजी ने अपने विनम्रतापूर्ण पत्र में लिखा, "आपका पत्र बहुत देर से मिला, तबतक गुरुजनो का आदेश मुझे मिल चुका था। अगर यह चिट्ठी पहले मिल गई होती तो जरूर इसपर विचार करता। फिर भी यह आशा तो रखता हू कि आपका सहयोग मिलेगा ही।" एकाध बार 'विशाल भारत' में भी उनकी आलोचना मुझे करनी पडी थी और इस ग्रथ को पढने के बाद मुझे विश्वास होगया कि मेरी आलोचना सर्वथा निराधार थी। शायद सेठजी के हृदय को क्षण भर

के लिए कुछ बुरा मालूम हुआ होगा, पर उन्होने मिलने पर कभी उसका जिक्र तक नही किया। इस प्रकार की निराधार आलोचनाओ को हँसी में उड़ा देने का उनका स्वभाव ही बन गया था।

पहली बार जब मै बबई गया था तो श्री नाथूरामजी प्रेमी के यहा ठहरा। इससे सेठजी नाराज हुए और मेरा सामान उठवाकर अपनी दुकान पर ले गये। इसके बाद तो उन्होने मुझे अन्यत्र कही ठहरने नही दिया।

एक दिन की बात तो मुझे विशेष रूप से याद आ रही है। गुजरात विद्यापीठ में मै पढा रहा था। न मालूम क्यो, मै उस दिन बडा अन्यमनस्क बैठा हुआ था कि इतने में बाहर से किसीने आकर कहा, "सेठ जमनालालजी आपको बुला रहे है।" वह विद्यापीठ में पधारे थे। मैने समझा शायद कोई आवश्यक कार्य होगा। ज्योही मै पहुचा, सेठजी ने कहा :

"कहो चौबेजी! लड्डू-पेडे का ठीक प्रबध तो है, या नही?" मुझे हँसी आगई। मैने कहा, "क्या इसीलिए मुझे बुलाया था?" वह बोले—

"अरे भाई! चौबे लोगो को और क्या चाहिए?" ऐसा कहकर वे हँसने लगे। मुझे भी खूब हँसी आई।

सेठजी के चले जाने से सैकडो ही कार्यकर्ताओ का सहारा चला गया और चौबे लोगो की भाषा में यदि कहा जाय तो हमारे तो एक श्रेष्ठ जिजमान ही उठ गये। आश्रम में प्रवासी भारतीयो की जो थोडी-बहुत सेवा मुझसे बन पडी, उसमे सेठजी का जबरदस्त हाथ था और तदर्थ मै उनका जीवन भर ऋणी रहूगा।

इस ग्रथ के प्राक्कथन के रूप में अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करने का जो अवसर मुझे मिला, उसे मै अपना परम सौभाग्य मानता हू।

१९, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली
दीपावली,
२२ अक्तूबर, १९५७

—बनारसीदास चतुर्वेदी

विषय-सूची

परिशिष्ट

स्मरणांजलि

: १ :
वह मेरी कामधेनु थे

मो. क. गांधी

कहा जा सकता है कि मेरे साथ जमनालालजी का सम्बन्ध करीब-करीब तभी से शुरू हुआ, जब से मैंने हिन्दुस्तान के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। उन्होंने मेरे सभी कामों को पूरी तरह अपना लिया था, यहातक कि मुझे कुछ करना ही नही पडता था। ज्योंही मैं किसी नये काम को शुरू करता, वे उसका बोझ खुद उठा लेते। इस तरह मुझे निश्चिन्त कर देना मानो उनका जीवन-कार्य ही बन गया था।

बाईस वर्ष पहले की बात है। तीस साल का एक नवयुवक मेरे पास आया और बोला, "मै आपसे कुछ मागना चाहता हू।"

मैंने आश्चर्य के साथ कहा, "मागो। चीज मेरे बस की होगी तो मै दूगा।"

नवयुवक ने कहा, "आप मुझे अपने देवदास की तरह मानिये।"

मैंने कहा, "मान लिया! लेकिन इसमें तुमने मागा क्या? दरअसल तो तुमने दिया और मैंने कमाया।"

यह नवयुवक जमनालाल थे।

वह किस तरह मेरे पुत्र बन कर रहे, सो तो हिन्दुस्तान-वालो ने कुछ-कुछ अपनी आखो देखा है। जहातक मै जानता हू, मै कह सकता हू कि ऐसा पुत्र आजतक शायद किसीको नही मिला।

यो तो मेरे अनेक पुत्र और पुत्रिया है, क्योकि सब पुत्रवत् कुछ-न-कुछ काम करते है, लेकिन जमनालाल तो अपनी इच्छा से पुत्र बने थे और

उन्होंने अपना सर्वस्व दे दिया था। मेरी ऐसी एक भी प्रवृत्ति नहीं थी, जिसमें उन्होंने दिल से पूरी-पूरी सहायता न की हो। और वे सभी कीमती साबित हुईं, क्योंकि उनके पास बुद्धि की तीव्रता और व्यवहार की चतुरता, दोनों का सुन्दर सुमेल था। धन तो कुबेर के भण्डार-सा था। मेरे सब काम अच्छी तरह चलते हैं या नहीं, मेरा समय कोई नष्ट तो नहीं करता, मेरा स्वास्थ्य अच्छा रहता है या नहीं, मुझे आर्थिक सहायता बराबर मिलती है या नहीं, इसकी फिक्र उनको बराबर रहा करती थी। कार्यकर्त्ताओं को लाना भी उन्हींका काम था। अब ऐसा दूसरा पुत्र मैं कहां से लाऊं?

अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए मैं आसानी से उनपर भरोसा कर सकता था, कारण कि जितना उन्होंने मेरे काम को अपना लिया था उतना शायद ही और कोई अपना पाया होगा।

उनकी बुद्धि कुशाग्र थी। वह सेठ थे। उन्होंने अपनी पर्याप्त संपत्ति मेरे हवाले कर दी थी। वह मेरे समय और स्वास्थ्य के संरक्षक बन गए। और यह सब उन्होंने सार्वजनिक हित की खातिर किया।

उनका सबसे बडा काम गोसेवा का था। वैसे तो यह काम पहले भी चलता था, लेकिन धीमी चाल से। इससे उन्हें संतोष न था। उन्होंने इसे तीव्र गति से चलाना चाहा, और इतनी तीव्रता से चलाया कि खुद ही चल बसे!

दूसरी चीज लीजिए। खादी के काम में उनकी दिलचस्पी मुझसे कम न थी। खादी के लिए जितना समय मैंने दिया, उतना ही उन्होंने भी दिया। उन्होंने इस काम के पीछे मुझसे कम बुद्धि खर्च नहीं की थी। इसके लिए कार्यकर्त्ता भी वे ही ढूंढ-ढूंढकर मेरे पास लाया करते थे। थोड़े में यह कह लीजिए कि अगर मैंने खादी का मंत्र दिया तो जमनालालजी ने उसको मूर्तरूप दिया। खादी का काम शुरू होने के बाद मैं तो जेल में जा बैठा। मगर वे जानते थे कि मेरे नजदीक खादी ही में स्वराज है। अगर उन्होंने तुरन्त ही उसमें रत होकर उसे संगठित रूप न दिया होता तो मेरी गैरहाजिरी में सारा काम तीन-तेरह हो जाता।

यही बात ग्रामोद्योग की थी। उन्होने इसके लिए मगनवाडी तो दी ही थी, साथ ही उसके सामने की कुछ जमीन भी वे मगनवाडी के लिए खरीदने का सकल्प कर चुके थे।

जमनालालजी के दूसरे काम सामने ही है। 'महिला-आश्रम' को ही लीजिए। यह उनकी अपनी एक विशेष कृति है। उन्हीकी कल्पना के अनुसार यह अबतक काम करता रहा है। जमनालालजी के सामने सवाल यह था कि जो लोग देश के काम में जुटकर भिखारी बन जाते है, उनके बाल-बच्चो की शिक्षा का क्या प्रबन्ध है? उन्होने कहा कि कम-से-कम उनकी लडकियो को तो यहा सरकारी मदरसो के मुकाबले अच्छी ही तालीम मिल सकेगी बस, इसी ख्याल से 'महिला-आश्रम' की स्थापना हुई।

बुनियादी तालीम और 'हरिजन-सेवक-सघ' के काम का भी यही हाल है। हिंदू-मुसलिम-एकता के लिए उनके दिल में खास लगन थी। उनके अन्दर साम्प्रदायिक भेद की बू तक न थी।

छुआछूत को हटाने, साप्रदायिकता से दूर रहने और सब धर्मों के प्रति समान आदर-भाव रखने की जो उनमें उत्कृष्ट वृत्ति थी वह उन्हें मुझसे नही मिली थी। कोई भी व्यक्ति अपने विश्वास दूसरो को नही सौंप सकता। यह हो सकता है कि जो विश्वास दूसरो में पहले से मौजूद हो, उन्हें प्रकट करने में कोई सहायक हो सके, किन्तु जमनालालजी के उदाहरण में तो मैं यह श्रेय भी नही ले सकता कि मैंने उन्हें इन विश्वासो को प्राप्त करने या उन्हें प्रदर्शित करने में सहायता पहुचाई। मेरे सपर्क में आने से बहुत पहले ही उनके ये विश्वास बन चुके थे और उन्होने इनका अनुकरण करना शुरू कर दिया था। उनके इन आतरिक विश्वासो की बदौलत ही हम एक-दूसरे के सम्पर्क में आये और हमारे लिए इतने सालो तक घनिष्ठ सहयोग के साथ काम करना सम्भव हुआ।

जिसको राजकाज कहते है वह न मेरा शौक था, न उनका। वे उसमें पडे, क्योंकि मैं उसमें था; लेकिन मेरा सच्चा राजकाज तो था रचनात्मक कार्य और उनका भी राजकाज यही था।

जहांतक मुझे मालूम है, मैं दावे से कह सकता हू कि उन्होंने अनीति से एक पाई भी नहीं कमाई, और जो कुछ कमाया उसे उन्होंने जनता-जनार्दन के हित में ही खर्च किया।

जबसे वे पुत्र बने तब से वे अपनी समस्त प्रवृत्तियों की चर्चा मुझसे करने लगे थे। अत में जब उन्होंने गोसेवा के लिए फकीर बनने का निश्चय किया तो वह भी मेरे साथ पूरी तरह सलाह-मशविरा करके ही किया।

जमनालालजी को छीनकर काल ने हमारे बीच से एक शक्तिशाली व्यक्ति को छीन लिया है। जब-जब मैंने धनवानो के लिए यह लिखा कि वे लोक-कल्याण की दृष्टि से अपने धन के ट्रस्टी बन जाय, तब-तब मेरे सामने सदा ही इन वणिक-शिरोमणि का उदाहरण मुख्य रहा। अगर वह अपनी सम्पत्ति के आदर्श ट्रस्टी नहीं बन पाये तो इसमें दोष उनका नहीं था। मैंने जान-बूझकर उनको रोका। मै नहीं चाहता था कि वे उत्साह में आकर ऐसा कोई काम कर लें, जिसके लिए बाद में शान्त मन से सोचने पर उन्हें पछताना पडे। उनकी सादगी तो उनकी अपनी ही चीज थी। अपने लिए उन्होंने जितने भी घर बनाये, वे उनके घर नहीं रहे, धर्मशाला बन गये। सत्याग्रही के नाते उनका दान सर्वोत्तम रहा। राजनैतिक प्रश्नो की चर्चा में वह अपनी राय दृढ़तापूर्वक व्यक्त करते थे। उनके निर्णय पुख्ता हुआ करते थे। त्याग की दृष्टि से उनका अन्तिम कार्य सर्वश्रेष्ठ रहा। वे किसी ऐसे रचनात्मक काम में लग जाना चाहते थे, जिसमें वे अपनी पूरी योग्यता के साथ अपने जीवन का शेष भाग तन्मय होकर बिता सकें। देश के पशु-धन की रक्षा का काम उन्होंने अपने लिए चुना था, और गाय को उसका प्रतीक माना था। इस काम मे वह इतनी एकाग्रता और लगन के साथ जुट गये थे कि जिसकी कोई मिसाल नहीं। उनकी उदारता में जाति, धर्म या वर्ण की सकुचितता को कोई स्थान न था। वे एक ऐसी साधना में लगे हुए थे, जो कामकाजी आदमी के लिए विरली है। विचार-सयम उनकी एक बड़ी साधना थी। वे सदा ही अपनेको तस्कर विचारो से बचाने की कोशिश में रहते थे।

उनके अवसान से वसुन्धरा का एक रत्न कम होगया है। उनको खोकर देश ने अपना एक वीर-से-वीर सेवक खोया है।

जिस रोज मरे, उसी रोज जानकीदेवी के साथ वे मेरे पास आनेवाले थे। कई बातो का निर्णय करना था, लेकिन भगवान् को कुछ और ही मजूर रहा। ऐसे पुत्र के उठ जाने से बाप पगु बनता ही है। यही हाल आज मेरा है।

यह मैं कैसे कहू कि मुझे उनके जाने का दु ख नही हुआ ? दु ख होना तो स्वाभाविक था, क्योंकि मेरेलिए तो वही मेरी कामधेनु थे। आफत-मुसीवत हो तो बुलाओ जमनालालजी को; कुछ काम करना हो, कोई जरूरत आ पडी तो बुलाओ जमनालालजी को, और जमनालालजी भी ऐसे कि बुलाया नही, और वे आये नही। ऐसे जमनालाल का दु:ख कैसे न हो ? लेकिन जब उनके किये कामो को याद करता हू और हमारे लिए वे जो सन्देश छोड गए हैं, उसका विचार करता हू तो अपना दु:ख भूल जाता हू।

जमनालालजी का स्मृति-स्तभ खडा करके हम उनकी याद को चिर-स्थायी नही बना सकते। स्तम्भ पर खुदे हुए शिलालेख को तो लोग पढकर थोडे ही समय में भूल जायगे, परन्तु जिस आदमी ने दुनिया के लिए इतना कुछ किया है, उसके काम को चिरस्थायी रखने का सकल्प कोई कर ले, तो वह उसका सच्चा स्मारक होगा।

•

जमनालालजी के बारे में लिखना बडा मुश्किल है। किसीका बाप मरे, किसीका भाई मरे तो उसपर कोई लेख कैसे लिखा जा सकता है ? कोई दूर का सम्बन्ध होता तो बहुत अच्छा लिख देता। पर उनके बारे में लिखना बडा कठिन है।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

: २ :

जिनके हम सदा ऋणी रहेंगे

राजेन्द्रप्रसाद

मुझे यह ठीक याद नही है कि पहले-पहल सेठ जमनालालजी से मेरी मुलाकात कब हुई, पर उनके सुखद आतिथ्य का मुझे जो पहले-पहल आस्वादन मिला, वह अच्छी तरह से याद है। १९१७ के दिसम्बर में कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ते में हुआ। महात्मा गांधी जब चम्पारन से कलकत्ता-कांग्रेस में पधारे (चम्पारन में उनके साथ काम करने का मुझे सुअवसर मिला था) उसी समय से हम एक प्रकार से अपनेको उनके कुटुम्ब का एक सदस्य मानने लगे थे। कलकत्ता-कांग्रेस के समय महात्मा गांधी के आतिथ्य का भार जमनालालजी ने लिया था। गांधीजी के साथ केवल मैं ही नही, बल्कि कतिपय और बिहारी-भाई भी कलकत्ते गये और जमनालालजी के अतिथि बनकर रहे। जिस प्रेम और प्रसन्नता के साथ उन्होने हम लोगों को पाहुना बनाकर रक्खा, उसका सुखद अनुभव, जहा हम दोनों एक साथ हुए, हमें बराबर मिलता रहा और उनके बाद भी उनकी सहधर्मिणी और उनके पुत्रो द्वारा हमें अब भी मिलता है। मैंने उस वक्त देख लिया कि उनको अतिथि-सत्कार में कितना सच्चा आनन्द मिलता था। यह अनुभव भारत के अनेकानेक राजनैतिक और सामाजिक सेवको का रहा है और जबसे महात्माजी वर्धा, सेवाग्राम में जाकर रहने लगे तब से बहुतेरी कांग्रेस की कार्यकारिणी बैठकें वही होती रही। जब भी वहा जाता, उनका अतिथि होकर रहता, यहातक कि उनके अतिथि-भवन में हम लोगो के कमरे बन गये थे, जिनमें जाकर हम बराबर रहा करते थे और जो हम लोगो के नाम से मशहूर होगये थे। इसमें वे केवल आनन्द ही नही पाते थे, बल्कि एक कर्त्तव्य-पूर्ति भी अनुभव करते थे।

पर यह समझना गलत होगा कि उन्होने बडे नेताओ के आतिथ्य को ही अपना एक बडा काम मान लिया था। उनके नजदीक बडे और छोटे सबकी बराबर पहुच थी और कितने ही सार्वजनिक कार्यकर्त्ता अपने दुख-सुख की बात लेकर उनके पास पहुचते और वे प्रसन्नतापूर्वक सलाह से और जहा जरूरत होती धन से, सहायता करते। उन बडी रकमो के अलावा, जो उन्होने प्रकाश रूप से सार्वजनिक कामो और सस्थाओ को दी, कई तरह के गुप्तदान, जिनको पानेवाले के अलावा शायद ही दूसरा कोई जानता हो, अनगिनत थे। उन्होने धन होते हुए भी अपने जीवन को इतना सादा बना लिया था और खर्च पर इतना नियन्त्रण रखते थे कि पैसे-पैसे का खयाल करते थे। इसका एक सादा उदाहरण यह है कि जब कभी उनको सफर करना होता (बराबर ही करते थे), तो कभी तीसरे दरजे से ऊपर के दरजे में नही जाते थे। इतना ही नही, जहा कही भी पोस्टकार्ड से काम चलता हो, वहा लिफाफा डाक से नही भेजते थे, तार की बात ही कौन कहे! हम लोग भी कभी उनके पास अपने पहुचने की सूचन तार द्वारा देते तो वे टोक देते थे और कह देते थे कि जब आने की तिथि निश्चित ही थी तो पत्र द्वारा सूचना दी जा सकती थी और तार का खर्च बचाया जा सकता था। इस तरह की मितव्ययिता सार्वजनिक कामो के लिए और भी सख्ती के साथ बरती जाती क्योकि जमा किये हुए पैसो को वे अपनी कमाई से अधिक मूल्यवान समझते थे और उसको खर्च करने में बडी सख्ती किया करते थे। इसलिए केवल काग्रेसी लोगो को ही नही, बल्कि सब आदमियो को उनपर बहुत विश्वास था और काग्रेसी अपने किसी भी काम के लिए, चाहे वह काग्रेस के अधिवेशन के लिए हो, चाहे किसी भी रचनात्मक कार्य के लिए हो, पैसे जमा करने का भार व्यापारियो से, चाहे वे बम्बई में रहते हो अथवा कलकत्ते में, नागपुर या कानपुर में, उनपर ही रहता था। और काग्रेस का कोई भी काम रुपयों की कमी की वजह से रुकने नही पाता था। इस तरह की व्यापार-बुद्धि उन्होने कम उम्र से अपने निजी व्यापार में लगे रहने के कारण तीव्र कर ली थी और इसी वजह से व्यापार में जबतक वे लगे रहे वैसी सफलता और

ख्याति प्राप्त करते रहे जैसी व्यापार छोडकर सार्वजनिक कामो में वे लगें, उसमें उन्होंने पाई ।

जबसे वे सार्वजनिक काम में आये, उन्होने व्यापार के काम से अपने को आहिस्ता-आहिस्ता अलग किया और इसका भार अपने दूसरे लोगो पर छोडा । इतना जरूर रहा कि महत्वपूर्ण बातो के सबध में उनके कर्मचारी उनसे सलाह कर लिया करते थे । यद्यपि उन्होंने अपने कारबार को सिकोडने का प्रयत्न किया और आदेश दिया, पर वह बहुत कम नही हुआ और सम्पन्नता बढती ही गई, जिसका लाभ देश को और देश के सेवको को अनेक रूपो में मिलता गया । जमनालालजी की बडी खूबी यह थी कि जिससे उनका परिचय-प्रेम हो जाता, उसको वे अपने परिवार का ही बना लेते और उसके सुख-दुःख की सभी बातें जानने की इच्छा रखते और कोशिश करते रहते, साथ ही जहा आवश्यकता होती, केवल सलाह-मशविरे से ही नही दूसरे तरीको से भी खुले दिल और खुले हाथ सहायता करते । न मालूम कितने ऐसे लोग होगे, जिनकी उन्होंने तगी के समय मे पैसे से मदद की होगी, चाहे वह दान के रूप में हो, चाहे कर्ज के ।

ये गुण अक्सर नही पाये जाते । दूसरे बहुतेरे दानी है, पर कुछ दान पूजी के रूप में लगाये जाते है, कुछ अहसान जताने के लिए दिये जाते है, कुछ दया की भावना से प्रेरित होकर । ऐसे विरले ही मिलेंगे, जो दान को दान नही समझते हो और लेनेवाले पर अहसान नही रखना चाहते हो । जमनालालजी उन विरले लोगो में से थे, जो इसको अपना सद्भाग्य समझते थे कि उनको पैसे-जैसे तुच्छ साधन द्वारा सेवा करने का सुअवसर मिला ।

इससे भी बढकर उनका यह गुण था कि जिस काम को वह लेते, उसमे इतने तन्मय हो जाते कि दिन-रात, सोते-जागते, उठते-बैठते उसको सोचा करते और उसको आगे करने के प्रयत्न में मनसा, वाचा, कर्मणा लगे रहते ।

उनकी रुचि विशेषरूप से रचनात्मक काम मे थी, पर राजनीति से वह बिल्कुल अलग नही रहते थे । उनका विश्वास था कि भारत की परिस्थिति में बडी-से-बडी सेवा भी रचनात्मक कार्य द्वारा ही की जा सकती है और

इसलिए महात्मा गाधी के रचनात्मक कार्यक्रम में उनको पूर्ण और अटल विश्वास था। उनके अनेकानेक अगो की पूर्ति में वह बराबर लगे रहे। रचनात्मक कार्यक्रम मे उन्होने सबसे पहले खादी का काम हाथ में लिया। महात्माजी के जेल चले जाने के बाद खादी का काम चलाने के लिए खादी-बोर्ड की स्थापना हुई और उसको 'तिलक-स्वराज्य-फण्ड' से खादी का काम चलाने के लिए पैसे दिये गए। उन पैसों से और कुछ ऊपर से जमा करके उन्होंने सगठित रूप से खादी के काम का सगठन किया। इसके पहले भी कुछ काम हो रहा था और बोर्ड की स्थापना के बाद वह सगठित रूप से सारे देश में जहा-कही काम हो सकता था और कार्यकर्त्ता मिल सकते थे, आरम्भ हुआ। इसलिए जब 'अखिल भारतीय चर्खा-सघ' का जन्म कई बरसो बाद हुआ तो उसे एक सगठित खादी-सस्था मिली, जिसका परिवर्द्धन और प्रसार इसका मुख्य कर्त्तव्य हुआ। जमनालालजी चर्खा-सघ की कार्य-कारिणी के आजीवन सदस्यो में थे और उसमें उन्होंने व्यवहार-बुद्धि, मितव्ययता और सगठन-शक्ति का पूरा परिचय दिया।

जबसे अछूतोद्धार और हरिजन-सेवा पर विशेष जोर दिया जाने लगा, उसमें कार्यरूप से तत्पर और तल्लीन होकर वह काम करने लगे। उनका यह काम केवल परोपदेश में सीमित नही रहा, अपने जीवन में, अपने परिवार के जीवन में, उन्होंने इसे इतनी सफलतापूर्वक उतारा कि उनके यहा किसी प्रकार की भी कोई कमी महसूस नही कर सकता था। केवल हरिजनो के घरो तक आने-जाने के काम तक ही सीमित न रखकर, स्वय उनके बीच में वह रहे भी और यह बात एक स्थान पर ही नहीं, बल्कि जहा-जहा वह गये, अपने आचरण से और हरिजनो के साथ मिल-जुलकर काग्रेस और सामाजिक कार्यकर्त्ताओ के लिए एक उदाहरण और आदर्श उपस्थित किया।

हिन्दी-प्रचार में उनकी दिलचस्पी आरभ से ही रही और इसके लिए पैसे से, शरीर से और प्रचार से उन्होंने काफी मदद दी।

जब महात्मा गाधी ने गोसेवा का व्रत निर्धारित किया तो वह उसमें

सबसे पहले आगे बढे। यह काम उनके जीवन का अतिम महत्वपूर्ण काम था, जिसमें उन्होंने दिल से जी-तोड परिश्रम किया। इस प्रकार और कामो के सगठित प्रसार में उनकी कुशाग्र बुद्धि और व्यापारिक अनुभव उपयोगी सिद्ध होते, पर अभाग्यवश उनका देहावसान होगया।

ऊपर मैंने रचनात्मक कार्य के साथ उनका घनिष्ठ सबध बताया है पर ठेठ राजनैतिक क्षेत्र में, अग्रेजी उन्होंने कम पढी थी, इसलिए अग्रेजी में व्याख्यान देना अथवा कुछ स्वय लिख लेना वह उचित नही समझते थे, पर अपने विचारो को बताकर दूसरो से प्रस्तावो तथा स्मरण-पत्रों और लेखो को भी लिखवा लेते थे और अग्रेजी के प्रारूपो के प्रत्येक शब्द को बहुत बारीकी से समझने और जानने की कोशिश करते थे। कही-कही तो दूसरो द्वारा तैयार प्रारूपों में बारीक-से-बारीक अर्थ निकाल लेते व अच्छे-से-अच्छा सुझाव भी दे देते। इस तरह १९२१ से ही, जब से वह वर्किंग कमिटी के सदस्य हुए, उसके सभी निश्चयो में उनका पूरा सहयोग रहा।

असहयोग का प्रस्ताव स्वीकृत होते ही उन्होने देख लिया कि बहुतेरे लोग अपनी वकालत इत्यादि छोडेंगे और उनमें ऐसे लोग भी होंगे, जिनके निर्वाह-व्यय का किसी-न-किसी प्रकार से बन्दोबस्त करना होगा, इसलिए उन्होंने अपनी ओर से बडी रकम इस काम मे लगाने के लिए घोषित कर दी। यह उन्होंने 'तिलक स्वराज्य फड' के लिए पैसे जमा करने के निश्चय के बहुत पहले ही कर दिया था और इसमें सन्देह नही कि सारे देश में बहु-तेरे लोगो को इस कोष से निर्वाह-व्यय मिला और वे निश्चित होकर काम कर सके।

वह गाधीजी के अनन्य भक्त थे और इसलिए उनके द्वारा निर्धारित कार्यक्रम में उनका अटल विश्वास था। इस कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण अग यह था कि उस समय के सविधान के अनुसार जो विधान-सभाए बनें उनकी सदस्यता के लिए किसीको न तो उम्मीदवार होना चाहिए और न मत देना चाहिए। जब महात्माजी के जेल चले जाने के बाद विधान-सभाओ में जाने या न जाने के प्रश्न पर जोरो का वाद-विवाद उठा तो वह बहुत

वोटों से विरोध का समर्थन करते रहे। अब यह देखा कि कांग्रेस के अन्दर दो मत हो गये और कुछ लोगों का रचनात्मक काम में इतना जबरदस्त विश्वास नहीं था, जितना यह जरूरी समझते थे, तब उन्होंने 'गांधी-सेवा-संघ' नामक संस्था की स्थापना की, जिसमें विशेष करके वे लोग लिये गए, जो रचनात्मक कार्य करना चाहते थे। हालांकि इस संस्था को विशेष करके रचनात्मक काम के लिए बनाया गया था और उसको ठेठ राजनीति से अलग रखा गया था, तो भी जब 'स्वराज्य पार्टी' की स्थापना हुई तो उसपर आक्षेप किया गया कि यह एक राजनैतिक दल है। यह आक्षेप बिल्कुल निराधार था। यह संस्था रचनात्मक काम में ही लगी रही, यद्यपि उसके सदस्य व्यक्तिगत रूप से राजनीति से बिल्कुल अलग नहीं रहे। उदाहरणार्थ, सरदार वल्लभभाई पटेल और मैं बराबर इस संस्था में रहे, कांग्रेस का काम भी किया और रचनात्मक काम भी, पर इस संस्था का उपयोग कभी कांग्रेस में हमने अपने विचारों के समर्थन के लिए नहीं किया। १९२३ में जबलपुर में राष्ट्रीय झंडे को लेकर सरकार से अनबन हो गई और नागपुर में सत्याग्रह भी आरंभ किया गया। इसका नेतृत्व जमनालालजी जबतक बाहर रहे, करते रहे, और उनके जेल चले जाने के बाद श्री विट्ठलभाई पटेल और सरदार वल्लभभाई पटेल ने नेतृत्व किया और सफलतापूर्वक समाप्त किया।

जब-जब कांग्रेस ने सत्याग्रह छेड़ा, वह उसमें शरीक हुए और जेल की सजा भी उन्होंने भोगी। उनकी बड़ी उत्कट इच्छा थी कि महात्मा गांधी वर्धा में जाकर रहें। १९३० के सत्याग्रह के पहले वहांपर जो आश्रम कायम किया गया था उसमें महात्माजी जाकर कभी-कभी कुछ दिनों के लिए ठहरा करते थे। पर उनका मुख्य स्थान साबरमती का सत्याग्रह-आश्रम ही था। जब १९३० के सत्याग्रह के समय नमक-सत्याग्रह के लिए साबरमती से महात्माजी अपने अनुयायियों के साथ पैदल-यात्रा के लिए निकले थे, उन्होंने घोषणा की थी कि या तो वह स्वराज्य लेकर ही आश्रम में लौटेंगे, नहीं तो नहीं, और जब उस आन्दोलन के फलस्वरूप स्वराज्य की प्राप्ति नहीं हुई तो फिर वह साबरमती-आश्रम में नहीं गये और वर्धा में

जाकर रहने लगे, जहा जमनालालजी ने अपने बगीचे के एक मकान में उनको ठहराया, जो पीछे चलकर 'मगनवाडी' के नाम से मशहूर होगया और कुछ दिनो के बाद सेवाग्राम में जाकर, जो उस समय 'सेगाव' के नाम से मशहूर था, नया आश्रम कायम किया और गाव का नाम भी बदलकर सेवाग्राम कर दिया गया। कुछ दिनो तक महात्माजी महिला-आश्रम में ठहरे थे, जिसकी स्थापना जमनालालजी ने ही की थी। उसके बाद से अन्त तक सेवाग्राम का आश्रम ही महात्माजी का निवास-स्थान बना रहा, यद्यपि उनके अतिम कई महीने वहा से बाहर ही बीते और दिल्ली में उनका स्वर्गवास हुआ। इस तरह जमनालालजी की यह इच्छा पूरी हुई और वर्धा बापू का निवास-स्थान बना।

मैं स्वय वर्किंग कमेटी की बैठको के अलावा भी वर्धा बहुत जाया करता था और वहा अपने स्वास्थ्य के कारण महीनो रहा करता था, क्योकि वहा का जलवायु मेरे स्वास्थ्य के अनुकूल पडता था और जमनालालजी का प्रेम मुझे वहा खीच ले जाता था। सभी चीजो का उन्होंने प्रबध कर रखा था, साथ ही महात्माजी और जमनालालजी के सहवास का अवसर भी मिलता था।

जिस समय सेवाग्राम-आश्रम बना, वहा सडक नहीं थी। मुश्किल से हम लोग बैलगाडी से वहा आया-जाया करते थे। आहिस्ता-आहिस्ता पक्की सडक बन गई। जमनालालजी के उत्साह और आग्रह से सेवाग्राम रचनात्मक संस्थाओ का केन्द्र बन गया। जमनालालजी की यह आदत थी कि सभी चीजों को बहुत बारीकी से देखा करते थे और जिन सस्थाओ के साथ उनका संबंध हो जाता था, उनकी सभी बातो की देख-रेख किया करते थे।

जब सन् १९३४ की जनवरी में बिहार में भयकर भूकम्प आया तो वहा बडे पैमाने पर सेवा और सहायता का काम आरभ किया गया। महात्मा गाधी वहा गये। जमनालालजी भी पहुचे और कई महीनो तक रह कर इस काम में बहुत ही परिश्रम से उन्होंने मदद की। काम फैला हुआ था और इस बात का हमेशा खयाल रखा जाता था कि कही किसी बात में

फिजूलखर्ची न होने पाये। उसकी जिम्मेदारी बाहर से आये हुए तीन आदमियो ने अपने ऊपर ले ली—सेठ जमनालाल बजाज, आचार्य कृपालानी, और जे सी कुमारप्पा। जमनालालजी की प्रेरणा से कई अनुभवी कार्यकर्त्ता भी गये, जो गाव में बहुत दिनो तक रहकर सेवा करते रहे। सेठजी की कार्यकुशलता का अनुभव तो हम लोगो को पहले से ही था, उस विपत्तिकाल मे हम और भी देख सके।

जब हम लोग इस कष्ट-निवारण के काम में लगे हुए थे, मेरे बडे भाई बाबू महेन्द्रप्रसाद की मृत्यु से मैं व्यक्तिगत रूप से बडी विपत्ति में पड गया। उस समय जमनालालजी हमारे गाव में कई बार गये और केवल शब्दो और साथ रहकर ही हमें सान्त्वना नहीं दी, अपितु मेरे सारे कारोबार को सभालने का भार उन्होने अपने ऊपर ले लिया। तब मैं काग्रेस के अध्यक्ष-पद को स्वीकार कर सका। हमारा कारबार सभालना उस समय कोई सहज काम नही था, क्योकि हम लोगो के ऊपर भारी ऋण का बोझ था। उससे हमको उस समय छुटकारा मिल गया और पीछे चलकर हम उनसे भी ऋण-मुक्त होगये।

जमनालालजी बहुतेरे सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओ के साथ घनिष्ठ सबध रखा करते थे और जिससे उनका सम्पर्क हो जाता था, उसके दु ख-सुख, उसकी समस्याओ और उसकी दिक्कतो से अपनेको परिचित कर लेते थे और यथासाध्य सहायता करते थे। इस प्रकार बहुतेरे घरो में उन्होने लडके-लडकियो की शादी ठीक कर देने और करा देने में बहुत सहायता की। सरदार वल्लभभाई ने, जो अत्यन्त विनोदी थे और लोगो को अक्सर ऐसे नाम दिया करते थे, जिनको सुनकर लोग हँसा करते थे, जमनालालजी को 'शादीलाल' का नाम दे दिया था।

मेरे एक मित्र स्व० मथुराबाबू बराबर मेरे साथ आया-जाया करते थे। वर्धा भी वह बराबर मेरे साथ रहा करते थे। उनको शतरज खेलने का शौक था और जमनालालजी को भी। मैं भी कुछ शतरज खेल लेता हू, पर मथुराबाबू जैसा मुझे उसका चाव नही था। वर्धा में अक्सर

सेठजी से उनकी शतरंज की बाजी होती। जमनालालजी चतुर शतरंज खेलनेवाले थे और अक्सर वही जीता करते थे। मै स्वय नहीं खेलता था, पर तटस्थ निरीक्षक की तरह खेल देखा करता था और कभी बीच-बीच में जिधर जी चाहा, कुछ चालें सुझा दिया करता था। इसका फल यह होता कि चाहे कोई जीते या हारे, मै न जीतता था, न हारता था।

खाने के समय जब सब लोग बैठते थे तो हमेशा इस बात का मजाक हुआ करता था कि यद्यपि जमनालालजी सबको खूब खिलाते-पिलाते है और आराम से रखते है, पर कजूसी बहुत करते है। इस मजाक में भी बहुत करके सरदार ही हिस्सा लिया करते थे।

आज जमनालालजी के गुणो के साथ ये विनोदपूर्ण सस्मरण भी याद आते है और उनकी याद करके कभी हँसी आती है और कभी उनका अभाव महसूस करके हृदय भारी हो जाता है।

: ३ :

सगे भाई

वल्लभभाई पटेल

जमनालालजी ने प्रतिज्ञा की थी कि वे रेल या मोटरगाडी मे नही बैठेंगे। उनकी प्रतिज्ञा १५ तारीख को समाप्त होनेवाली थी। उसके बाद उन्होंने हजीरा में आकर मेरे साथ विश्राम लेने का वादा किया था। इसके बदले वे अपने अनन्त विश्राम में चले गए। इससे अच्छी मौत हो नही सकती। परन्तु कहावत है—'सैकडो को मरने दो, पर सैकडो के पालक को नही।' देश के विभिन्न भागो के हमारे सैकडो कार्यकर्त्ता अपनी झोपडियो में बैठे मूक आँसू बहा रहे होगे। बापू ने सच्चा बेटा खोया। जानकीदेवी और परिवार ने सच्चा शरणदाता, देश ने सच्चा सेवक, काग्रेस ने एक शाही स्तम्भ, गौ ने अपना सच्चा मित्र, कितनी ही सस्थाओ ने अपना सरक्षक और हम सबने तो प्यारा सगा भाई खो दिया। मै बडी शून्यता और एकाकीपन अनुभव करता हू।

: ४ :

उनकी जगह लेनेवाला कोई नहीं

जवाहरलाल नेहरू

सन १९१९ में भारत के लंबे इतिहास में एक नये युग की शुरुआत हुई। इससे पहले भारत में ही नही, बल्कि विदेशो में भी गाधीजी काफी प्रख्यात हो चुके थे। पर सन् १९१९ में तो वे एक तेज सितारे की तरह भारत के विशाल रगमच पर चमक उठे। लाखो लोगो की श्रद्धा के केन्द्र तो वे बन ही चुके थे। साथ ही इस समय तक जुदा-जुदा प्रवृत्तियोवाले श्रद्धालु लोगो का एक बडा मजमा भी उनके आसपास आ जुटा था।

हमारा यह जमघट बडा अजीबोगरीब था। हम लोग एक-दूसरे से बिल्कुल अलग थे। हमारी पृष्ठ-भूमिया अलग थी, जीवन-प्रणालिया अलग थीं, विचार-धाराए भी अलग थी। लेकिन इसके बावजूद हममे कुछ-न-कुछ समानता जरूर रही होगी, जो हमें उस अद्भुत विभूति की ओर बरबस खीचती थी।

उस समय गाधीजी के नजदीक आने और उनके गिने-चुने आत्मीय जनो में निकट का स्थान पानेवालो में जमनालाल बजाज एक थे। जहातक मेरा खयाल है, उनसे मेरी पहली मुलाकात सन् १९२० के काग्रेस-अधिवेशन में हुई थी। गाधीजी के नेतृत्व में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन में सहयोगियो के तौर पर काम करते हुए हम अकसर मिलते रहे और हमारा परिचय काफी घनिष्ठ होता गया। स्वभावत हम एक-दूसरे से बहुत भिन्न थे और मुमकिन है कि दूसरी परिस्थितियो में यह घनिष्ठता पैदा होने का मौका ही न आता। मेरे खयाल से हमने एक-दूसरे की कीमत समझी और हमारा आपसी प्रेम और आदर आहिस्ते-आहिस्ते बढता ही गया। जमनालालजी के प्रति निश्चय ही मेरा आदर बढ गया और प्रेमवश मैं उनको एक निकट का पारिवारिक व्यक्ति समझने लगा। हमारी विचार-प्रणालिया भिन्न होने के बावजूद मैं अपने घरेलू तथा सार्वजनिक मामलो में सलाह लेने अक्सर उनके

पास जाया करता था, क्योकि मैंने यह देख लिया था कि वह बडे ध्येय-निष्ठ और व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे।

हम दोनो अपने-अपने दृष्टिकोण से गाधीजी को श्रेष्ठ तथा महान व्यक्ति मानते थे। उनके नेतृत्व में उनके साथ ही हम दोनो भी एक ही ध्येय की साधना में बढते गये। जिस महान आन्दोलन में हमने हिस्सा लिया उसके कई पहलू थे, और सभी ढग के लोग उसकी ओर आकर्षित हुए। उसमें भारत की अनगिनत जनता थी। बुद्धिजीवी और समाजवादी, जमीदार और किसान, पूजीपति और मजदूर, व्यापारी और कारीगर, सभी थे। एक अजीब मेला था। सबका समावेश करनेवाले उस आन्दोलन में हम सबने अपना-अपना छोटा-बडा हिस्सा अदा किया। यह कहना मुनासिब होगा कि जमनालालजी इस आन्दोलन में एक विशेष और अनोखी प्रतिभा लेकर आये। हममें से लगभग सभी लोग औरो की तरह ही थे। हमारे बिना शायद काम चल भी जाता, पर जमनालालजी तो अपने ढग के एक ही थे। उनके-जैसे और लोग इस आन्दोलन में उनकी-सी निष्ठा के साथ शरीक नहीं हुए थे। इस वजह से वे हमारे लिए और भी कीमती थे। सत्य के प्रति निष्ठा और कर्तव्य-परायणता के कारण वे हमारे प्रिय बन गये थे।

•

ज्योही मैं सभामच पर चढा, मुझे जमनालालजी की मृत्यु की खबर सुनाई गई। मुझे बिल्कुल विश्वास नहीं हुआ। मैंने सोचा—कुछ ही दिन हुए तब तो मैं उनसे मिला था और उन्हें जीवन और शक्ति से परिपूर्ण पाया था। उनके दिल में सार्वजनिक कार्य की कई समस्याए थी। वह कैसे मर गये ? पर मेरा विश्वास टिक न सका, क्योंकि इस दु:सवाद का समर्थन जगह-जगह से होता गया। तब तो मुझे अचानक जो आघात पहुचा, उसका पार नही रहा। रह-रहकर मन दूर वर्धा में पहुच जाता था, जो जमनालालजी से अभिन्न बन गया था। २२ बरस से सार्वजनिक जीवन में, मित्रता में और घरेलू मामलो में भी मेरा उनका घनिष्ठ सपर्क था।[1]

---

[1] १८ दिसम्बर १९३३ को नेहरूजी ने जमनालालजी को जो पत्र

इस बात को महसूस करते हुए तकलीफ होती है कि अपने उस प्यारे दोस्त की सलाह अब मुझे न मिला करेगी। यो तो हमारे यहा कई राजनीतिज्ञ है और प्रसिद्ध है, जिनकी सेवा और सार्वजनिक कार्य का लेखा अच्छा है, लेकिन जमनालालजी उनमे एक ही थे और उनकी जगह भर सकनेवाला दूसरा कोई न रहा। इस भयकर सकट-काल में उनको खो बैठना तो एक ऐसा प्रहार है, जिसे भूला नही जा सकता।

लिखा था, उससे पारस्परिक घनिष्ठता की बडी सुखद झाकी मिलती है। वह पत्र इस प्रकार है

"आप हमारे लिए जो कुछ कर रहे है उसके बारे मे यदि मै अपनी कृतज्ञता आपके प्रति प्रदर्शित करू तो, आशा है, आप उसे अनुचित न समझेंगे। आप कहेंगे कि दोस्तो और भाइयो के बीच ऐसी जाहिरदारी नही होनी चाहिए। कुछ हद तक यह सही है, मगर फिर भी कमला और मैं, दोनो महसूस करते हैं कि इसमें कोई जाहिरदारी की बात नही है और हमे आपके प्रति उस तमाम प्रेम, चिन्ता और ध्यान के लिए, जो आप हमारी सहायता के लिए और हमें अपने कुछ चिन्ता-भार से छुडाने के लिए, काम मे ला रहे है, आपके प्रति अपनी कृतज्ञता दिखानी ही चाहिए। आपके आने से और जो कुछ कार्रवाई आपने यहा की है, उससे हमारा दिल बहुत हल्का हो गया है।"

: ५ :

बापू के पांचवें पुत्र

महादेव देसाई

श्री जमनालालजी के एक जीवन-चरित-लेखक ने जब गाधीजी मे पूछा कि उनका जीवन-चरित लिख सकते हैं कि नही, तब गाधीजी ने उत्तर दिया, "सामान्य नियम तो यही है कि जीवित मनुष्यो की जीवनी लिखना उचित नही समझा जाता है, परन्तु मुमुक्षु की जीवनी तो लिख सकते हैं, क्योकि उसमें से कुछ-न-कुछ नीति की शिक्षा मिलती है और श्री जमनालालजी को मैं मुमुक्षु या आत्मार्थी मानता हू।"

जमनालालजी को ईश्वर ने धर्मवृत्ति जन्म से ही दी थी। इस धर्मवृत्ति का दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक विकास होता गया। जो दैवी सम्पत्ति मोक्ष देने वाली होती है उस दैवी सम्पत्ति के बहुत-से लक्षण उनमें थोडे-बहुत अश में सदा ही से दिखाई देते थे। अवसर आने पर और भी अधिक प्रकट होने लगे और वे उनमें विशेष रूप से दृढ होने लगे।

गरीब मा-बाप के यहा सीकर नाम की रियासत में एक बगैर कुएवाले निर्जल गाव मे बचपन गुजारा। बडी मुश्किल से बच्छराज सेठ ने उनको गोद लिया। लडका गोद देने पर उनके माता-पिता ने जन-कल्याण के लिए यह सौदा किया और बच्छराज सेठ ने यह बालक लेने के बदले मे गाव में एक बडा पक्का कुआ बनवा दिया। तबसे यह बालक बच्छराज सेठ का हुआ और वर्धा चला गया। बचपन में रोज इनको एक रुपया दुकान से मिलता था। इसीमें से बचा-बचाकर इन्होने जो धन इकट्ठा किया उसमें से सौ रुपये का सोलह वर्ष की छोटी उम्र में ही एक छापेखाने को दान दिया।[1] उन्होंने एक दफा कहा था कि यह सौ देने में मेरी छाती ऐसी फूली कि

[1]यह दान १९०६ में लोकमान्य तिलक के 'केसरी' पत्र का हिन्दी-

वैसी कभी लाख देने में भी नही फूली । इस समय भी भोग-विलास में इनकी रुचि न थी। सत्तरह वर्ष की छोटी उम्र में किये हुए उनके एक और कार्य में दैवी सम्पत्ति के करीब-करीब सब लक्षण—अभय, अहिंसा, सत्य, शांति, तेज, क्षमा और धृति—मौजूद थे। भावी जमनालालजी का उसी एक प्रसंग में पूरा-पूरा दर्शन होता है। उनके यह नये पिता बड़े क्रोधी थे। जरा-जरा-सी बात में उनका मिजाज विगड़ जाता था और हर किसी आदमी का अपमान कर बैठते थे। एक दिन इन्होंने जमनालालजी का भी वैसा ही अपमान किया और अपनी दी हुई धन-दौलत के छीन लेने की धमकी दी और बड़े कठोर वचन कहे। १७ वर्ष के जमनालालजी ने उस समय दृढ़ता, किन्तु नम्रता के साथ बच्छराजजी को एक पत्र[१] लिखा। सारी सम्पत्ति पर से अपना अधिकार उठा लेने का यह त्याग-पत्र-सा था।

पितामह का क्रोध पिघल गया, वे गद्‌गद् कण्ठ से अपने पौत्र को मनाने गये, उसे समझाया। जमनालालजी माने। वे बच्छराजजी के होकर रहे, किन्तु अर्थ को अनर्थ मानकर रहे (अर्थमनर्थं-भावय नित्य)। यह धन अपना नही, पराया है—लोकहित के लिए है—उनको इस भावना का पहला पाठ सिखानेवाले उनके ये पितामह थे, जिन्होंने उन्हें गोद लिया था। इसका सम्पूर्ण रहस्य उन्होंने बाद में अपने उस पिता से समझा, जिसे उन्होंने गोद लिया था।

• •

बच्छराजजी सवा चार लाख रुपये छोड़ गये थे, परन्तु जमनालालजी ने अपनी व्यापार-दक्षता से, जो उन्होंने किसी विद्यालय में पढ़कर नहीं, वरन् अनुभव से प्राप्त की थी, चार से चौबीस लाख कमाये। और इन चौबीस लाख कमाने में असत्य से जितने दूर वह रहे, उतना कदाचित् ही कोई दूर रहा होगा।

मस्करण नागपुर से निकालने का तय हुआ, तब उसे दिया गया था।

[१] यह पत्र 'पाचवें पुत्र को बापू के आशीर्वाद' नामक पुस्तक के ५१९ पृष्ठ पर देखिए।

जिस विवेक से उन्होंने धन कमाया, उसी विवेक से उन्होंने अपने धन का दान दिया। लाखो रुपया देकर 'सर' हो सकते थे। प्रवाह के अनुसार युनिवर्सिटी स्कॉलरशिप देकर और सरकार को सरकारी सस्थाओ के स्थापनार्थ धन देकर वे मान पा सकते थे, परन्तु असहयोगी होने के पहले से उनमें सच्ची विवेक-बुद्धि से व्यवहार चलाने का स्वभाव था। हा, यह बात ठीक है कि असहयोग ने उनका क्षेत्र बढा दिया। वे अपने ११ लाख रुपये का दान देने में बहुत विवेकपूर्ण रहे। सर जगदीशचद्र बोस की विज्ञान-शाला के लिए ३५,०००) दिया और काशी विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के लिए ५१,०००) का दान दिया। इसीसे उनके विवेक और दूरदर्शिता का पता लग जाता है। ११ लाख पये के दान मे से केवल दो लाख के करीब उन्होंने अपने समाज के लिए दिया। मुसलमानो को भी २१ हजार का दान दिया।

• • •

असहयोगी होने से पहले से ही वह बडी निर्भयता का व्यवहार करते रहे। गवर्नर ने एक बार उन्हें दरबार मे बुलाया और इस अवसर पर एक विशेष पोशाक पहनकर जाने की उनको सूचना मिली। उन्होंने वह पोशाक पहनने से इकार कर दिया। आखिरकार उनसे कहा गया कि वह जिस तरह चाहें, आवें। गवर्नर को पार्टी देने के समय भी उन्होंने कलक्टर को साफ कहला भेजा कि अडे, मास या शराब न दिया जायगा। भारत-सचिव मिस्टर माटेग्यु जिस समय भारतवर्ष में आये थे, दरभगा के महाराजा सनातन-धर्मियो का एक शिष्ट-मडल उनके पास ले जाना चाहते थे। जमनालालजी ने उनको लिखा कि यदि आप लोग भारत-सचिव के सामने यह माग रक्खें कि लश्कर के लिए जो गोवध होता है वह बन्द हो जाय तो मैं शिष्ट-मडल में शामिल हो सकता हू। महाराजा दरभगा ने यह बात स्वीकार नही की और इसलिए जमनालालजी उस शिष्ट-मडल में सम्मिलित नही हुए। बर्दवान के महाराजा ने जमीदारो के शिष्ट-मडल में सम्मिलित होने का उनको न्यौता भेजा, परन्तु इसको खुशामदियो का शिष्ट-मडल समझकर वह उसमे सम्मिलित नही हुए। रेल में सफर करते समय भी 'टामियों' से न डरकर

उन्हें डांट दिया करते थ और एक असभ्य यूरोपीयन को तो एक दफा लात मारने को भी तैयार होगये थे। यह सब उनकी असहयोग के पहले की निडरता के नमूने है।

* * *

सेवा द्वारा मोक्ष पाने की इच्छा उनकी पहले ही से थी। एक ब्रह्म-मार्गी सन्यासी का सत्सग कई वर्षों से वह करते आये। उनमें निर्भयता, वीरता, धर्मबुद्धि और सेवाभाव तो पहले ही से मौजूद थे, परन्तु गाधीजी के सत्सग से वे और विस्तृत होगये। ससार के प्रत्येक व्यवहार में हर काम को वे धर्म की तराजू पर तौल लेते। असहयोगी होने पर नये-नये सिद्धान्तों के पालन करने का भार बढा और उनकी सत्यनिष्ठा ने उनके सम्मुख कई एक नई-नई समस्याए खडी कर दी। टाटा-कम्पनी मुलशी पेटावालो पर अत्याचार कर रही है तो फिर उस कपनी के शेयर मैं कैसे रख सकता हू ? कलकत्ता के व्यापार के कारण बार-बार अदालत में जाना पडता है तब फिर वहा का व्यापार बन्द ही क्यो न कर दू ? मै अस्पृश्यता में विश्वास नही रखता हू, यह लोगो को किस तरह बताऊ ? बहुत-से रीति-रिवाजो को मैं बुरा समझता हू तो फिर लडकी के विवाह में ही उनको तिलाजलि क्यो न दे दू ? एक छोटी-सी बात है, परन्तु यहा बिना लिखे जी नही मानता। खादी का व्रत खद्दर पहनने में है, परन्तु जो चरखा-सघ के सदस्य है और रात-दिन खद्दर का प्रचार करते है, वे दूसरे कामो के लिए भी खद्दर को छोडकर और दूसरे कपडे का उपयोग किस प्रकार कर सकते है ? वर्धा में एक नया ही प्रश्न खडा हुआ। घर में ५०-१०० निवाड के पलग थे। वैसे घर में श्रीमती जानकीबाई और बालक सभी नखशिख खद्दर पहनते थे और सूत भी कातते थे, परन्तु किसीको इस निवाड का कभी ध्यान नही आया। जमनालालजी ने कहा कि यह मिल के सूत के निवाडवाले पलग काम में लाने की क्या जरूरत है ? व्यवहार-कुशल जानकीदेवी ने कहा, "आपके लिए हाथ से काते हुए सूत की निवाड का पलग आया जाता है, परन्तु घर में बहुत-से पलगो की

निवाड है, उसको व्यर्थ नष्ट न कीजिए। परन्तु जमनालालजी ने निश्चय कर लिया था कि घर में मिल के सूत की निवाडवाले पलग नही रखेंगे।

• • • •

उनकी असहयोग की प्रवृत्ति आज ससार को विदित है। राय बहादुर और आनरेरी मेजिस्ट्रेटी को तिलाजलि देकर देश के खजाची बनकर महासभा की कार्यकारिणी-समिति में काम किया। अपना व्यापार-धन्धा कम करके तीन वर्ष तक देश में भ्रमण किया। नागपुर-सत्याग्रह का सचालन करते हुए स्वय जेल गये। हिन्दू-मुसलमानो के झगडे में मुसलमानो को बचाने में स्वय जख्मी हुए। खद्दर के काम का व्रत धारण किया और गोरक्षा का प्रश्न हाथ में लिया। गोरक्षा और खद्दर का वाणिज्य —वैश्य के इन दोनो धन्धो को—उत्साहपूर्वक उठा लेने के लिए मारवाडी-समाज से आग्रह किया।

राजनीति में पडने की उन्हें कोई जरूरत न थी। काग्रेस के कोषाध्यक्ष के नाते काग्रेस के धन की रक्षा करके वे चुपचाप बैठे रह सकते थे, किन्तु उन्हें तो काग्रेस का यश-रूपी धन भी उतना ही प्रिय था। इसलिए त्याग और कष्ट-सहन में भी वे किसी काग्रेसवादी से पीछे न रहे। कई बार जेल गये और तीसरे दर्जे के कैदी की अनेक मुसीबतें सही। उनकी श्रद्धा अन्धश्रद्धा न थी। वे दृढतापूर्वक मानते थे कि शुद्ध धर्म में ही शुद्ध अर्थ भी समाया हुआ है। उनकी श्रद्धा को इसी विश्वास का बल प्राप्त था। इसलिए जब दूसरो की श्रद्धा डगमगाने और धुधली होने लगती थी, उनकी जगमगा उठती थी। इसी श्रद्धा के कारण उन्होने उन दिनो ढाई लाख रुपए रचनात्मक काम के लिए निकाले। जब गाधीजी छ साल की सजा भुगत रहे थे तभी 'गाधी सेवा-सघ' की स्थापना भी की थी। वे राजनीति में दिलचस्पी लेते थे, लेकिन दिल से यह मानते थे कि राजनीति अच्छे-अच्छो को फिसलानेवाली सीढी है, अतएव उनकी अपनी रुचि सदा राजनीति में प्राण फूकनेवाले रचनात्मक कार्यों में ही रहा करती थी। अपनी इस रुचि के फलस्वरूप उन्होने अनेक रचनात्मक प्रवृत्तियो का बडे उल्लास के साथ पोषण किया। 'गाधी-सेवा-

संघ' की बात सब जानते है। सन् '२० से सत्याग्रह-आश्रम भी चल रहा था और उसमें विनोबा के समान साधु-पुरुष का सहयोग उन्हें मिला था। वे स्वय खादी और चर्खा-सघ के धुरन्धर बने और इस कार्य में अपने धन के उपरान्त अपनी कुशलता, व्यापार-पटुता और व्यवस्था-शक्ति का भी पूरा सहयोग किया। हरिजन-आन्दोलन में शामिल होते उन्हें कुछ समय लगा, लेकिन जब एक बार निश्चय कर लिया तो फिर पूरी तरह उसमें रम गये और हरिजनो को इस हद तक अपनाया कि सनातनी मारवाडियो को उनसे सौ योजन दूर रहना पडा, हिन्दुस्तान में हरिजनो के लिए सबसे पहला मन्दिर उनका खुला और अपने सेवाग्राम की सारी आमदनी उन्होने गाव के हरिजनो के लिए दे डाली! कौमी एकता को इस तरह साधा कि अनेक मुसलमान उनके अपने बन गये, खानसाहब-जैसो को उन्होने अपना भाई बना लिया, और रैहानाबहन, गोमतीबहन व खुरशेदबहन-जैसी बहनो को बहन बनाया। एक बार दगा मिटाने की कोशिश में बुरी तरह मार भी खाई। ग्रामोद्योग के लिए तो उन्होने अपनी वह जबर्दस्त जायदाद दान में दे डाली, जो आज 'मगनवाडी' के नाम से प्रसिद्ध है। स्त्रियो की स्थिति को सुधारने के लिए एक आदर्श 'महिला-आश्रम' खडा करने में उन्होने अपना तन-मन-धन सबकुछ लगा दिया। कोई कसर न रक्खी। हिन्दुस्तानी अथवा राष्ट्र-भाषा के प्रचार में भी पूरी तरह हाथ बटाया और अत में अपना सर्वस्व गोमाता के चरणो में चढा दिया।

लेकिन यह गिनती क्यो? रचनात्मक कार्यक्रम का कोई अग ऐसा न था, जिसमें उन्होने रस न लिया हो और पूरी तरह हाथ न बटाया हो। यदि मनुष्य को सेवा से छलकता हुआ ऐसा जीवन मिले तो वह भगवान से और क्या चाहे? यह सेवा-रूपी यशोधन उन्हे मिला ही था। किन्तु जमनालालजी को फिर भी अतृप्ति रहा करती थी। सत्य का विचार और न्याय की वृद्धि उनमें इतनी तीव्रतर हो चुकी थी कि उन्हें अपने राई-से दोष पहाड-से प्रतीत होते थे और सबकुछ छोडकर शात जीवन बिताने की चर्चा वे प्राय किया करते थे। गाधीजी ने उन्हें पुत्रवत् स्वीकार किया था, इसलिए उनसे वे

अपना एक भी विचार गुप्त न रखने थे और सच्चे दिल से मानते थे कि इसी प्रकार वे उनके वास्तविक पुत्र बन सकेंगे। गांधीजी ने भी उनको अपना पुत्र बनाने में कोई कसर न रक्खी।

उनकी सच्ची सौदागरी याद आती है। धनिक लोग कई हैं, जो परिश्रम करते हैं और धन कमाते हैं। बुद्धिजीवी बुद्धि से धन और यश कमाते हैं। हरेक शख्स कुछ-न-कुछ सौदा कर लेता है, समाज के साथ सौदा कर लेता है, कुछ भगवान के साथ भी कर लेता है, और भगवान् "ये यथा मां प्रपद्यते तांस्तथैव भजाम्यहम्" के न्याय से उसे उसका फल देता है। पर जमनालालजी ने बडा जबरदस्त सौदा किया। उन्होंने गांधीजी को मोल लिया। सन् १९१६ की बात है, जब वे कोचरब नामक स्थान पर, जहां पहले साबरमती-आश्रम था, आये थे। साबरमती-आश्रम के तब कोई मकान नहीं थे। कोचरब गांव में किराये का बंगला था। उसमें आश्रम था। जमनालालजी ने बापूजी से आग्रह करके कहा, "वर्धा में आइए, वहां आश्रम स्थापित कीजिए।" बापू ने उस समय नहीं माना। उन्होंने कहा, "मैं गुजराती हूं, गुजरात में रहकर ही मैं अधिक सेवा कर सकता हूं। गुजरात की सेवा द्वारा भारत की सेवा करूंगा।" जमनालालजी वापस चले आये। बाद में उनके पुत्र बने, दान दिया, जेल गये, सर्वस्व का समर्पण करने तक तैयार हुए। आखिर '३४ में बापू मान गये और वर्धा में आकर रहे, बल्कि यह कहूं कि '३४ में बापू बिक गये। पार्वती ने शिवजी की आराधना कठिन तपश्चर्या से की थी, तपश्चर्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने उनसे कहा था—"क्रीतस्तपोभिः" अर्थात्—अपने तप से तुमने मुझे मोल लिया है। वैसे ही मीरा ने किया, कबीर ने किया। जमनालालजी ने अपना सर्वस्व देकर गांधीजी को मोल लिया, मानो भगवान् को ही मोल लिया। कबीर, मीरा मध्यकालीन भक्त हैं, जमना-लालजी आधुनिक भक्त कहे जा सकते हैं।

सन् '३६ में हम सेवाग्राम आये। सेवाग्राम आने का निश्चय करने के पहले जमनालालजी से बडी चर्चा हुई। उन्होंने बापूजी से कहा, "आपको बडे कष्ट सहन करने पडेंगे। वहां किसी किस्म की सुविधा नहीं है। कोई

साधन नहीं है। हम सब आपका काम करेंगे। आप फजूल अपनेको गाव में गाड़ना चाहते हैं?" बापू ने कहा, "मै अपना कर्तव्य जानता हू। मुझे गाव की सेवा करना है। आजतक योंही खेल खेलते रहे—गावो की कोई सेवा न की। सच्ची ग्राम-सेवा करना हो तो ग्रामीण बन के करना है।" जमनालालजी हँस-कर बोले, "आप क्या ग्रामीण होनेवाले है? आपके लिए वहा भी मोटर आवेंगी, वहा भी तार आवेंगे।" गाधीजी तो बिक चुके थे, अत उनके साथ हँसी-मजाक करने का अधिकार जमनालालजी ने ले लिया था। गाधीजी ने जवाब दिया, "इन सबके आते हुए भी हम ग्रामीण रहेंगे।" जमनालालजी की जब एक न चली तब उन्होंने बनिये के साथ बनिये की दलील की, "देखिए, आप वहा जाकर बैठेंगे तो आपके सब मेहमानो को रखना, वहा पहुचाना, यह सब भार मुझपर पडेगा। कबतक मेरे सर पर बोझ बढाते जाना है?" गाधीजी ने कहा, "वह तो जिस रोज मुझे वर्धा बुलाया, सोच लिया होगा न!" जमनालालजी हार गये, पर हार में उनकी जीत थी। अपने जीवन के शेष काल में गाधीजी ने जमनालालजी का गाव ही अपने प्रयोगो के लिए पसन्द किया। यह जमनालालजी के जीवन का सबसे बडा सौदा था।

ईसामसीह के जीवन में एक कथा है। एक नौजवान उसके पास जाता है। उससे ईसा ने कहा, "अगर तू पूर्ण होना चाहता है तो जा, और जो कुछ तेरे पास है उसे बेच डाल और उसे गरीबो को बाट दे। तुझे स्वर्ग में खजाना मिल जायगा। तब आ और मेरा अनुसरण कर।"

पर जब उस नवयुवक ने यह कहते सुना तो वह क्षुब्ध होकर चला गया, क्योंकि उसके पास बडी सपत्ति थी!

ईसामसीह को वह नौजवान मोल नही ले सका। जमनालालजी आसानी से गाधीजी को मोल ले सके। जिस रोज मृत्यु हुई उस रोज मुझे टेलीफोन पर सुनाते थे, "मुझे बडे-बडे मेहमानो की क्या गरज है? मेरे पास तो जगत का सबसे बडा मेहमान पडा है।" उन्होंने तो हीरा पाया था। "हीरा पायो गाठ गठयायो बार-बार वाको क्यों खोले?"

आत्मिक आहार द्वारा जमनालालजी की मोक्ष-साधना को पोषण प्राप्त हुआ था, वे आत्मार्थी बने थे। प्रतिदिन वे आत्मनिरीक्षण करते थे और प्राय प्रतिदिन विनोबा या बापू के सामने अपना हृदय खोलकर रख देते थे।

अन्त में इसी साधना के लिए उन्होंने एक असाधारण त्याग किया। उनके जिस बगले में बड़े-बड़े अतिथि आकर रहते थे—कांग्रेस के अनेक सभापति, लार्ड लोथियन, माननीय ताई-ची-तामो, मिस्र के शिष्ट-मण्डल के सदस्य आदि-आदि—अपने उस बगले को उन्होंने छोडा, गाव से दूर थोड़ी जमीन लेकर वहा अपने लिए एक कुटिया बनवाई, 'गोपुरी' उसका नाम रक्खा और वहा रहकर अपना शेष जीवन गोसेवा में बिताने का संकल्प किया। कोई भी काम हो अधूरा तो उसे कभी करना ही नही, करना तो पूरा ही करना, यह उनका मन्त्र था।

दिलीप राजा ने तो नन्दिनी की सेवा करके उसे अपनी कामधेनु बनाया। क्या जमनालालजी को कामधेनु मिली ? मैं सोचता हू, जिसकी सेवा करते-करते उन्हें ऐसी धन्य मृत्यु प्राप्त हुई, उसे कामधेनु कहा जा सकता है। किन्तु यह सब कहा जाय या न कहा जाये—स्वय जमनालालजी तो लोक-सेवक से बढकर गोसेवक बनने तक गाधीजी के लिए कामधेनु ही थे। अगर वे न होते तो गाधीजी को वर्धा आने की जरूरत न थी। उनके बिना गाधीजी सेवाग्राम में बसने की हिम्मत न करते। एक वही थे, जो बाहरी दुनिया के साथ गाधीजी के सबध को स्वय जीती-जागती जंजीर बनकर जोडे रहते थे। उनके महाप्रयाण ने इस जजीर को तोडकर गाधीजी का और बाहरी दुनिया का अनमोल धन लूट लिया।

... ...

फोन आया कि जमनालालजी अचानक बेहोश होगये है। गाधीजी तुरन्त उन्हें देखने को चल पडे, लेकिन उनके वर्धा पहुचने से पहले ही खबर मिली कि जमनालालजी चले गये।

कल रात उन्होंने फोन पर मुझसे देर तक बातें की। चीन के तारणहार श्री चाग काई शेक के वर्धा आने पर उन्हें कहां टिकाया जाय, क्या-क्या

प्रबंध किया जाय, वगैरा अनेक बातें मुझसे पूछी और उन्हें अपने पास ही टिकाने की उत्कण्ठा प्रकट की। फिर हंसते-हंसते बोले, "बापू मुझसे गोसेवा का काम लेना चाहते हैं, मगर वह हो कैसे ? काम तो ऐसे-ऐसे आते रहते हैं।" मैंने कहा, "लेकिन आपको तो संसार के एक महापुरुष को अपना अतिथि भी बनाना है, और गोसेवा भी करनी है; फिर क्या हो ?" इसपर आप बोले, "मेरे यहां तो संसार का सबसे बडा महापुरुष पहले से अतिथि बनकर बैठा है। क्या वह काफी नहीं ?" फिर कहने लगे, "अब मैं गोपुरी जाता हू।" मैंने कहा, "अगर वे आये तो आपको कुछ दिनों के लिए गोपुरी छोड जानकीपुरी में आना पडेगा।" बोले, "गोपुरी भी तो आज जानकीपुरी बन गई है, क्योंकि जानकीदेवी गोपुरी में ही आ बसी है।" इस प्रकार उन्होंने अपने सदा-सुलभ हास्य के साथ रात बातें की। सवेरे भी वही प्रसन्नता, वही उल्लासभरी बातें, उतनी ही उत्कण्ठाभरी पूछताछ—"चाग काई शेक के आने की कोई खबर है ?"

क्या सपने में भी किसीने सोचा होगा कि इन्हीं जमनालालजी को दोपहर बाद अचानक खून के दबाव का दौरा २५० और १२५ का हो जायगा और गांधीजी के उनके समीप पहुचने से पहले ही वे हम सबको छोडकर चल देंगे ?

• • •

१९२८ में मगनलाल गांधी की आकस्मिक और अकाल मृत्यु के बाद गांधीजी को कभी ऐसा शोकपूर्ण धक्का नहीं लगा, जैसा जमनालालजी के यकायक और असामयिक निधन से लगा। उनमें अपने एकाकीपन की जैसी भावना उठी, उसका वर्णन करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। दो दिनों तक तो उन्होंने इसको वीरतापूर्वक सहन किया और उनकी विधवा पत्नी और वृद्धा माता को दिलासा देते रहे, परन्तु तीसरे दिन वे हिम्मत हारकर यह कह बैठे—"निपूते लोग बच्चे गोद लेते हैं। पर जमनालालजी ने तो मुझे पिता के रूप में गोद लिया था। वह मेरे सबकुछ के उत्तराधिकारी होते, इसके बदले वह अपना उत्तराधिकार मुझपर छोड गये।"

: ६ :

व्यवहार में सिद्धान्त का अनुसरण

श्रीकृष्णदास जाजू

मनुष्य के विकास के सिद्धान्त तो प्राय निश्चित ही है। व्यक्ति की श्रेष्ठता की परीक्षा इसीमें है कि उन्हें वह कहातक अमल में लाता है। श्री जमनालालजी का कारबार काफी व्यापक था। बडा परिवार, देशभर में फैले हुए मित्र-जन, विविध सार्वजनिक संस्थाए, राजनैतिक व सामाजिक कार्यक्षेत्र, नाना प्रकार के व्यापार-धधे आदि अनेक प्रवृत्तियो में उनका प्रत्यक्ष व्यावहारिक सबध आता था। इन सबका कार्य-भार सचाई के साथ निभाना कोई आसान बात नही थी। सत्य के अमल में उन्हें काफी अड़चनें आती थी, पर वे अपनी निष्ठा से डिगते नहीं थे।

बड़े-बड़े व्यापारियो के मुह से सुनने में आता है कि कुछ-न-कुछ असत्य के बिना व्यापार का काम चल ही नहीं सकता। यह धारणा गलत साबित करने का श्री जमनालालजी का सदा प्रयत्न रहा। युवावस्था से ही उनको इस बात का कुछ-कुछ ध्यान था कि सारा व्यावहारिक काम न्याय-नीति एव शुद्धता से हो। यही कारण था कि स्वय विशेष धनिक न होते हुए भी उनकी व्यापारिक वर्ग में बडी प्रतिष्ठा थी। लोगो का उनके काम-काज में विश्वास था। इसका लाभ भी उन्हें व्यापार में मिला। जहा उन्होंने देखा कि काम न्याय-नीति से नही चलता है, वहा उन्होंने बडी-बडी आमदनी के काम भी स्वय खुशी से छोड दिये। पू० गाधीजी का देश-सेवा का कार्यक्रम भी समय-समय पर ऐसा रहा कि जिसका अनुकरण करने में धनिको को काफी आर्थिक आच सहन करना लाजिमी था। असहयोग-आदोलन में अदालतो का बहिष्कार शामिल था। जिनको सदा अदालत से काम बना रहता है, उनके लिए इस नीति पर अमल करना कितना कठिन था।

जिनके खिलाफ अदालती कार्रवाई करने की जरूरत होती, वे इस बहिष्कार की बदौलत अनुचित लाभ उठाने को तैयार ही बैठे रहते। इसलिए काफी हानि सहन करके घर में ही निपटारा कर लेने की जी-तोड कोशिश करने पर भी ये मानते ही न थे। मुनीम-गुमाश्ते बेजा हरकतें देखकर बहुत दु:खी होते और कुछ-न-कुछ गली निकालने की सोचते भी, पर जमनालालजी अपने मतव्य पर दृढ़ रहते। काफी आर्थिक हानि उठाकर भी उन्होंने गाधीजी के कार्यक्रमो का ईमानदारी से पालन किया। खादी-ग्रामोद्योग आदि के अनुसधान में सदा इस बात की जागृति रखते थे कि देश-हित की दृष्टि से कौन-से उद्योग-धधे करने चाहिए और कौन-से नही।

यह एक दैवदुर्विपाक ही समझना चाहिए कि उनको बेबुनियादी अदालती मामलो में भी कुछ समय फसा रहना पडा। आखिर सबमें जीते, पर समय तो नष्ट करना ही पडा। उनका एक कौटुबिक हिस्सा-बाट का मामला चला। राजनैतिक क्षेत्र के विरोधियो द्वारा काग्रेस के कोषाध्यक्ष के नाते उनपर किये गए आक्षेपो के कारण उनको मान-हानि के दावे भी करने पडे। मामले काफी पेचीदा थे। खुद उनको लगातार कई सप्ताह तक रोज बयान देने पडते। विरोधियो ने तकलीफें देने में कोई बात उठा न रक्खी। अदालत में सत्यनिष्ठा की पूरी कसौटी होती है, पर जमनालालजी अपने व्रत पर निश्चल रहे। इतने बडे मामले इतनी सचाई के साथ चलना, इस जमाने में एक आश्चर्य की बात ही समझनी चाहिए।

उन्होंने अपने सिद्धान्त अमल में लाने की भरसक कोशिश करके यह साबित किया कि हममें आत्मबल हो तो वे सिद्धान्त केवल किताबो के या चर्चा के लिए ही न होकर सब कारोबार में लागू किये जा सकते है और उससे अन्त में सबका कल्याण ही होता है।

: ७ :

सबके 'स्वजन'

काका कालेलकर

श्री जमनालालजी के बारे में बहुत-कुछ लिखा जा सकता है। उनकी विभूति इतनी विविध थी कि हरएक आदमी उनके जीवन के और स्वभाव के एक-एक पहलू पर थोड़ा-थोड़ा प्रकाश डाले तभी उनकी भव्य मूर्ति हमारे सामने खड़ी हो सकती है। जमनालालजी हमें सचमुच छोड़कर चले गये हैं, हृदय इस बात की पूरी गवाही नहीं देता। अब भी कभी-कभी लगता है कि कहीं से आकर मिल जायगे और बातें करेंगे। अगर वह सचमुच आ ही जाय तो शायद आश्चर्य भी न हो। केवल आनन्द होगा और उनके मृत्यु का दुख स्वप्नवत् हो जायगा।

ऐसी हालत में उनके बारे में हम कुछ भी स्वाभाविकता से नहीं लिख सकते। इसलिए एक-दो प्रसग ही यहापर लिख देता हू।

बात पुरानी है। महात्माजी का लड़का देवदास गांधी बीमार था। डाक्टरों ने कहा कि 'अन्त्र-पुच्छ' का सूजन है, जिसे 'अपेन्डिसाइटिस' कहते हैं। डाक्टरों ने नश्तर लगाने की तैयारी की। पेट चीरकर 'अन्त्र-पुच्छ' काट डाला। इतने में किसी नाडी को स्पर्श होगया। होते ही एकदम श्वासोच्छ्वास बन्द होगया। डाक्टर लोग घबराये। श्री जमनालालजी को बड़ा आघात पहुचा। उन्हीके मुह से मैंने उस समय की उनकी मनो-दशा एक दिन सुनी थी। उन्होंने कहा कि महात्माजी ने अपना होनहार लड़का मेरे हाथ विश्वास के साथ सौंपा था और मेरे देखते उसके प्राण बंद होगये। अब किस मुह से महात्माजी के पास जा सकता हू? क्या मैं यहीं प्राण दे दू?

उन्होंने डाक्टर से कहा, "कुछ भी कीजिए, मेरी सारी सपत्ति ले

लीजिए, लेकिन देवदास को जिन्दा कर दीजिए,नही तो मै कैसे जी सकता हू ?"

डाक्टर लोगो के लिए नश्तर लगाते हुए ऐसी दुर्घटना कोई अनहोनी नही होती है। उन्होने तुरन्त इलाज किया और देवदास का श्वास फिर चलने लगा। उस समय की श्री जमनालालजी की धन्यता का वर्णन कौन कर सकता है ? उन्होने यह सारा किस्सा बहुत दिनो के बाद सुनाया था। उस समय भी उनके चेहरे पर और उनकी आखो में वह सारा किस्सा ताजा हो गया था और उसमें उनकी महात्माजी के प्रति निष्ठा और भक्ति कैसी पुत्रवत् थी, यह मै देख सका।

यह तो हुई महात्माजी के लडके के बारे में बात। श्री जमनालालजी का कौटुम्बिक भाव मै स्वय भी एक दफा ऐसा ही अनुभव कर चुका हू।

जब मुझे हैजा हुआ, तब मैं हरिजन-छात्रालय में रहता था। पता चलते ही जमनालालजी दौडकर मुझे देखने आये और कहने लगे—"काकासाहब, यहापर आपकी परिचर्या शायद ठीक नही होगी। मैं आपको अपने बगले पर ले जाता हू। वहा हम लोग आपकी ओर पूरा ध्यान दे सकेंगे।

उनकी यह बात सुनकर मैं स्तम्भित होगया। मैंने उनसे कहा, "आप किस तरह ऐसी बात करते हैं। मुझे हैजा हुआ है। हैजा सक्रामक रोग है।"

"कोई हर्ज नही"—कहकर वे आग्रह करने लगे। मैंने कहा, "आपका प्रेम और आपकी निर्भयता मैं जानता हू। किन्तु घर में आप अकेले नही है, बाल-बच्चे भी हैं। उन्हें इस तरह खतरे में डालने का आपको क्या अधिकार है ? गृहस्थाश्रमी को दोनो पहलुओ पर ध्यान रखना पडता है।"

"सो कुछ भी हो, मैं आपको ले जाये बिना न रहूगा।"

मैंने दृढता से कहा, "आपने मुझे जीत लिया, लेकिन मैं यहा से कहीं भी जानेवाला नही हू। इतने लोग हैं, दिन-रात मेरी सेवा करते हैं, यहा किसी चीज की कमी नही है। और कुछ भी हो, मैं इस वक्त हरिजन-छात्रालय नही छोडूगा।"

लाचार होकर वे लौट तो गये, लेकिन उनके मुह पर जो प्रेम और आत्मीयता का भाव झलक रहा था उसे मैं कभी नही भूल सकता। आत्मीयता

के आगे बड़ा या छोटा, अपना या पराया, अमीर या गरीब ऐसा भेद उनका मानव-हृदय स्वीकारता न था।

• •　　　　• •　　　　• • •

तीन व्यक्ति थे, जो बापू के जीवन में तन-मन-प्राण से ओतप्रोत हो गये थे और मरते दम तक उनसे ओतप्रोत रहे। उनका आत्मसमर्पण अनुपम था। एक थी कस्तूरबा, दूसरे महादेव, तीसरे जमनालालजी।.
जमनालालजी जवानी ही में उनके जीवन में प्रविष्ट हुए। इस तेजस्वी युवक में देशभक्ति और अध्यात्म-प्रेम कुछ अजीब तरीके से मिले हुए थे। जमनालालजी में उस वक्त भी व्यापारी-वर्ग के नेता बनने की लियाकत दिखाई दे रही थी। व्यापारी सूझ-बूझ और व्यवहार-कौशल में वे किसी से कम न थे। अपनी दौलत ही क्या, उन्होंने अपना सारा खान्दान ही बापू और स्वराज्य की खिदमत में पेश कर दिया। बापू की कोई रचनात्मक प्रवृत्ति न थी जिसमें जमनालालजी का सक्रिय सहकार न हो, बल्कि यह कहना चाहिए कि बापू की रचनात्मक अनेकानेक प्रवृत्तियों के व्यवहारू चालक जमनालालजी ही थे। बापूजी को हमेशा लगा, और वे हमेशा कहते रहे कि जमनालालजी के सिवा इन असंख्य प्रवृत्तियों का भार और कोई न उठा सकेगा। जमनालालजी कांग्रेस के खजांची और कारवाही-समिति के सदस्य थे। वे कई बार स्वेच्छा से कैद सिधारे और हर बार अपना लोहा बड़े ज्वलंत तरीके से बता दिया, एक वीर नर और एक सच्चे साधक के नाते। इतनी कार्यकुशलता के साथ हृदय की ऐसी समृद्धि शायद ही देखने में आती है। वे कार्य का महत्व जितना समझते थे, उससे भी अधिक कार्यकर्ताओं को अपना समझते थे। यही उनकी विभूति की खूबी थी।

"कौटुम्बिक सद्गुणों का व्यापक पैमाने पर विकास करो और सारी वसुधा को एक संयुक्त कुटुम्ब समझो"—यह गांधीजी का आदेश श्री जमनालालजी ने अपनाया। उनके लिए यह स्वाभाविक भी था और यही कारण है कि देश के अधिक-से-अधिक लोग—हिंदू और मुसलमान, ईसाई और पारसी—जमनालालजी को 'स्वजन' मानते आये हैं।

: ८ :

दानी, देशभक्त, कर्मयोगी

राजकुमारी अमृतकौर

भाई जमनालालजी एक विशेष व्यक्ति थे। उनकी जगह कोई नहीं ले सकता। उनका प्रेम और स्वभाव ऐसा था कि वे सबको जीत लेते थे।

सन् १९२० की बात है। जमनालालजी कन्या महाविद्यालय, जालन्धर के उत्सव में भाग लेने आये थे। वहांपर उनका भाषण होना था। वहीं उनसे मेरा प्रथम परिचय हुआ। तब से लेकर उनके जीवन के अन्तिम दिन तक मैं उनके निकट संपर्क में रही।

जमनालालजी बड़े उदार प्रकृति के आदमी थे। वर्धा में और फिर सेवाग्राम में भी उन्होंने ही पूज्य बापू को जमीन दान दी। जो कोई जमनालालभाई के निकट आता वह उनकी तरफ खिच-सा जाता था, ऐसा आकर्षक व्यक्तित्व उनका था। वे दानी थे, देशभक्त थे और थे कर्मयोगी। उन्होंने अपना सर्वस्व---धन और जीवन---देश को अर्पण करके एक ऊंचा आदर्श पूंजीपतियों के सामने रक्खा। उनका रहन-सहन बहुत सादा और पवित्र था।

एक बार जब वे बीमार पड़े तो बापू ने उन्हें स्वास्थ्य लाभ करने के लिए शिमले भेजा। ठहरने का प्रबंध मेरे मकान पर था, इसलिए उनकी देखभाल के लिए मुझे भी उनके साथ जाने का बापू ने आदेश दिया। यहांपर मुझे जमनालालजी के साथ अनेक विषयों पर बातचीत करने का और उनका बहुत निकट से अध्ययन करने का अवसर मिला। मैंने उनमें एक बहुत ऊंचा व्यक्तित्व पाया। उन्होंने अपने मधुर स्वभाव के द्वारा थोड़े ही समय में मेरे कुटुम्ब के लोगों को अपना बना लिया। उनके प्रेम-भरे व्यवहार में कितना अद्भुत आकर्षण था, यह मुझे शिमले में नजदीक से देखने को मिला।

उनकी प्रकृति बड़ी विनोदी थी। बापू को वे अक्सर हँसाया करते थे

और जहा वे होते, वहा का वातावरण सरस हो जाता।

जमनालालजी बेजोड आदमी थे। वे सेवा के लिए ही पैदा हुए थे और उनकी सेवा का जन्म भी नकुचित क्षेत्र में रहने के लिए नहीं हुआ था। कोई भी काम वे आधे दिल से नहीं करते थे। उनकी लगन आश्चर्यजनक थी। जिस गाय का दूध वे पीते थे, उसकी सारी सार-संभाल वे खुद करने लगे थे। उनकी तन्मयता कुछ ऐसी ही थी। वे चाहते थे कि काम करते-करते मरें। ईश्वर ने उन्हें वैसी ही मृत्यु दी।

: ९ :

अडिग देशभक्त

सरोजिनी नायडू

सेठ जमनालाल बजाज की मृत्यु केवल कांग्रेस-क्षेत्रो के मित्रो और सहयोगियो के लिए ही शोकप्रद घटना नहीं है, बल्कि अनेक अज्ञात स्त्री-पुरुषो के लिए भी, जिनके प्रति उन्होंने शात और निर्बाध रूप से उपकार किया था।

अपने अकृत्रिम ढंग से उन्होने देश की अपने गहरे और हार्दिक प्रेम से सेवा की थी और एक दिन जब भारत के राष्ट्रीय सघर्ष का इतिहास लिखा जायगा तो उनका नाम अवश्य ही उन देशभक्तो में आदरपूर्वक लिया जयगा, जिन्होंने स्वतन्त्रता के लिए बडे-से-बडे त्याग को तुच्छ समझा। हममें से जिन लोगो को उन्हें निकट से जानने का सौभाग्य मिला था, उनके लिए तो वे सबसे अधिक प्रेम करने योग्य व्यक्ति थे। उनमें हार्दिक स्नेह था, उदारतापूर्ण मित्रता थी और थी और अडिग देशभक्ति। उनमें एक सरल किन्तु सच्चा आकर्षण था, जो उनके स्वभाव की मधुरता और दयालुता की ही उपज थी।

: १० :

जमनावाल

किशोरलाल घ० मशरूवाला

काकाजी की उम्र तो पचास से ऊपर जा चुकी थी, फिर भी मैं तो मानता हू कि वे पाच साल के ही थे—पाच वर्ष के बच्चे-जैसी निष्कपटता, खिलाडी स्वभाव और अन्दर-बाहर की एकता। भावगोपन, याने मन में एक विचार रखना और बाहर दूसरी राय बताना, उनके स्वभाव में ही न था। बालको के मनोरजन और खेल-कूद की क्रीडाओ में आखिर तक उनकी रुचि थी और उस रुचि में कोई आडम्बर नही होता था। कला-रसिक कहलाने वालो की कृत्रिमता न थी। ससार की चिन्ताओ और व्यवहारो ने उनकी विनोदी वृत्ति का ह्रास नही कर डाला था। बालक की तरह उनका क्रोध क्षणिक था, उनकी मित्रवृत्ति स्थिर थी।

पुराणो में कथा है कि सनत्कुमारो पर जब भगवान् खुश हुए और कहा कि कुछ माग लो, तब उन्होंने यह वरदान मागा कि हमारी उम्र हमेशा के लिए ही पाच साल की रहे। मालूम होता है, काकाजी ने भी कुछ ऐसी ही बख्शिश ईश्वर से पा ली थी। और फिर भी सब जानते है, काकाजी कितने बुद्धिमान्, व्यवहार-चतुर और सफल व्यापारी, सफल नेता, धन और कार्यकर्ताओ के सफल सगठक और अनेक लडके और लडकियो के पिता से भी अधिक पालक थे।

बल, बलि, बाल सब एक ही शब्द से निकले है। बल में कर्तृत्व का भाव है, बलि में दान और ऐश्वर्य का भाव है, बाल में सरलता का। काकाजी बलवान् (कर्तृत्ववान्) थे, बलि (दानी और धनी) थे, और बाल (सरल) थे। इस तरह उनमें हर प्रकार का बाल्य था।

काकाजी का नाम जमनालाल के बदले जमनावाल कर दें तो सार्थक ही होगा।

: ११ :

ऊंचे दर्जे के सत्यशील

गंगाधरराव देशपाडे

जमनालालजी ने १९२० की कलकत्ता-काग्रेस में राजनीति में प्रत्यक्ष भाग लेना आरभ किया। उसके पहले देश-हित के सभी कार्यों में उनकी सक्रिय सहानुभूति थी। लोकमान्य तिलक के सबध में उनके विचार बडे आदर-पूर्ण थे। कलकत्ता-काग्रेस के बाद उन्होंने असहयोग-व्रत स्वीकार करते हुए काग्रेस की रचनात्मक राजनीति के कार्य-क्षेत्र में अपनेको पूर्णतया बहा दिया। व्यापार में अत्यन्त दक्ष होने के कारण उन्होंने प्रामाणिकता के साथ व्यापार किया और उससे उन्हें जो यश प्राप्त हुआ उसके प्रत्यक्ष उदाहरण आगे देखने में आये। अगर वे धन कमाने को ही अपना ध्येय मानते तो उनकी गणना देश के गिने-चुने करोडपतियो में हो जाती, किन्तु धन कमाने की अपेक्षा उन्होंने अपने जीवन में इस बात पर अधिक ध्यान दिया कि सग्रह किये हुए धन का उपयोग किस प्रकार किया जाय। केवल यही बात नही है कि उन्होंने गाधीजी की प्रवृत्तियो में सहायता दी, बल्कि 'गाधी-सेवा-सघ', 'अखिल भारतीय चर्खा सघ', 'ग्रामोद्योग सघ', 'तालीमी सघ', 'हरिजन सेवा सघ,' 'हिन्दी-प्रचार-समिति' और 'महिला विद्यालय' आदि रचनात्मक कार्य करने वाली सस्थाओ में उनकी सहानुभूतिपूर्ण रूप से न होती तो उनका सचालन-कार्य असभव हो जाता। आम तौर से जिसे शिक्षा कहा जाता है, वह उन्हें अधिक नही मिली थी। उनका अग्रेजी का ज्ञान बहुत कम था, किन्तु उनका व्यवहार-ज्ञान बडा सूक्ष्म था। उचित समय पर देने-लेने की व्यवहार-बुद्धि उनमें पूर्ण रूप से थी और उसका उपयोग कोई शाब्दिक चर्चा न करके राजनैतिक क्षेत्र में भी वे यथासमय समुचित रूप से करते थे।

कार्यकारिणी में अथवा किसी भी समिति में उनकी कुशाग्र बुद्धि का

प्रभाव दिखाई देता था । इसलिए उनके सहकारी उन्हें मजाकिया तौर पर 'काग्रेस का वकील' कहा करते थे ।

राजनीति में जिस तरह उनकी बुद्धि का परिचय मिलता था उसी तरह समाज-सुधार में भी उनकी पूरी कामयाबी दिखाई देती थी । व्यापारी वर्ग, खासकर मारवाडी समाज में, उन्होने सब तरह की जागृति उत्पन्न करके उस वर्ग को राजनीति में प्रविष्ट करने में सहायता दी । वे काग्रेस के खजाची थे और वहा करोडो रुपयो का हिसाब-किताब ठीक तौर से रखने में उनका ध्यान रहता था । जमा हुए धन का ठीक हिसाब रखकर ठीक तौर से व्यवहार रखना और जो कार्य सामने आये उसके लिए धन की कमी न पडे, इसकी व्यवस्था वे करते थे । वे जो काम हाथ में लेते थे उसे प्रामाणिकता के साथ पूरा करते थे, ऐसा जनता का विश्वास था । इसीलिए धनिक व्यापारियो को पैसा उनके हाथ में देकर कोई भय नही रहता था । उनका व्यक्तिगत सबध उनके साथ प्रेम-पूर्ण था । उनके व्यक्तिगत या सार्वजनिक सबधो में जाति-पाति, भाषा आदि का भेद-भाव न था ।

कर्नाटक के बेलगाव जिले से सेठजी का विशेष सबध था । उक्केरी गाव में कर्नाटक प्रातीय परिषद हुई थी । वहा वे अध्यक्ष हुए । बेलगाव नगर-सभा ने वहा आने पर उन्हें मानपत्र भेंट किया । सिरसी, सिद्धापुर तालुके की प्रजा की गरीबी उन्होने अपने दौरे में प्रत्यक्ष देखी और उसे दूर करने के कामो में मदद दी । इसके अलावा कर्नाटक के कार्यकर्त्ता समय-समय पर उनसे सलाह लिया करते थे और वे बडी आस्था के साथ उनको परामर्श दिया करते थे । इन दिनो उनका स्वास्थ्य अच्छा नही था । फिर भी उन्होंने गो-सेवा-सघ का कार्य अपने ऊपर ले रखा था, जिससे यह सिद्ध होता है कि उनमें आलस्य का नाम भी नहीं था । पू महात्मा गाधी के आशीर्वाद और पू विनोबाजी के सान्निध्य के कारण उनके जीवन का विकास उत्तम रीति से हुआ था और उसका प्रमाण उनके आचरणों से स्पष्ट झलकता था ।

: १२ :

त्यागी और साहसी

बाल गगाधर खेर

ये सस्मरण लिखकर मैं स्व० जमनालालजी के प्रति अपने गहरे ऋण का एक अश ही अदा कर रहा हू। मैंने अपनी राजनैतिक प्रवृत्ति 'स्वराज्य पार्टी' के एक सेक्रेटरी की हैसियत से शुरू की थी। स्वराज्य पार्टी कौसिल-प्रवेश की पक्षपाती थी और परिवर्तनवादी पार्टी कही जाती थी। काग्रेस में जो लोग कौंसिल-बहिष्कार के पक्षपाती थे, वे अपरिवर्तन-वादी कहलाते थे। सन १९२४ के चुनावों के बाद मुझे जल्दी ही अनुभव हो गया कि स्वराज्य पार्टी धारासभाओ में सतत और जोरदार विरोध के जरिए चाहे जो भी सफलता प्राप्त कर ले, देश के लिए स्वराज्य प्राप्त नही कर सकती और अग्रेजो को नही हटा सकती। इसलिए जब मैंने सत्या-ग्रह-आन्दोलन में भाग लेने का निर्णयात्मक फैसला किया तो मेरे लिए यह बिल्कुल नया रास्ता अपनाने-जैसा था। मैं वकालत करता था और वकालत के जरिए अपना और अपने परिवार का निर्वाह करता था। मैं यह अच्छी तरह जानता था कि जो आदमी वकालत के जरिए आजीविका कमाता है, वह अगर कानून को तोडेगा तो उसको न केवल कैद की सजा मिलेगी, अपितु उसे वकालत करने के अधिकार से भी वचित कर दिया जायगा। ऐसे नाजुक समय पर मैं जमनालालजी से मिला और उनके परिचय में आया। मैं उनके त्याग और साहस के उदाहरण से बहुत अधिक प्रभावित हुआ। उनको तो दुनिया में बहुत-कुछ त्याग करना था। उनकी तुलना में मेरे पास त्याग करने को था ही क्या ? उनका जन्म और लालन-पालन जिन परि-स्थितियो में हुआ था, उनमें उनके लिए यह स्वाभाविक था कि वे अपनी सारी शक्ति धन कमाने में लगा देते। जब वे ही महान् त्याग करने को

तैयार होगये तो मेरे लिए तो सोचने की बात ही क्या थी ? मैंने ऐसे कुल में जन्म लिया है, जिसे सेवा और त्यागवृत्ति विरासत में मिली है। मेरे पास त्याग करने के लिए दुनियावी पदार्थों का बहुत अधिक सचय भी नही था। ऐसी दशा में मुझे स्वराज्य के उसी ध्येय को अपनाने मे क्यो डर होता, जो किसी भी मनुष्य के लिए महान से महानतम ध्येय हो सकता है ? जब मै जानता था कि उस ध्येय को प्राप्त करने के साधन शुद्ध और उदात्त होगे तो मै क्यो सकोच करता ? जिस सेना में मुझे भर्ती होना था, उसका सेनापति सत्य और अहिंसा का पुजारी था।

जमनालालजी को नमक-सत्याग्रह शुरू करने की तैयारी करनी थी। सत्याग्रह-शिविर बम्बई के उपनगर विले पार्ले में कायम किया गया। मै उनका सहायक बन गया। जब नमक-सत्याग्रह-आन्दोलन शुरू हुआ तो स्वामी आनन्द और किशोरलाल मशरूवाला पहले से वहा थे। मेरा ख्याल है कि वह ६ अप्रैल का दिन था, जब जमनालालजी और किशोरलाल मशरूवाला पकडे गये। मैंने शिविर में रहना शुरू किया। हमने मुश्किल से १४ दिन काम किया होगा कि २० अप्रैल १९३० को मै स्वामी आनन्द और डी एन बाम्देरकर के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। हमको थाना जेल में ले जाया गया। वहा जमनालालजी से भेंट हुई। वह तो तपे हुए सैनिक थे और नागपुर-सत्याग्रह के समय जेल-जीवन की कठोरताओ को भुगत चुके थे। मेरेलिए जेल-जीवन नया था। अनुशासन की अच्छी शिक्षा थी। जेलो में कैदियो के वर्गीकरण के नियम उस समय बने-ही-बने थे और उन-पर अमल शुरू नही हुआ था। इसलिए पहले दिन हमको जेल में जाघिया और बण्डी पहनने को मिले और 'सी' क्लास की दाल-रोटी। धीरे-धीरे, हालत में सुधार हुआ। इसके बाद मुझे रास्ता मिल गया। मैंने अपनी तकदीर सत्याग्रहियो के साथ जोड दी। मैंने अपना सबकुछ दाव पर लगा दिया।

जमनालालजी मुझसे स्नेह करते थे। हम अक्सर मिलते रहते थे। मेरी फर्म उनका कानूनी काम-काज करती थी और इस प्रकार घनिष्ठता

बढ गई। जब सन् १९३७ में काग्रेस ने पद-ग्रहण किया तो मैं धारासभा-काग्रेस-पार्टी का नेता चुना गया और बम्बई का मुख्य मत्री बना। इसके बाद जब हम पहली बार मिले तो जमनालालजी ने कहा, "हा, तो प्राइमर साहब आप अब प्रीमियर होगये है!" मुझे मालूम था कि वह जान-बूझकर मुझे इस प्रकार सबोधन कर रहे हैं। यह उनका विनोद और परिहास था। मुझे अक्सर महात्माजी से मिलने, कान्फ्रेंसो और कमेटियों में शामिल होने के लिए वर्धा जाना पडता था, और जो भी राजनैतिक काम से वर्धा आते थे, इस लखपति सेठ और साधु के अतिथि होते थे।

अगर महात्माजी की ट्रस्टीपन की कल्पना अथवा विनोबाजी के भूदान-यज्ञ को सफल होना है, सम्पत्ति का शातिपूर्ण और अहिंसक उपायो द्वारा न्यायोचित वितरण होना है, हरेक को उसकी जरूरत के मुताबिक मिलना है और शक्ति के मुताबिक काम करना है, तो यह जमनालालजी-जैसे व्यापारी और विनोबाजी-जैसे समाज-सेवी के हार्दिक प्रयत्नों से ही सभव होगा।

: १३ :

समर्पित जीवन

गोविन्दवल्लभ पत

जमनालालजी का नाम भारतवर्ष के स्वतन्त्रता-सग्राम के इतिहास में सदा अमर रहेगा। उन्होंने अपना सारा जीवन गाधीजी को अर्पण कर दिया और वे उनके इतने सन्निकट होगए थे कि गाधीजी उन्हें अपने परिवार का अग मानते थे। सामाजिक कामो में वे सदा अग्रणी रहे और उनकी रचनात्मक व व्यावसायिक बुद्धि भी विलक्षण थी। हर क्षेत्र में वे अपनी अमिट छाप छोड गये है। वे गाधीजी के इस विचार के कि धनवानो को अपनी सपत्ति सार्वजनिक हित में एक ट्रस्टी के रूप में व्यय करनी चाहिए, एक ज्वलन्त उदाहरण बन गए थे। सत्य पर निष्ठा व त्याग की भावना उन्हें सदा प्रेरित करती थी और जन-हित के सब कामो के लिए वे हर समय तत्पर रहते थे। स्वार्थ उन्हें छू भी नही गया था। परहित परमार्थ में वे सदा रत रहे।

: १४ :

पढ़े कम, गुने ज्यादा

पट्टाभि सीतारामैया

मै असहयोग-आन्दोलन के युग की शुरुआत से ही जमनालालजी को जानता हूं, क्योंकि उन दिनो उन्होने एक लाख का दान असहयोग करनेवाले वकीलो के लिए भेंट करने की घोषणा की थी। वे लम्बे, हट्टे-कट्टे और सुडौल शरीरवाले थे और जहा काग्रेसी साथियो की भीड में खडे होते, उनका कन्धा और सिर सबसे ऊपर दिखाई दे जाता था। उन्होने उन दिनो रायबहादुरी की अग्रेजो की दी हुई उपाधि छोडी ही थी। मै अपनी आदत के मुताबिक कुछ समय तक उनके सम्पर्क में नही आया। परन्तु जब वर्धा मे सभाए होने लगी और वह नगर भारत की काग्रेसी राजधानी बन गया तो मै उनके निकटतम सम्पर्क में आया। जुलाई १९२९ में काग्रेस-कार्यकारिणी-समिति का सदस्य बनने तक मै उनसे घनिष्ठतापूर्वक मिलजुल नही सका था। उसके बाद तो हम समिति की हर सभा के समय मिला करते थे और मैं उनके वर्धा-स्थित अतिथिगृह में होनेवाली सभाओ में भाग लेने के लिए आवश्यक रूप से उनका मेहमान बना करता था।

मेरे इस विश्वास के कारण थे कि वे मुझसे तपाक के साथ नही मिलते थे, क्योकि उन्होने अनेक बार यह विचार प्रकट किया कि मै तो एक आलोचक-मात्र हू। फिर भी मेरे मन में उनके लिए बडा आदर था, क्योकि यद्यपि वे कभी अग्रेजी नही बोलते थे, फिर भी वे समझ आसानी से लेते थे। वे अपने सारे पत्र-व्यवहार और काग्रेस के प्रस्तावो के मसविदे भी समझ लिया करते थे। वे अक्सर ऐसे सशोधन सुझाया करते थे, जो बिल्कुल ठीक होते थे और जिनसे उनकी यह समझने की क्षमता सिद्ध होती थी कि शब्दो के बीच क्या सूक्ष्म अन्तर होता है। वे काग्रेस के किसी भी प्रस्ताव

के मसविदे में अपनी पसन्द के सुझाव पेश किये बिना नहीं रहते थे और कांग्रेस के सामने जो भी विषय पेश होता, उसपर वे अपने सशोधन तब उपस्थित करते जब यह समझा जाता था कि उनके बारे में निष्कर्ष पर पहुचा जा चुका है।

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी और तामिल प्रात के प्रति सेठ जमनालालजी जैसा सम्मान रखते थे, उसके मुकाबले में आन्ध्र प्रातवालो के प्रति कुल मिलाकर उनकी राय अच्छी नही थी। उनका खयाल था कि वे रचनात्मक कार्यक्रम और गाधीजी के आदर्श को नहीं मानते। दिसम्बर १९२३ में जब कोकनाडा की कांग्रेस के बाद उन्होंने आन्ध्र देश के कुछ हिस्सो का दौरा किया, तो मसुलीपट्टम मेरे घर पर दो दिन ठहरे। उन्होंने वहा के खादी-केन्द्र और कलाशाला आदि देखे। श्री एन एस वरदाचारी को वे बहुत चाहते थे और सन्तानम को भी। आन्ध्रवालो में वे सबसे ज्यादा सम्मान श्री कोण्डा वेंकट पैय्या पतुलुगारु और श्री के नागेश्वरराव पान्तुलु गारु का करते थे, वैसे श्री जी सीताराम शास्त्री एव डा सुब्रह्मण्यम को भी बहुत चाहते थे।

अखिल भारत चरखा-सघ की आन्ध्र शाखा की व्यवस्था के सिलसिले में मैं उनके साथ घनिष्ठतर सपर्क में आया—खासकर गांधीजी ने मुझे अपने अप्रैल-मई १९२३ के छ सप्ताह के दौरे में दो लाख तिरसठ हजार रुपये जमा करने के बाद आन्ध्र शाखा का कार्य-भार सभालने के लिए कहा था। वर्धा में हम हमेशा उनके मेहमान के रूप में ठहरे और उनका हार्दिक आतिथ्य प्राप्त हुआ।

: १५ :

'साधु वणिक्'

कन्हैयालाल मा० मुनशी

जमनालालजी मेरे प्रिय मित्र थे। १९३० में जब हम दोनो नासिक-जेल में थे, तब मेरा-उनका स्नेह-सबध हुआ था। साथ-साथ रहने से मुझे उनका हृदयदर्शन हुआ। तभी से जमनालालजी मुझमें—नही, मेरे सारे कुटुम्ब में, दिलचस्पी लेने लगे। जब-जब वे बम्बई आते तब-तब हम मिलते। फलस्वरूप उनके कुटुम्ब और मेरे बीच स्नेह-सबध स्थापित होगया।

उनके अनेक गुणो में सबसे ऊचा गुण था उनकी व्यवहार-कुशलता। वे हरएक वस्तु और विषय को व्यावहारिक रूप देते थे। उनकी उदारता का तो नाप ही न था। फिर भी किसके प्रति उदार होना चाहिए, किस प्रकार होना चाहिए और इसका क्या परिणाम निकलेगा, इसका पूरा-पूरा विचार वे करते थे। उनकी मैत्री मधुर भाषण और पारस्परिक विश्वास में ही समाप्त नही हो जाती थी, बल्कि अपने जीवन में प्रवेश कर उसे सुख-सुविधा पहुचाने में तत्पर रहती थी। उनकी देशभक्ति सेवा या त्याग से ही सतोष नही पाती थी, बल्कि कांग्रेस की रचनात्मक प्रवृत्तियों को विधिपूर्वक करती थी। वे कांग्रेस के कोषाध्यक्ष थे और थे गाधीजी की विशाल रचनात्मक प्रवृत्तियो के व्यवस्था-मत्री।

व्यापार-बुद्धि और नीति, लक्ष्मी और सरस्वती की तरह, साथ नही रहती, परन्तु जमनालालजी इसका अपवाद थे। इनकी व्यवहार-बुद्धि पर जीती-जागती जोत की तरह नैतिक बल हमेशा पहरा देता था। छोटी-बडी हर बात में यह उस्ताद व्यापारी नैतिक अपूर्वता की खोज में रहता था।

वे व्यापारी थे, देशभक्त, त्यागी, दानवीर थे, सौजन्यमूर्ति थे, पर इन सबसे भी सस्मरणीय उनकी सिद्धि थी व्यावहारिकता और नीति का सुयोग। सत्य-नारायण की कथा के 'साधु वणिक्' शब्द को उन्होंने सार्थक कर दिया था।

: १६ :

उनका कर्म-समुच्चय

घनश्यामदास बिडला

शायद १९१२ की बात है। बम्बई में मारवाडी पचायतवाडी में विशिष्ट मारवाडियो का एक छोटा-सा समाज मत्रणा के लिए इकट्ठा हुआ था। बम्बई में एक मारवाडी-विद्यालय की स्थापना का आयोजन हो रहा था। समाज के धनी और वृद्ध सभी लोग उपस्थित थे, किन्तु किसीने स्कूली शिक्षा नही पाई थी, इसलिए उन्हे यह पता नही था कि क्या करना है। पर धन एकत्र करना है, यह तो सभी जानते थे।

सभा में तरह-तरह के लोग थे। अप्रस्तुत बाते भी चलती थी। विपयातर भी होता था। पर एक मनुष्य था, जो जब अपना मुह खोलता, तो लोग उसे ध्यान से सुनते थे। मैंने भी उसे ध्यान से देखा। वह पुरुप नितान्त युवक था। पचीसी के इसी ओर ही था। गौर वर्ण, स्थूल शरीर, गोल मुह। शरीर पर रेशमी कोट और सिर पर काश्मीरी काम की टोपी। खादी की तो उस समय किसीको कोई कल्पना भी नही थी। स्वदेशी की परिभापा में जापानी कपडा तक उस समय त्याज्य नही माना जाता था। इसीसे युवक की वेशभूपा के सारे कपडे स्वदेशी नही थे। ठाट-बाट अमीराना था। चेहरे पर नजाकत थी, पर आखो मे सरलता और एक तरह की तेजस्विता टपकती थी। शिक्षित तो साधारण-सा ही मालूम होता था, पर बोल रहा था निर्भयता और पूरे आत्म-विश्वास के साथ। और वह लोगो को प्रभावित भी कर रहा था।

मैं तो उस नवयुवक से भी छोटा था, बीसी के इसी पार। पर मुझसे उमर में थोडा ही बडा वह युवक जिस आत्म-विश्वास, अनुभव और प्रभाव के साथ बोल रहा था, वह देखकर मुझे कुछ डाह-सी हुई। मैंने किसीसे पूछा कि यह युवक कौन है, तो पता लगा कि उस नौजवान का नाम जमनालाल

बवाज है। इस छोटी-सी उमर में देहात में रहनेवाला एक साधारण शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति सार्वजनिक कामो में इतनी लगन और सच्चाई से रस ले सकता है, यह जानकर मुझे कुछ आश्च तथा कुछ कुतूहल हुआ। मुझे जानना चाहिए था कि गुदडी में भी लाल होते है।

बस, वही से मेरा जमनालालजी से परिचय हुआ और उनसे उस दिन से जो मैत्री ई वह फिर जमती ही गई। बीते जमाने की याद करते है, तो ऐसा लगता है, हमारी आखो के आगे से मानो एक चित्रपट निकल गया है। चित्रपट का अन्त में देखा हुआ हिस्सा तो हमारी आखो के सामने ताजगी से खडा रहता है। और जो हिस्सा हमारी आखो के सामने से सुदूर अतीत में निकला है, उसकी एक धुवली-सी रूपरेखा ही दिमाग के सामने रहती है। पर इसके अलावा, समूची तस्वीर एक अलग छाप हमारे दिमाग पर छोड जाती है, जो शायद सबसे ज्यादा स्थाई रहती है। नौजवान जमनालालजी की शक्ल तो इस समय आखो के सामने अस्पष्ट-सी है। जो शक्ल आज रह-रहकर आखो के सामने आ रही है वह तो उनका अन्तिम चित्र है। और जो चित्र हम सबके हृदय-पटल पर सदा अकित रहेगा, वह उनकी शक्ल का नही, उनके चरित्र का है।

११ फरवरी की दुपहरी में अचानक सेवाग्राम में वर्धा से टेलीफोन आया। बताया गया कि जमनालालजी को एक कै हुई और उसके बाद बेहोश होग । पन्द्रह मिनट से बेहोश है, ऐसा सुनने पर कुछ थोडी-सी चिन्ता हुई। चित्त में खास घबराहट पैदा नही हुई। हम सबने यह मान लिया कि साधारण बदहजमी होगी। गाधीजी को जमनालालजी की बीमारी का हाल बताया गया तो वे वर्धा जाने के लिए उ । मुझे तो जाना ही था।

मैंने पूछा, "कोई गभीर बीमारी तो नही है ?"

गाधीजी ने उत्तर दिया, "क्या जाने, रक्त का दबाव तो उन्हे है ही। भोजन में कुछ गलती हुई, ऐसा मालूम होता है। गजब होगा, यदि उनसे हमारी मुलाकात न हो पाई।

रक्त का दबाव है और बेहोश है, ऐसा सुनकर मेरा माथा ठनका सही,

पर आशा ने चिन्ता को दवा दिया।

हम दोनो मोटर में बैठकर चले तो रह-रहकर आखो के सामने जमनालालजी का चित्र आता था। परसो तो आये ही थे, कल आने की कह गये थे। कोई गभीर बीमारी कैसे हो सकती है ? सभव है, हम पहुचे उसके पहले ही बेहोशी मिट जाय और जमनालालजी हमें हँसते हुए मिले।

मैंने कहा, "बापू, इन्हे अब आश्रम में ले जाना चाहिए।"

"हा, कुछ ठीक होने के बाद तो यही करेगे। आश्रम भी तो एक तरह का कैदखाना है। यही जमनालाल रोक-टोक में रह सकते है और परिश्रम से बच सकते हैं।"

सारे रास्ते—और पन्द्रह मिनट का ही तो रास्ता था—जमनालालजी की तस्वीर आखो के सामने नाचती रही। आखिर पहुचे। लोगो की एक छोटी-सी भीड घर के आगन में जमा थी। सबके चेहरो पर विषाद था। मैंने पूछा, "कैसी है तबीयत ?" पर कोई जवाब नही मिला। लोगो की खामोशी से भी मुझे कोई इशारा न मिला। इतने में एक तरफ की सीढी से डाक्टर दौडता-सा आया।

"बापू, जमनालालजी तो चले गये"—बस उसने इतना ही कहा। वे अत्यन्त कठोर शब्द थे। तो भी, पता नही क्यो, इस अनिष्ट का विश्वास करने को जी नहीं चाहता। जिसे हमने हर पल जिन्दा पाया, वह यकायक कैसे गायब हो सकता है ? हम जानते हैं कि मनुष्य मरता है, पर हमारा स्वजन मरेगा या हम मरेंगे, यह खयाल भी बेचैनी पैदा करता है। इसलिए, अफीका के शुतुरमर्ग पक्षी की तरह, जो खतरा दिखाई देने पर थल में अपना सिर गाड कर यह मान लेता है कि खतरा है ही नही, हम भी आखें खुली होने पर भी देखने से इन्कार कर देते हैं। मैंने भी ऐसा ही किया; पर जमनालालजी अब इस ससार में नही थे, यह अप्रिय सत्य तो सत्य ही था। जिस चीज की धडकन थी वह हो ही तो गई।

हमने जमनालालजी के कमरे में प्रवेश किया। देखा, जमनालालजी गद्दे पर लेटे पडे थे। प्राणो ने अपने चिरसगी शरीर को, जिसमें उन्होने बावन

साल के करीब निवास किया था, अभी-अभी चन्द मिनट पहले ही छोडा था। जान पडता था, मानो जमनालालजी शान्त निद्रा में सोये पडे है। चेहरे पर न कोई दु ख था, न विषाद। न कोई उद्वेग का चिन्ह, न शरीर में किसी तरह की कोई वृत्ति। तकिये पर सिर दिये, गजी पहने, पाव पसारे, बिना कुछ ओढे, शान्त जमनालालजी गाढी नीद में सो रहे थे। जमनालालजी के दात सब टूट चुके थे, बनावटी दात वह खाने या बाहर जाने के समय ही लगाते थे। इसलिए बिना दातो के उनके गाल बैठे पडे थे। चेहरे पर बुजुर्गी-सी छाई हुई थी।

एक दृश्य था शुरू का मेरी आखो के सामने, जब जमनालालजी को बम्बई में पचायतवाडी में मैंने देखा था। जमनालालजी उस समय नौजवान थे। ताजा थे। एक शक्ल जमनालालजी की आज की थी।

कितना अन्तर था इन दोनो में !

पहला दृश्य तीस साल की प्राचीनता पा चुका था। इस लम्बे अरसे में कितनी घटनाए घटी। कितना ऊच-नीच जमनालालजी ने देखा। पर जमनालालजी की गाडी तो बस जो चली तो फिर वह चली ही चली। सन्मार्ग की पटरियो पर तेजी के साथ वह दौडती ही रही। पानी और कोयले के लिए इजन ठहरता है, पर जमनलालजी ने तो दाना-पानी भी दौडते-दौडते ही चुगा। अविश्रान्त गति से दौडती हुई गाडी में कहीं का पुर्जा ढीला होगया तो कही से कील टूटकर गिर गई, पर जमनालालजी को तो अपनी मजिल पर पहुचना था। इसलिए मरम्मत के लिए भी उन्हें फुरसत कहा ? ढलती उमर में शरीर ढीला पड गया था। पर गाडी तो दौडती ही जाती थी।

'वृद्धत्व जरसा बिना'। बावन साल की उम्र में ही जमनालालजी को बुढापा क्यो आगया ? क्योकि उन्होंने अपनी गाडी की रफ्तार बढा दी थी। जमनालालजी ने अपने बावन बरसो में इससे कही ज्यादा बरसो की जिन्दगी बसर की। उन्हें धीरज नही था कि मजिल पर धीरे-धीरे पहुचे, इसलिए गाडी टूटती गई। तो भी जमनालालजी ने मुडकर नही देखा। गाडी टूटती है या साबित रहती ह, इसकी जमनालालजी को न कोई चिन्ता थी, न उनका

विषाद। ध्येय था मजिल पर पहुचना और जल्दी-से-जल्दी पहुचना। इसलिए शरीर की अवशा करके भी उनकी आत्मा उडान लेती जा रही थी।

शरीर बेचारा आत्मा का कहातक साथ दे सकता था ? अन्त में शरीर ने दौडने से इन्कार कर दिया तो आत्मा शरीर को तजकर अकेली ही दौडने लगी। घोडो की डाक में एक घोडा थक जाता है तो सवार दूसरे घोडे पर चढने दौडता है। जमनालालजी का भी यही हाल था। जब शरीर थक गया तो आत्मा ने उस थके शरीर को छोड दिया। आत्मा को तो अभी दौडना ही है। उसे अपनी मजिल पर पहुचना है। तो फिर ताजा घोडा-शरीर क्यों न पकडा जाय ?

आत्मा शरीर को छोडकर उड गई। दौड जारी है। जमनालालजी की आत्मा जबतक मजिल पर नही पहुचती, विश्राम ले ही नही सकती। उसकी उडान जारी रहेगी। जमनालालजी के जीवन की यह सूत्ररूप कहानी है।

गाधीजी ने आते ही जमनालालजी के सिर पर हाथ रखा। जमनालालजी की धर्मपत्नी श्री जानकीदेवी तो कुछ हक्की-बक्की-सी रह गई थी। गाधीजी को देखते ही वह आशा की तरगो में उछलने लगीं।

"बापूजी, ओ बापूजी ! आप पास में होते तो यह न मरते। मैंने इनको तबीयत बिगडते ही जल्दी खबर क्यो न भेज दी ? इन्हें आप अब जिंदा कर दीजिए। क्या आप इन्हें जिला नही सकते ?"

गाधीजी ने कहा—"जानकी, अब तुम्हे रोना नही है। तुम्हें तो हँसना है और बच्चो को हँसाना है। जमनालाल तो जिंदा ही है। जिसका यश अमर है तो फिर उसकी मृत्यु कैसी ? उसकी मृत्यु तो तभी हो सकती है, जब तुम उसका मार्ग-अनुसरण करने से मुह मोडो। जमनालाल ने परमार्थ की जिंदगी बिताई। तुम्हारी-जैसी साध्वी स्त्री उसे मिली तो फिर रोना कैसा ? जो काम उसने अपने कधे पर लिया था उसे अब तुम सम्हालो। उसी ध्येय के लिए तुम अपने-आपको सपूर्णतया अर्पण कर दो और जमनालाल जिंदा ही है, ऐसा मानो। तुम जानती हो कि मृत सत्यवान को सावित्री ने

अपने तप से पुनर्जीवित कर लिया था। वह पुनर्जीवन शरीर का क्या हो सकता था ? शरीर तो नाशवान ही है। सावित्री ने अपने तप से सत्यवान के तप को सदा के लिए अमरत्व दे दिया। यही 'सावित्री-सत्यवान' की कथा का सच्चा अर्थ है। तुम भी अपने तप से अपने पति के यश को जागृत रखोगी, तो फिर जमनालाल जिंदा ही है, ऐसा हम मान सकते है।"

"बापूजी, मै तो अपने-आपको अर्पण करने को तैयार हूं, पर मेरी शक्ति ही क्या ? मेरा तप ही क्या ? मै उनके काम को कैसे चलाऊगी ? कैसे उनके तप को जागृत रखूंगी ? आप इन्हे मरने मत दीजिए। आप क्या इन्हे जिला नही सकते ? तो क्या ये मर ही गये ? क्या अब बोलेंगे नही ?"

"मै तुम्हें झूठा धीरज नही देने आया हूं। जमनालाल का शरीर मर गया, पर असल जमनालाल तो जिंदा ही है और आगे के लिए उन्हें जिंदा रखना हमारा काम है।"

जानकीदेवी तो श्रद्धा में ओतप्रोत हो रही थी। बार-बार "इन्हें जिलाइए" की धुन लगी हुई थी। बेचारी कैसे विश्वास करें कि गया हुआ किसी भी हालत में कोई लौटा नही ? उनका विलाप तो किसी गौतमी की कहानी की याद दिलाता था। किसी गौतमी का बच्चा मर गया था, तो मोह-वश उसने उसका दाह नही किया। उसने सोचा, शायद मरा हुआ भी फिर से जिंदा हो सकता है। इसलिए बच्चे को लेकर भगवान् बुद्ध के पास पहुंची और कहने लगी, "भगवन्, इसे जिला दीजिए।" बुद्ध ने कहा, 'देवी, इसे मै अवश्य जिला दूगा। तुम कुछ राई के दाने मुझे ला दो। पर वह ऐसे कुटुम्ब से लाना, जहा किसीकी मृत्यु न हुई हो।" गौतमी घर-घर भटकी। पहले कुछ राई के दाने मागती, फिर पूछती, आपके यहा कभी कोई मृत्यु तो नहीं हुई ? जवाब वही मिलता जो मिलना चाहिए था। अत में थक गई। तब बुद्ध भगवान् के पास वापस लौटी और कहने लगी—"भगवन्, मै अनेक घरों में गई, पर ऐसा एक भी घर न मिला, जो मृत्यु से प्रहारित न हो।" तब भगवान बुद्ध ने उसे उपदेश दिया और उसका मोह हटाया।

गाधीजी ने भी जब उपदेश दिया तो जानकीदेवी की आशा टूट गई।

अब तो वह बाण से पीडित हरिणी की तरह तडफडा उठी ।

"पर जिला नही सकते तो उन्हे भगवान् का दर्शन तो कराइए । बापू, कुछ भजन गाइए । विनोबाजी से गीता सुनवाइए । हम सब भजन गायगे । चलो, अब "ऊ, ऊ बोले । कोई मत रोओ । सब 'राम-राम' पुकारो ।"

"जानकी, जमनालाल को तो भगवान् के दर्शन हो चुके । अब तुम्हे दर्शन करना है, उसकी तैयारी करो । जो काम उन्होने आधा किया है, उसे पूरा करो । उस काम के लिए तुम अपना तन, मन, धन सारा होम दो ।"

"तो बापू, मुझे सती करा दीजिए । क्या इस जमाने में कोई सती नही हो सकती ? आप विश्वास रखिए, मुझे आग नही सतायगी, कोई दर्द नही होगा । मैं सुख से जल जाऊगी । मुझे सती करा दीजिए ।"

"जानकी, जलने में क्या बहादुरी है ? हजारो स्त्रिया पति के साथ जली है । उसमें एक तरह की बहादुरी है सही, पर वह सच्ची बहादुरी नही है । असल सती होना कुछ न्यारी चीज है । वही सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है । सती को शरीर का क्या जलाना है ? वह तो तुच्छ है, मिट्टी है । तमाम दुर्गुणो को जला देना ही सच्चा सतीत्व है ।

जड-चेतन गुण-दोषमय विश्व कीन्ह करतार ।
सत हस गुणमय पियहि, परिहरि वारि विकार ॥

"सो तुम हस का अनुकरण करो ।

"अपने सब दुर्गुणो को जमनालाल की चिता में होम दो । बाकी जो बचे वह शुद्ध काचन है । उसे कैसे जलाया जा सकता है ? उसे तो कृष्णार्पण ही किया जा सकता है । मेरा मानना है कि स्त्री ही त्याग की मूर्त्ति बन सकती है, क्योकि हिन्दू-स्त्री विधवा होने पर सारे भोगो को तिलाजलि दे देती है और विकारो का शमन कर लेती है । इस तप के कारण उसमें एक नया बल आ जाता है । तुम अब त्याग-मूर्त्ति बन गई । अपने अवगुणो को तुम जमनालाल के हवन-कुण्ड में उसके शरीर के साथ भस्म करो और जो शुद्ध सुवर्ण रह जाय, उसे कृष्णार्पण कर दो । यही सती होना है । उठो, तुम सती हो जाओ ।"

"बापूजी, जैसी आपकी आज्ञा। धन को तो मैंने मिट्टी माना है। मुझे चाहिए भी क्या ? खानेभर को तो मेरे बच्चे भी मुझे देंगे। आप है, भगवान् है, यह ससार है। मुझे कौन भूखो मरने देगा ? इसलिए मेरी सम्पत्ति और मै सब कृष्णार्पण" श्री जानकीदेवी इतना कहकर स्वस्थ और शात बन गई।

जमनालालजी का मृत शरीर धीरे-धीरे पीला पडने लगा। पाव नीले होने लगे। तब तो याद आया कि जो बचा है उससे भी जुदाई होने-वाली है।

यह दृश्य निकट भूत का है, इसलिए अधिक स्पष्टता से सामने आता है। सुना, जमनालालजी की बेहोशी और मृत्यु का कारण तो रक्त के अधिक दबाव के कारण उनकी मस्तिष्क-स्थित शिरा का फट जाना था। मै सोचने लगा, क्या ब्रह्मरध्र-भेदन भी कपाल के भीतर की शिरा को योग-क्रिया द्वारा भेद देने का ही नाम था ? सम्भव है, प्राचीन ऋषियो को एक ऐसी क्रिया का ज्ञान हो, जिसके द्वारा वे इच्छा होने पर कपाल की शिरा का भेदन करके प्राण छोड देते थे। इसीको शायद 'कपाल-क्रिया' कहते रहे हो। जो हो, जमनालालजी ने सुख की मौत पाई। पन्द्रह मिनट के भीतर-भीतर सारा किस्सा खत्म हुआ। मुझे अक्सर लिखते थे, "ईश्वर से मागो कि मुझे सुख की मौत मिले।" ईश्वर ने उन्हें वही दिया, जो चाहते थे।

जमनालालजी का यह अन्तिम चित्र हृदय को अवश्य ही द्रवित कर देने-वाला है। पर उनका असली चित्र तो उनका कर्म-प्रदर्शक का काम दे सकता है। वह मनन करने योग्य है।

: १७ :

प्रथम विजय

कालीप्रसाद खेतान

अक्तूबर १९१२ के बीच की बात है। मारवाड़ी-समाज के नवयुवक सुधारकों ने संकल्प किया था कि समुद्र-यात्रा-निषेध पूर्ण रूप से तोड़ दिया जाय। कलकत्ता में पुराने तथा नए विचारवालों में इस विषय पर एकमत होने की कोई सम्भावना न रही थी। इसलिए कतिपय उत्साही नवयुवकों की सहानुभूति प्राप्त करके मैं जयपुर होता हुआ बम्बई पहुंचा। बम्बई में मुझे बिड़ला-बन्धुओं का न केवल आतिथ्य प्राप्त हुआ, उन्होंने मुझे आश्वासन दिया कि हर हालत में वह मेरा साथ देंगे। मेरे रिश्तेदार सेठ खेमराजजी ने मेरा बहुत प्रेम से स्वागत किया, परन्तु उन्होंने मुझसे आरम्भ में ही कहा कि उन्हें बहुत डर है कि विलायत-यात्रा के द्वारा धर्म तथा समाज पर बुरा आघात पहुंचेगा। वह पुराने विचार के सनातनधर्म-निष्ठ सज्जन थे। उनसे कुछ देर तक बातें हुईं। फलत: मुझे अनुमान हुआ कि वह अंध-विरोधी नहीं हैं। मैं अल्पवयस्कता के आवेग में कह बैठा कि यदि आपकी हार्दिक अनुमति न प्राप्त कर सकूंगा तो जहाज पर नहीं सवार होऊंगा। खेमराजजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर तत्क्षण अपने कई पुराने विचारवाले मित्रों को कहला दिया कि मैंने विलायत-यात्रा का निर्णय उनपर छोड़ दिया है। बम्बई के नवयुवक बन्धुओं में खलबली तथा निराशा फैल गई। अन्त में यह निश्चय हुआ कि मैं एक अत्यन्त धैर्यवान् तथा प्रभावशाली नवयुवक से मिलूं और उनसे परामर्श करूं। उनका नाम था जमनालाल बजाज। मुझे बम्बई पहुंचने के पहले उनका नाम सुनने का अवसर शायद नहीं मिला था। बम्बई पहुंचते ही कई मुंह से सुना कि जमनालालजी समाज में एक अद्वितीय पुरुष हैं। उनसे बिना मिले मैं विलायत न जाऊं। इसलिए उनसे मिलने

का तो निश्चय था ही, अब तो मिले बिना उपाय ही न रहा।

सायकाल मैं उनके यहा गया। प्रथम दर्शन कुछ विचित्र था, इसलिए मुझे जन्म-भर स्मरण रहेगा। मेरा परिचय पाते ही उनके मुह से शब्द तो एक-दो ही निकले, परन्तु उनकी आखो मे इतना स्नेह भरा था कि मैं देखकर अवाक् रह गया। वह पहले ही सुन चुके थे कि मैंने मामले को उलझन में डाल दिया है। उसके लिए उनके नेत्रो में जरा भी कष्ट तथा क्रोध का भाव नही था। उन्होंने एक भाडे की मोटर मगाकर मुझसे कहा, "चलिए समुद्र-किनारे। कौन-सा उपाय किया जाय, उसपर हम दोनो विचार-विनिमय करें।"

समुद्र-किनारे समुद्र-यात्रा का प्रश्न गम्भीरता से मथित हुआ—केवल मेरी व्यक्तिगत दृष्टि से नही, समाज को तथा देश को क्या लाभ-हानि है, कैसे मनुष्यो को समुद्र-यात्रा करने का अधिकारी स्वीकार करना चाहिए, कौन-कौन-से नियम माने जा सकते हैं, इत्यादि-इत्यादि। विदा होने के पहले उन्होंने कहा, "सेठ खेमराजजी से कह दीजिएगा कि कल सन्ध्या को मारवाडी विद्यालय में एक सभा बुलाई जाय और वहा इस प्रश्न का निर्णय हो।"

सेठ खेमराजजी ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया। दूसरे दिन शाम को मारवाडी विद्यालय का हाल सब दल-वालो से भर गया। भाई जमनालालजी—उन्होंने बडे प्रेम से वह रिश्तेदारी मुझे पहली भेंट के अन्त मे दे दी थी—की शान्त मूर्ति और बिडला-बन्धुओ के उत्साह को देखकर दिल में आशा हुई कि आज लक्षण तो अच्छे हैं। आरम्भ मे मुझे जो कुछ कहना था सो मैंने कहा। उसके बाद बहुत-से प्रश्नोत्तर हुए। वातावरण शुद्ध था। मुझे समझने मे देर न लगी कि जमनालालजी, बिडला-जी तथा अन्य नवयुवक मित्रो ने दिन-भर योग्यतापूर्वक काफी प्रचार किया था। जो हो, सभा में बहुत तरह की बातें उठ रही थी। किसीने कहा—कलकत्ते में पूरा विरोध है। जमनालालजी ने बडी शान्ति से पूछा, "क्या बम्बई कलकत्ते के पीछे-पीछे चलेगी या अपनी बुद्धि से काम लेगी?" फिर क्या था! बम्बई स्वतन्त्र विचारधारा में पड गई। जमनालालजी ने मुझे इशारा करके

दूसरे कमरे में भेज दिया। जब मैं लौटा तो देखा कि कई प्रबल वयोवृद्ध नेता कुछ-कुछ मेरे पक्ष में झुकने लग गए। देर हो रही थी। सेठ खेमराजजी ने कहा, "मैं तो समझता हूं, जिस प्रबन्ध के साथ और जिन उद्देश्य से कालीप्रसाद-जी जा रहे हैं, उनमें कोई विशेष हानि नहीं है और मैं तो इनका समर्थन करता हूं।" मैंने कहा, "मेरा प्रण पूरा हुआ और अपनेको धन्य समझता हूं।" सभा से आशीर्वाद लेकर मैं विदा हुआ। १९ अक्तूबर को समाज के सैंकड़ों शुभ-चिन्तकों ने मुझे बहुत प्रेम और उत्साहपूर्वक स्टीमर में रवाना किया। विदेश का द्वार मारवाड़ियों के लिए खुल गया। मारवाड़ी समाज एक बड़े बन्धन से मुक्त हुआ।

जुलाई १९१४ में वापस लौटने पर जमनालालजी ने बड़े प्रेम से स्वागत किया। उनके सहृदय आग्रह के कारण वर्धा होता हुआ कलकत्ते गया। यद्यपि बम्बई में मैं ग्यारह दिन ठहरा था, तथापि जमनालालजी से दिल खोल-कर घंटों तक बातचीत न हो सकी थी। वर्धा में वह मुझे गांव से दूर एक मनोहर सड़क पर ले गए, जहां नीम के वृक्षों की सुन्दर कतार मीलों तक लगी हुई थी। वहां विलायत के अनुभव, मारवाड़ी समाज में कुरीतियां तथा सुधार के उपाय, देश में उपयोगी शिक्षा-प्रणाली इत्यादि अनेक विषयों पर बातचीत हुई। उस दिन उनके हृदय की असली झांकी मुझे मिली। मैंने समझ लिया कि परोपकार के लिए वह अपनेको तन-मन-धन से अर्पण कर चुके हैं।

समुद्र-यात्रा का प्रश्न जमनालालजी के लिए पहला खुला संग्राम था। वर्षों तक एक सेनापति जनरल की हैसियत से उन्हें अग्रगामी बनना पड़ा था, कितने ही मोर्चों पर लड़ाई हुई। अन्त में इस प्रश्न के हल हो जाने का उन्हें सन्तोष था। प्रथम विजय का क्षेत्र कितना ही छोटा क्यों न हो, अपना एक महत्व रखता है।

१९१४ के बाद से जमनालालजी मेरे और मेरे कुटुम्ब के प्रति सहृदयता बनाए रक्खे रहे। उनके हृदय के विस्तार तथा गहरेपन का पता इस बात से चलता था कि किसी भी मतभेद के कारण वह किसीको अपने प्रेम से वंचित नहीं रखते थे।

: १८ :

भारत का सपूत

रामेश्वरी नेहरू

जमनालालजी छोटी ही अवस्था में इस असार ससार से चल बसे। वसे तो इस मृत्युलोक में आवागमन का चक्र सदा चलता ही रहता है, जो जन्मा है, उसकी मृत्यु निश्चित है, भगवान् ने कहा है—"गतासून गतासूश्च नानुशोचन्ति पण्डिता", परन्तु जो हजारो का सहारा हो, जो दूसरो का बोझा अपने कधो पर लेकर बैठा हो, उसके चले जाने मे हृदय शोकातुर क्यो न हो? भारतवर्ष की दरिद्र जनता की सेवा में लगे हुए अनेक कार्यकर्त्ता देखते-देखते क्षणभर में इस महापुरुष के चले जाने से बे-सहारा होगये। सहस्रो कार्यकर्त्ताओ को ऐसा लगा, अब अपनी कठिनाइयो को जाकर किसे सुनायगे? अब हमारी मुश्किलो को कौन हल करेगा? अब हमारे अच्छे-बुरे को कान लगाकर कौन सुनेगा? अपने अद्भुत प्रेम से, सहानुभूति से हमारे दुखो में कौन शरीक होगा? जमनालालजी ने सचमुच अपने आपको लोक-सेवा के अर्पण कर दिया था। अपनी आत्मा का साधारण जनता में समावेश करके वे अपना व्यक्तित्त्व भुला चुके थे। उनके समान सच्चे, वीर, त्यागी, महापुरुष ससार में रोज-रोज नही जन्मते। उन्होने भारत की जो सेवा की है, वह विरले ही किसी दूसरे ने की होगी।

गाधीजी के रचनात्मक कार्य के प्रत्येक अग के चलाने में उनका बडा भारी हाथ था। वे नये भारत के एक निर्माण-स्तम्भ थे। उनके पवित्र हाथो और शुद्ध हृदय से चलाये हुए कार्यों से ही, जिन्हें उन्होने अपने जीवन और प्राण-शक्ति से सींचा, भारत उन्नति के मार्ग पर आगे बढ रहा था। सार्वजनिक जीवन में उनका स्थान अब कौन ले सकता है?

इतना सब होते हुए भी उनकी नम्रता विचित्र थी। उनको शायद स्वप्न

में भी कभी यह ध्यान नहीं आता था कि उन्होंने कोई बड़ा काम किया है। उनका आदर्श ऊंचा, समुद्र के समान अटल था, और सदा उनकी दृष्टि उसी पर लगी रहती थी। अपनी ऊंचाई को देखते हुए तो उन्हें अपनी त्रुटियां और कम-जोरियां ही दिखाई दिया करती थीं। वे क्या जानते थे कि वे अपने आदर्श के कितने निकट पहुंच चुके थे।

उनका मन तो और ऊंचा उठने के लिए सदा ही अधीर रहता था। सेवा का भाव बढ़ रहा था, कार्य का क्षेत्र दिन-दिन विस्तृत हो रहा था। मन की शुद्धि होकर आत्मा का विकास हो रहा था, परन्तु वे अपने गुणों से नितान्त अपरिचित थे। तभी तो जिनसे बात करते थे उनका मन मोह लेते थे। उनसे लाखों आदमी प्रेम करते थे।

वे उन थोड़े से लोगों में थे जो, जो सोचते हैं, वही कहते हैं, जो कहते हैं, वही करते हैं। भारी धनराशि के स्वामी होकर भी आदर्श सादा जीवन बिताते थे, धन का सच्चा उपयोग करते थे, बाहरी दिखावे और विलासिता में एक पैसा भी व्यर्थ न खोकर लाखों रुपये का दान काल और पात्र को देख-कर करते थे।

उनमें गुण थे और उनका जीवन आदर्श था। वे भारत के सच्चे सपूत थे। महात्मा गांधी के अनोखे भक्त थे। आज उनकी कीर्ति की उज्ज्वल ज्योति से भारत रोशन है और उनकी प्रेम-भरी याद भारतवासियों के हृदयों में बराबर कायम है और रहेगी। इतिहास के पन्नों में उनका नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायगा। भारत के भावी बच्चे सदा स्नेह और आदर से उनकी कथा बांचकर उसपर चलने का प्रयत्न करेंगे।

जमनालालजी मरे नहीं, जिन्दा हैं और सदा जिन्दा रहेंगे।

: १९ :

उनकी सहृदयता

त्र्यम्बक दामोदर पुस्तकें

पाच-सात बार मुझे जमनालालजी के साथ रहने का मौका मिला। तीन-चार बार तो मैं उनका मेहमान होकर ही उनके यहा ठहरा था। वे उज्जैन-इदौर आये थे। उस समय भी मैं उनके साथ था। उनके सौजन्य, आदरातिथ्य, व्यवहार-कौशल, उद्योगिता, देशप्रेम, औदार्य आदि कई गुणो का जो परिचय मुझे हुआ, उसकी मेरे दिल पर तो हमेशा के लिए छाप रहेगी।

वर्धा में उनकी बैलगाडी में बैठकर मैं महिला-आश्रम देखने गया। इत्तफाक से बैल ने मेरे पैर पर लात मार दी। मुझे चोट आई। दो-तीन रोज मुझे वहा रहना पडा। वे खुद मेरे इलाज में काफी दिलचस्पी लेते रहे और काफी देर तक मेरे पास बैठे रहते थे। थोडा-सा आराम होने पर मैंने उज्जैन जाने का आग्रह किया। मैं सहारे से उठ सकता था, थोडा घूम-फिर भी सकता था तो भी बिजौलिया के माणिक्यलालजी से मुझे उज्जैन तक पहुचाने को कहा और कई दिनो तक मेरे स्वास्थ्य की पूछताछ करते रहे।

वे एक बार उज्जैन आये तो इस खयाल से कि उन्हें अच्छी जगह ठहराया जाय, हम लोगो ने उनके ठहरने का प्रबन्ध विनोद मिल में किया। उन्होंने दो-तीन दफा मुझसे कहा कि आपने मुझे अपने मकान पर क्यों नही ठहराया ? मैं तो वहा ज्यादा खुशी से रहता। मैंने कहा—"मेरे यहा तो जगह बहुत थोडी है और आपको बहुत असुविधा होती।" उन्होंने हँसकर उत्तर दिया, "आप भी तो उन्हें महते हैं। कार्यकर्त्ताओ को एक साथ ही रहना चाहिए।" इतने बडे आदमी होते हुए भी मुझ-जैसे साधारण आदमी का भी उनको कितना खयाल था ?

: २० :

उनकी महान देन

वैकुंठलाल मेहता

उन लोगो में, जिन्होने भारतीय स्वाधीनता-सघर्ष के १९१७ से १९४७ तक के दौर को देखा है, कम ही ऐसे होगे जो राष्ट्रीय कार्य की वढोतरी में श्री जमनालाल बजाज के २५ वर्षों से भी अधिक काल तक के उनके महान् योगदान से अपरिचित हो। लेकिन इनमें से भी कई श्री जमनालालजी को काग्रेस के कोषाध्यक्ष, काग्रेसी मच के एक प्रमुख व्यक्ति तथा काग्रेस को उदारता से चदा देनेवालो में एक के रूप में ही जानते थे या उन्होंने उनके बारे में ऐसा ही सुन रखा था। जमनालालजी यह सब तो थे ही, लेकिन उनकी प्रसिद्धि के लिए उनका यह अकेला ही दावा नही है।

चालीस साल से भी ज्यादा हुए, मेरी श्री जमनालालजी से जान-पहचान हुई। यह उनके राजनीति-जगत में प्रवेश करने से पहले की, पर व्यापार-जगत् में घुसने के करीब की ही बात है। वर्धा में व्यापार में सफलता प्राप्त कर लेने के बाद श्री जमनालालजी ने अपनी फर्म बबई में शुरू की। अपने शुरू-शुरू के दिनो में वह अघेरी (बबई की एक उप-बस्ती) में रहा करते थे। और मै पहली बार हमारे परिवार के 'टेनिसकोर्ट' पर उनके ससर्ग में आया। वह मुझसे भी ज्यादा वेदिली से टेनिस खेलते थे, लेकिन उन्होने जल्दी ही टेनिसकोर्ट के छोटे-से दायरे में और मेरे मकान तक में अपने प्रभाव को महसूस करा दिया। मेरे पिता और उनके बीच आयु का अंतर उनके बीच मित्रतापूर्ण तथा व्यक्तिगत सबधो के पैदा होने में बाधक नही बना। वास्तव में, श्री जमनालालजी मेरी अपेक्षा पिताजी के अधिक निकट थे, विशेषकर इसलिए कि दोनो कई सस्थाओ के सह-सचालक थे।

१९३४ के अत में जब मै पहली बार वर्धा गया और बजाजवाडी

में ठहरा, तो मुझे यह बताया गया कि कोई आधा वर्धा श्री जमनालालजी का है और कस्बे में उनकी मरजी कानून है। यह घोर अतिशयोक्ति-पूर्ण कथन था, लेकिन एक बात साफ थी कि उन्होंने और उनके परिवार ने वर्धा के विकास में किसी भी स्थानीय व्यक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक योगदान किया था और अपने लोक-कार्य के कारण श्री जमनालालजी को बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता था। यह भी ठीक है कि श्री जमनालालजी की भूमि-विकास के भावी क्रम के बारे में बड़ी पकी हुई समझ थी। अपने साधनों से वह ऐसी संपत्ति को, जिसके मूल्य के बढ़ने की संभावना होती थी, खरीद-कर रिहायशी या व्यापारी प्रयोजनों के लिए बेचने के लिए उपलब्ध कर देते थे। अंधेरी की 'गार्डन कालोनी', जहां मैं अब रहता हूं, केवल जमनालाल-जी की इस दूर-दृष्टि के कारण है कि उन्होंने धान के खेतों को खरीदकर मकान बनाने के मतलब के बनाकर उपलब्ध कर दिया था।

व्यवसायियों में वह गांधीजी के जादू में आनेवालों में सबसे पहलों में थे। उनका जीवन—निजी और सार्वजनिक—गांधीजी के साथ उनके संसर्ग से इतना ढल गया था कि यह कहा जा सकता था कि गांधीजी ने उन्हें आदमी के रूप में फिर से बनाया। लेकिन यह कथन अंशत ही ठीक होता—जमनालालजी में चरित्र के ऐसे गुण विद्यमान थे जिनके कारण वह कहीं पर भी आदर और सम्मान प्राप्त करते। पुरानी सरकार ने वास्तव में उनको एक खिताब दिया भी था—बहुत करके उनके इन गुणों के कारण, और बहुत करके उन सेवाओं के कारण, जो उन्होंने छोटी आयु में ही अपने माने शहर वर्धा में की थीं।

वह केवल गांधीजी की मंडली के अंग के रूप में ही नहीं चमके। राष्ट्रीय संग्राम के प्रारंभिक दिनों में ही श्री किशोरलाल मशरूवाला तथा श्री गोकुलभाई भट्ट के साथ जमनालालजी ने विलेपार्ले छावनी के चारों ओर कार्यकर्ताओं का एक ऐसा गिरोह एकत्र कर लिया, जिनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य जहां भी कर्तव्य की पुकार हो वहां सेवा करना था। मुख्यत इन्हीं तीनों ने एक ऐसे संगठन की नींव डाली, जिसने सभी मोर्चों

पर एक अद्वितीय ढंग से राष्ट्रीय संघर्ष चलाया। रचनात्मक गतिविधियों पर संभवतः इतना अधिक ध्यान और कहीं नहीं दिया गया, जितना कि बंबई की उपनगरी के कांग्रेसी कार्यकर्ताओं ने दिया।

यह श्री जमनालालजी के व्यावहारिक दृष्टिकोण और कृषि, वाणिज्य तथा उद्योग में उनकी दिलचस्पी के कारण ही था कि वह गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम के सभी बहिर्मुखी पहलुओं में कई और तत्कालीन कांग्रेस-कार्यकर्ताओं की अपेक्षा कहीं अधिक सजीव एवं सक्रिय भाग ले पाये। जमनालालजी का भाग कोई शास्त्रीय ढंग का न था, जो लिखने, भाषण देने या समिति-सभाओं में सहायता देने तक ही सीमित रहता। योजना के कार्यक्रम का कोई पहलू मुश्किल से ऐसा होगा, जिसकी पूर्ति में जमनालालजी ने अपना योगदान न किया हो। गांधीजी को तो बस एक बार अपनी योजनाओं के परिणामों के बारे में निश्चित होने और किसी नये कार्यक्रम को निश्चित करके यह बताने भर की जरूरत थी कि उनके कार्यक्रम की आवश्यकताएं क्या हैं। बाद में तो जमनालालजी सभी जरूरी चीजों को गांधीजी की सेवा में देने को सदा तैयार थे। यदि जमनालालजी से भूमि, धन, बिना ब्याज के कर्ज आदि के रूप में अधिक सहायता नहीं ली गई, तो यह इसलिए नहीं था कि जमनालालजी की तरफ से कोई हीला-हवाला था, बल्कि इसलिए कि गांधीजी ने इसकी सीमाएं निश्चित कर दी थीं कि सहायता कहांतक जा सकती है। मुझे संदेह है कि हमारे राष्ट्रीय, सामाजिक तथा आर्थिक आंदोलन के दौरान में कोई और ऐसा साधन-सम्पन्न दाता था जिसने इतनी अधिक, इतनी स्वार्थहीनतापूर्वक तथा इतने अरसे तक सहायता दी हो जितनी जमनालालजी ने दी।

वह विनम्र, आडंबरहीन, मित्र-भावपूर्ण भलाई के लिए सदा तैयार और भाषा तथा व्यवहार में सदा मधुर थे।

: २१ :

पूर्णतः धार्मिक

केशवदेव नेवटिया

मेरा और जमनालालजी का सपर्क इस प्रकार हुआ कि मेरी खुद की रुचि भी समाज-सुधार की ओर थी और कुछ राजनीति की तरफ भी। मैंने अपने जन्म-स्थान फतेहपुर (राजस्थान) में ही सुना था कि जमनालालजी इन दोनो ही बातो में बडे योग्य है और पूरा रस ले रहे है।

उन दिनो मेरी अवस्था १९-२० वर्ष की थी और उनकी १७-१८ की। बम्बई से फतेहपुर (राजस्थान) लौटनेवाले लोग जमनालालजी की प्रशसा किया करते थे। मैंने पहले-पहल उन्हें १९१४ ई के बाद ही बिडलो के यहा बम्बई में देखा।

अवसर इस प्रकार आया कि श्री रामेश्वरदासजी बिडला ने एक मकान किराये पर ले रखा था। जाति-बिरादरीवालो को वे वहीं भोजन कराया करते थे। उस दिन जब सब भोजन करने बैठे तो रामेश्वरदासजी ने कहा—"बाजरे की रोटी और राबडी बनाई है, जमनालालजी! आदत बनानी होगी—व्यापार मे नुकसान है।" मैंने उनकी बातो से समझ लिया कि जमनालालजी बजाज यही है। अभी तक उनसे मिलने का मौका इसलिए नही आया था कि न तो वे ही हमेशा बम्बई रहते थे, न मै ही।

मेरा जमनालालजी से व्यापार में साथ इस प्रकार हुआ कि मेरे भतीजे रामेश्वर नेवटिया की शादी की बातचीत जमनालालजी की लडकी कमला के साथ चली। मुझे लिखा गया तो मैंने इस सबध पर अपनी मुहर लगा दी। सगाई होगई। बाद में शादी भी।

मै बम्बई में अपनी दुकान खुलने के २-३ वर्ष बाद आया। उस समय बम्बई के बाजार में मारवाडी समाज में सूरजमलजी मुख्य थे। वैसे तो

शायद १९०६-७ में ही वम्बई आया, पर फतेहपुर आता-जाता रहता था। इसलिए उनसे कई साल बाद ही परिचय हो पाया।

जमनालालजी से सबध और परिचय होने के कारण जब मारवाडी अग्रवाल महानभा का अधिवेशन वर्धा में हुआ तो मैं वहा गया। उसके बाद यह अधिवेशन वम्बई में हुआ, जिसका स्वागत-मत्री मैं हुआ। जमनालालजी ने इस अधिवेशन मे भाग लेकर उसे सफल बनाया। जातीय कोप भी उन्ही-के प्रयत्न से बन गया।

इस बीच जमनालालजी से व्यक्तिगत सपर्क हो जाने के कारण घनिष्ठता वढी। उनके साथ मेरा व्यापारिक सवध तब हुआ, जब मेरे बडे भाई कन्हैयालालजी की मृत्यु से मेरे अपने घर के व्यापार मे नुकसान रहने लगा। मेरे चाचाजी भी थे, पर मैं दुकान से हट गया। इसी सिलसिले में जब जमनालालजी से बातचीत हुई तो उन्होंने सलाह दी कि मैं बच्छराज जमनालाल पेढी में उनका भागीदार बन जाऊ। मुझे बात पसन्द नही आई, पर जब रामनारायणजी रुइया आदि की राय से उन्होंने अपनी पेढी को लिमिटेड कपनी बना दिया तो मैंने भागीदार बनना मजूर कर लिया। यह कम्पनी १९२६ ई में स्थापित हुई और १९२७ में इसकी रजिस्ट्री लि कम्पनी के रूप में होगई। इस कम्पनी में श्री नारायणलालजी पित्ती और रामनारायणजी रुइया भी थे। इस कम्पनी मे जमनालालजी की तथा आढतियो की रुई बिकने के लिए आने लगी।

उन्होंने व्यापार मे हिस्सेदार बनने के समय मुझे हिदायत दी—"व्यापार में ईमानदारी और सचाई से ही काम होना चाहिए, चाहे नफा भले ही कम हो।" मेरी खुद की रुचि भी ऐसी ही थी। इसलिए मैंने स्वीकार कर लिया और हमारा कभी भी मतभेद नही हुआ।

जब मैं जमनालालजी से मिला तो उनके पहले ही वे एक बीमा कम्पनी (न्यू इडिया इन्स्योरेन्स क लि) बना चुके थे। इस कम्पनी का सपर्क बडे-बडे लोगो से होगया। जमनालालजी व्यापार के सिलसिले में हमेशा बडे-बडे व्यापारियों से मिलते-जुलते थे, परन्तु बीमा कम्पनी बन जाने के बाद

जब इनके साथ व्यापारियों ने देखा कि जमनालालजी की रुचि मुख्यत नफा कमाने की नहीं है तो उनकी रुचि उधर कम होगई। रामनारायणजी, डेविड सासुन आदि ने इसमें ज्यादा भाग लेना शुरू किया, परन्तु टाटावालो ने उन सबमे अधिक दिलचस्पी ली।

बाद में जमनालालजी बीमा कम्पनी से अलग होगये, क्योंकि भागीदारी की अमर्यादित मुनाफाखोरी की नीति से वे सहमत नहीं हुए।

मेरे साथ जमनालालजी का सपर्क अन्त तक सुचारु रूप से निभा। वे बम्बई में शुरू-शुरू में मेरे पास ठहरते थे—भाई-भाई की तरह रहते—जानकीदेवी और कमलनयन भी हमारे यहा घरेलू तरीके पर ही रहते थे।

तिलक स्वराज्य फड इकट्ठा करने में जमनालालजी ने पूरी कोशिश की और उसकी पाई-पाई का हिसाब पूरी ईमानदारी के साथ रखा। इस फड का धन कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति की मजूरी से ही खर्च होता था। हिसाब-परीक्षक नियुक्त थे।

कांग्रेस की रकम सुरक्षित रखने की जमनालालजी सदा कोशिश करते रहे। उन दिनो पुलिस छापा मारती थी। उससे कांग्रेस का धन बचाने का जमनालालजी ने पूरा प्रयत्न किया। ४॥ लाख रुपये जो जमा थे वे निजी गारटी देकर बैंक से निकाल लाये और मित्रो मे बाटकर रखे। उन दिनो खुफिया पुलिसवाले पीछे लगे रहते थे। १९३२ के आन्दोलन में महात्मा-गाधी के कहने से रुपया छिपाया नहीं गया और तिलक स्वराज्य फड का हिसाब दिखाने के लिए वे जनता को आमंत्रित करते थे।

जमनालालजी की व्यापारिक बुद्धि स्वाभाविक रूप में बडी ही प्रखर थी। वे प्रत्येक बात पर बारीकी से विचार करते और बच्छराज कम्पनी का काम-काज देखते थे।

अपने अतिम दिनों में वे मुझे अपने साथ रहने के लिए महात्माजी के सामने कहा करते थे, जिससे मैं इन्कार न कर सकू और मेरेलिए एक और झोपडा बनवा देने को कहा था, पर इसी बीच वे स्वय ही चले गये।

उनपर सबसे अधिक प्रभाव महात्मा गाधी, श्रीकृष्णदास जाजू और वृद्धिचन्द्र पोद्दार का पडा। वास्तव में वे पूर्णत धार्मिक और वैरागी पुरुष

: २२ :

स्नेह-मूर्ति

महावीरप्रसाद पोद्दार

अज्ञात रूप से भाई जमनालालजी का मुझपर बहुत प्रभाव पड़ा है। मेरे वे सच्चे मित्र थे, मुझे उनकी मित्रता का गर्व था। मेरे प्रति उनके हृदय में बहुत अधिक स्नेह था। वैसे तो मेरा परिचय उनसे मारवाडी अग्रवाल महासभा के प्रथम अधिवेशन के कई वर्ष पहले होगया था पर उस अधिवेशन के समय से तो यह मालूम होने लगा था कि मुझपर उनका विशेष स्नेह है। मैं समझता हू कि उनका स्नेह जैसा मैंने अनुभव किया, वैसा ही और बहुतो ने किया होगा। कुछ खास आदमियो के प्रति खास स्नेह तो हम सभीमें रहता है। पर बहुत आदमियो के प्रति बहुत स्नेह रखना आम आदमियो के लिए सभव नही होता। मालूम होता है कि श्री जमनालालजी में बहुतो के प्रति बहुत स्नेह रखने की महान् शक्ति थी। शायद यह हरकोई समझता था जैसे मैं समझता हूं कि वह उसपर खास स्नेह रखते है। इस दृष्टि से वह स्नेहमूर्त्ति थे जिससे सदैव स्नेह की आभा प्रकट होती रहती थी। जिनपर वह अधिक स्नेह रखते थे, उनको प्राय काम पडे खूब डाटते और लताडते थे और यह कभी-कभी ही नही, बराबर पर उस स्नेह के कारण वह डाट कितनी मीठी लगती थी! वह डाट क्या होती थी, शिक्षा होती थी। कोई काम ठीक नही बनता था तो उसे बतलाते-समझाते थे। सबसे बडी फटकार तो उनकी तब पडती थी, जब हम किसी दूसरे आदमी के साथ व्यवहार में कोई अन्याय करते थे। वह मुझसे अक्सर कहा करते थे कि तुम दूसरो के आराम का खयाल नही करते हो, यह कभी नही कहते थे कि करना चाहिए। जहा मेरी गलती होती थी उसको सामने रखकर जरा जोर से कहते थे। मेरे-जैसे लक्कड आदमी पर किसीकी बात का कोई असर पडता है? पर उनकी बात हृदय पर प्रभाव डालती जान

पडती थी; इसलिए नही कि वे मुझसे मोटे-ताजे ज्यादा थे या लम्बाई में अधिक थे, या पैसे उनके पास अधिक थे या उन्होने कोई पोथिया मुझसे ज्यादा पढी थी। इन सबको तो मै अति तुच्छ मानता हू। मै देखता था कि वह मुझसे दूसरो के आराम का खयाल रखने को जितना कहते थे, उससे कही अधिक वह दूसरो के हृदय का खयाल खुद रखते थे। उनके वचन से, कार्य से, और मन से भी किसीको ठेस न पहुच जाय, इसका उन्हें बडा ध्यान रहता था। यह तो मैं नही कह सकता कि उनसे किसीको ठेस पहुची ही नही होगी, पर वह जितने व्यापक क्षेत्र में काम करते थे, और जितने काम उन्होने उठा रक्खे थे, और इसकी वजह से जितने अधिक आदमी उनके सपर्क में आते थे, उस भारी सख्या को देखते हुए मेरा खयाल है कि शायद ही हम लोगो के परिचितो में कोई ऐसा निकले, बापू को छोडकर, कि जिसने अपने व्यवहार से दूसरो का दिल कम-से-कम दुखाया हो। आज के जमाने में धनी से—धन से नही—द्वेप करनेवालो की कमी नही है, और धनी में और चाहे जितने गुण हो, पर एक धन होना ही उसके सारे दुर्गुणो का कारण मान लिया जाता है और फिर उसकी निन्दा-ही-निन्दा की जाती है। भाई जमनालालजी भी ऐसे द्वेपियो के द्वेप के शिकार होने से बिल्कुल तो नही बच पाये, पर और किसी भी धनी के मुकाबले में उनके प्रति इस द्वेप-परायण वर्ग का द्वेप कम-से-कम था। यह उनको बख्शता हो, सो नही, यह वर्ग बख्शने के तो पक्ष में ही नही रहता। ऐसे लोगो को भी, मैंने देखा कि जमनालालजी के प्रति कुछ कहते-सुनते तनिक सकोच होता था। यह कोई कम बात नही थी और आज तो ऐसे लोगो को भी यह पता चल गया होगा कि जमनालालजी ने अपना अधिकाश जन-सेवा के लिए ही अर्पण कर दिया था। तन, मन धन, तीनो जन-सेवा के लिए अर्पण करनेवाले बहुत थोडे होते है। उनमें उनका स्थान बहुत ऊचा था। यही सब चीजें थी जो उनकी डाट मुझ-जैसो को बर्दाश्त करने के लिए बाध्य करती थी और जब उनसे अलग होता था तो मन में उन चीजो पर ऊहापोह करता रहता था।

इस बार जब मै वर्धा गया था, तब की दो-एक बातें कहूगा। नाम छोड देता हू। एक सज्जन से मैंने कुछ काम लिया था। मेरे मन पर उनके लोभी

होने का कुछ सस्कार था और मैंने सुना कि वह भी मुझको अच्छा आदमी मन में नही समझ रहे थे। बाहरी व्यवहार हम दोनो का बहुत अच्छा था। मैंने अपने मानसिक सस्कार भाई जमनालालजी पर प्रकट कर दिये और कुछ मित्रो पर और। भाई जमनालालजी ने उस आदमी से बाते की और मेरी बातो को किसी अश में ठीक मानने के बाद भी मुझे आडे हाथो लिया और उसका नतीजा यह हुआ कि मुझे अपने सस्कार बदलने पडे। उन्होंने कहा कि इस तरह की बातो में तुम उसका कोई सुधार नही कर सकते। मजाक में मैंने उनसे कह तो दिया कि भाईसाहब, यह सुधार वगैरा का ठेका आपके ही पास है, हम लोग तो उन आदमियो में है जो मन मे आती है, वह साफ-साफ खरी-खरी कह देते है कि 'सत्यवक्ता न दोषभाक्'। वह जवाब सुनकर मुस्करा दिये, पर उपरोक्त वाक्य कहते समय ही विवेक अन्दर से कहता था कि कैसे तो तुम सत्यवक्ता और कहा के साफ कहनेवाले ? वह खरी नही, खुरदुरी कहते हो, जो दूसरो के हृदयो को छील देती है। अगर डूबकर देखो तो किसीके बारे में कोई बुरा वचन निकालने की गुजाइश ही नही। डाट खाकर आदमी उत्तेजित होता है, या तो पस्त हो जाता है। उनकी डाट से न उत्तेजना आती थी, न पस्ती। हँसते-हँसते मन अपनी भूल स्वीकार कर लेता था और वह सारा असर था उनके आचरण का, कहने का नही। सिर्फ कहने वाले की वाणी कानो तक ही परिमित रहती है, मन में पैठती ही नही। मैं उनकी वाणी का नही, आचरण का कायल था, उसमें वह महान् थे।

एक छोटी-सी बात कहना है। उनका देहान्त होने से कुछ ही दिन पहले, ३० जनवरी की बात है, मैं गोपुरी मे उनकी नई बनी हुई झोपडी में उनके साथ ठहरा था। वह रात को नौ बजे मौन ले लिया करते थे और वह मौन प्रात काल साढे चार बजे तक चलता था। वह नौ बजे सो भी जाते थे। जिस दिन की बात है, आकाश बादलो से खूब घिरा हुआ था। हवा बहुत जोरो की चल रही थी। मैं रात-को दे लगभग वहा पहुचा। देखा कि वह झोपडी के बाहरी हिस्से में अपने तख्त पर सोये हुए है। बूदा-बादी का भी कुछ सामान था, हवा भी जोरो की थी। यो तो मैं भी बाहर तख्त पर ही सोया

करता था, पर उस दिन के मौसम में बाहर सोने की इच्छा नही हो रही थी और चाहता था कि उन्हे भी कहूँ कि आप भी अन्दर सोयें तो अच्छा। फिर सोचा कि अब सो गये हैं तो सो जाने दो। रात को पानी बरसेगा तो उठकर तख्त भीतर डलवा देंगे। मैं अपनी रजाई ओढकर अन्दर सो रहा। रात को पानी बरसा, उनके ऊपर खूब टपका, सवेरे मालूम हुआ कि मेरी रजाई पर भी कुछ टपके गिरे थे, पर इतने कम कि मुझे जगा न सके, लेकिन उनके तख्त के आस-पास तो जैसे 'ओरियानी' चूती हो, इस तरह तख्त के चारो ओर का हिस्सा भीगा दिखाई दिया। उनके कपडो पर भी खूब टपके पडे होगें। प्रात काल बात होने पर मालूम हुआ कि कुछ टपके तो पडे-पडे ही सहे। फिर दो बजे से उठकर बैठ गये और बिस्तरा सिकोडते रहे। उनका सेक्रेटरी चि० गोपीकृष्ण, नौकर विट्ठल और मैं, ये तीन आदमी वहा थे। उनका तख्त दो आदमियो से उठने लायक था और वह चाहते तो, जिस तख्त पर मैं सोया था, वह भी बहुत लम्बा-चौडा था और उसपर गद्दा पडा था, आकर उसपर सो सकते थे। पर शायद मेरे जाग जाने के खयाल से और दूसरे दो व्यक्तियो के आराम में खलल न डालने के खयाल से वह साढे चार बजे तक अपने तख्त पर बैठे हवा और पानी का प्रकोप सहते रहे और इसकी चर्चा तक न की और मन में महसूस भी किया जान नही पडा। यो कष्ट सहना और मौज में रहना उनके लिए स्वाभाविक-सी बात थी। हम एक दिन रेल में कही भीडभाड में तकलीफ पा लेते हैं तो महीनो उसके किस्से गाया करते हैं। मनुष्य के पास चर्चा के लिए बडी चीजें बहुत कम होती हैं। अधिकतर वह तुच्छ बातो की ही चर्चा करता रहता है और जिनमें अपनी तकलीफो की और दूसरो के गुण-अवगुणो की मात्रा प्रधान रहती है, पर भाई जमनालालजी में ये दोनो बातें नही थी। अपनी तकलीफो की चर्चा तो वे जानते ही न थे। गुण-अवगुणो की चर्चा भी काम भर को ही।

: २३ :

वे अमर होगये

सीताराम सेकसरिया

शायद सन उन्नीससौनब्रह की बात है। जमनालालजी कुछ मित्रो के साथ कलकत्ते के बोटानिकल बाग में घूमने गये थे। वहा साइकिल की दौड लगाने की बात चली तो जमनालालजी सबमे पहले तैयार। लोगो ने कहा "आप इतने मोटे आदमी हैं, साइकिल पर से गिर पडेंगे।" वे बोले—"मै तो देहाती आदमी ठहरा! वहा तुम्हारे-जैसी मोटरें थोडे ही है। जल्दी का काम होता है तो साइकिल ही काम आती है।" खैर साहब, जमनालालजी साइकिल पर चढे। देर तक घूमते रहे। कई लोग जो अपनेको साइकिल चलाने में बड़ा तेज मानते थे, उनसे भी जमनालालजी मीर निकले। परन्तु अन्त में सामने से एक मोटर गाडी आई और वे अपना तौल नही सम्हाल सके, गिर ही पडे। लोग सहम गये। उन्होंने समझा, मोटर का धक्का लग गया। मगर जमनालालजी तुरन्त खडे होगये और बोले, "कुछ नही हुआ।" पर दाहिने घुटने से बराबर खून बह रहा था। योंही पोछ-पाछकर घर आये।

दर्द सख्त था, पर मुह से कहते नही थे। डाक्टर को बुलाया गया। उसने कहा—"चोट मामूली नही है।" सबसे बडे सर्जन को बुलाया गया। उन्होंने कहा, "मास के भीतर ककर घुस गये हैं, आपरेशन करना होगा। आपरेशन के लिए क्लोरोफार्म भी देना पडेगा।" जमनालालजी ने कहा, "क्लोरोफार्म की क्या जरूरत है?" डाक्टर बोला—"बिना क्लोरोफार्म के आपरेशन नही हो सकेगा।" जमनालालजी ने कहा, "अच्छी बात है। आप क्लोरोफार्म का इन्तजाम रखिए और आपरेशन बगैर क्लोरोफार्म के शुरू कर दीजिए। मै न सह सका तो आप बेशक क्लोरोफार्म दे दीजिए।" डाक्टर को यह बात पसद तो नही थी, लेकिन उसने सोचा

कि ये अपने-आप ही क्लोरोफार्म मागने लगेंगे । इतना दर्द सहना कोई खेल थोडे ही है !

विना क्लोरोफार्म के आपरेशन शुरू हुआ । आपरेशन के समय जो लोग मौजूद थे, वे कहते थे कि मास के अन्दर से डाक्टर जब ककर चिमटे से खीच-खीचकर बाहर निकालता था, उस दृश्य को देखना मुश्किल था । लेकिन जमनालालजी ने चू तक न की । डाक्टर दग रह गया । बोला, "ऐसा सह‌ने वाला आजतक नहीं देखा । मुझे तो विश्वास नही था कि यह आपरेशन क्लोरोफार्म के विना हो सकता है ।" ऐसी थी जमनालालजी की सहनशक्ति और धीरज ।

... ...

जमनालालजी से पहले-पहल मैं उस आपरेशन के समय ही मिला । उस समय उनकी उम्र कुल सत्ताइस साल की थी । पर उसके पहले ही वह कई सार्वजनिक कार्य शुरू कर चुके थे और देश के अच्छे-से-अच्छे लोगो के सम्पर्क में आ चुके थे । जहा कही जाते या किसीसे मिलते, तो वरावर यह कोशिश करते रहते कि किसी कार्यकर्त्ता से परिचय हो जाय । कोई नया कार्यकर्त्ता तैयार हो, इसीकी तलाश में रहते । इस आपरेशन के समय उन्हे कई दिन कलकत्ते में रहना पडा । शाम को उनके पास कलकत्ते के मारवाडी युवको का जमघट लगता । और लोग भी आते, जिनमें श्री अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी, स्व० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी, आदि प्रमुख थे । समाज-सुधार और राजनैतिक विषयो पर बातें होती रहती । बीच-बीच में चतुर्वेदीजी के हास्य-विनोद के फव्वारे सबकी तबीयत को तर कर देते और कलकत्ते के बाग-बाजार-वाले नामी रसगुल्लो का स्वाद भी मिल जाता ।

थोड़े ही दिनो बाद उन्नीससौसत्रह के बडे दिनो की छुट्टियो में श्रीमती एनी बेसेंट की अध्यक्षता में काग्रेस का अट्ठाईसवा अधिवेशन हुआ । उसमें उस समय के कर्मवीर गाधी भी आनेवाले थे । लोकमान्य के नाम की धूम थी । गाधीजी तो जमनालालजी के ही अतिथि थे । उन दिनो वह काठियावाडी वेश-भूपा में रहते थे । वही बलदार पगडी और लम्बा अगरखा; लेकिन

जूते नदारद । हम लोगो को जमनालालजी ने गाधीजी से मिलाया। वैसे तो वहा का सारा काम हमी लोगो के जिम्मे था। उस समय जिन्होने जमनालालजी को गाधीजी का आतिथ्य करते देखा है, उन्हे याद है कि उस समय भी गाधीजी के साथ उनका सम्बन्ध कितना गहरा था और उन्हे गाधीजी के प्रति कितनी गहरी श्रद्धा थी। बाद में तो गाधीजी 'महात्मा' हो गये और सारे देश के बापू बन गये। जमनालालजी की विशेषता यह थी कि उन्होने गाधीजी को पहले ही पहचान लिया था और वह अपनेको उन्हे सौंप चुके थे।

सन् उन्नीससौबीस में लाला लाजपतरायजी के सभापतित्व में काग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ, जिसमे गाधीजी ने असहयोग का प्रस्ताव पेश किया। काग्रेस के सभी पुराने महारथियो ने उस प्रस्ताव का जमकर विरोध किया, तो भी जमनालालजी गाधीजी के साथ थे। उनके कारण बडे बाजार के सभी लोग गाधीजी के पक्ष में रहे। उन दिनो आजकल की तरह प्रतिनिधियो का चुनाव तो होता नही था। इसलिए हम लोग बहुत बडी सख्या में प्रतिनिधि बन गये थे। हम लोग तो यही मानते रहे कि हमारे वोटो की बदौलत महात्माजी की जीत हुई। बगाल के ुख्य नेता देशबन्धु चित्तरजनदास, विपिनचन्द्र पाल, व्योमकेश चक्रवर्ती तथा महामना मालवीयजी महाराज और अन्य सभी धुरधर नेताओ ने गाधीजी के प्रस्ताव का घोर विरोध किया। प्रस्ताव का एक अश यह भी था कि सरकारी उपाधिया लौटा दी जाय। जमनालालजी ने तुरन्त अपनी 'रायबहादुर' की उपाधि छोड दी।

•• ••• •••

पच्चीस वर्षों म न मालूम कितनी बार उनके साथ दौरे पर रहा और महीनो उनके पास रहा। उनके जिस विशेष गुण का मेरे चित्त पर गहरा असर पडा, वह है कार्यकर्त्ताओ के प्रति उनकी आस्था। उन्नीससौइक्कीस के गार्धी-अर्विन समझौते के बाद की बात है। देश में चारो तरफ एक तरह से उल्लास, उत्साह और जोश की लहर-सी उठ रही थी। काग्रेस की जीत हुई।

हमारा आन्दोलन सफल होगया। इसी खुशी में लोग मगन थे। लेकिन जमना-लालजी को यह फिक्र थी कि आन्दोलन की वजह से कितने कार्यकर्त्ता बीमार होगये है ? सरकार की दमन-नीति के प्रहार से कितनी सस्थाए नष्ट होगई है ? मारपीट और गोलाबारी की बदौलत कितने आदमी अपग और अपाहिज होगये है ? उन सबसे मिलना चाहिए। उन्हे दिलासा देकर उनकी मदद करनी चाहिए। गुजरात, बम्बई और वर्धा के आस-पास के कार्यकर्त्ताओ से मिलने के बाद उन्होंने बगाल जाने का विचार किया। मुझे पत्र लिखा कि फलानी तारीख को पहुच रहा हू। डाक्टर सुरेश बनर्जी और डाक्टर प्रफुल्ल-चन्द्र घोष से, जो अभय-आश्रम के सभापति और मत्री हैं, मिलना है। सुरेश-बाबू को जेल मे टी. बी होगई है, दूसरे कार्यकर्त्ताओ से भी मिलना है, तुम्हे साथ चलना होगा।

वह कलकत्ते आये। यहा के लोगो से मिले। जिन मारवाडी युवको ने आन्दोलन में भाग लिया था, उनसे वह बहुत प्रेम से मिले। उन्हे इस बात की विशेष चाह थी कि मारवाडी-समाज के लोग देश-सेवा में ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा लें। वे कोरे व्यापारी ही न बने रहे। जमनालालजी युवको को बराबर यह प्रेरणा देते रहे।

हा, तो हम डाक्टर सुरेश बनर्जी से मिलने कुमिल्ला गये। सुरेशबाबू को तो प्लास्टर ऑव पेरिस में सुला रखा था। उठना-बैठना तो दूर, वह करवट भी नही बदल सकते थे। जमनालालजी सीधे उनके पास गये और उसी हालत में उनके गले लिपट गये। सुरेशबाबू बोले—"जमनालालजी, मैं क्या कहू ! आप इतनी दूर से खास मुझसे मिलने आये और जिस प्रेम से मुझे गले लगाया, उससे तो मेरी बीमारी दूर हुई-सी मालूम होती है। मैं अपने में एक नया बल और स्फूर्त्ति अनुभव करता हू।"

जमनालालजी कार्यकर्त्ताओ की तकलीफ समझ सकते थे। उनके त्याग और देश-प्रेम की कद्र करते थे। वह कार्यकर्त्ताओ के प्रशसक ही नही, बल्कि उनके भक्त थे। वह जब उनकी सहायता करते थे तो यह नही मानते थे कि मैंने कोई अहसान किया है, बल्कि यह मानते थे कि ऐसे पुण्यवान व्यक्तियो

की सेवा का सुअवसर मुझे मिला, यह मेरे अहोभाग्य हैं। उनकी निगाह में कार्यकर्त्ताओं का स्थान बहुत ऊंचा था। वह उनको अपने घर के लोगों से ज्यादा प्रेम करते थे। अपने साथ काम करनेवाले देशसेवकों के दिल में अपने बर्ताव से, अपनी भावना से और अपनी कृतियों से उन्होंने यह विश्वास पैदा कर दिया था कि यदि किसी कार्यकर्त्ता को कोई शारीरिक, आर्थिक, पारिवारिक या सामाजिक तकलीफ हो तो वह उसकी हर तरह से मदद करेंगे। यही कारण है कि जमनालालजी के चले जाने से आज हजारों लोग यह अनुभव करते हैं कि उनका एक जबर्दस्त सहारा जाता रहा।

कुमिल्ला में ही मैंने जमनालालजी से पूछा कि आप डाक्टर सुरेश बनर्जी से मिलने इतनी दूर से क्यों आये? यद्यपि मैं सुरेशबाबू और प्रफुल्लबाबू का परिचय १९३० की जेल में ही प्राप्त कर चुका था, तो भी इनकी संस्थाओं से मेरा संबंध नहीं था। जमनालालजी ने वहां के कार्यकर्त्ताओं तथा अभय-आश्रम के आजीवन सदस्यों की एक छोटी-सी बैठक की। संस्था का परिचय कराया गया। सदस्यों के बारे में जो कुछ वहां बताया गया, वह अद्भुत था। उनका चरित्र इतना उज्ज्वल था, इतना त्यागमय था कि आज वर्षों के बाद भी वह दृश्य मेरी आंखों के सामने से नहीं हटता।

थोड़े में उनके कहने का आशय यह था कि यह संस्था उन्नीससौइक्कीस के आन्दोलन के बाद स्थापित हुई। डा० सुरेश बनर्जी और डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष ने उसकी स्थापना की। इसके उनतीस आजीवन सदस्य हैं, जिनमें से अट्ठाईस अविवाहित हैं। देश के आजाद होने से पहले विवाह न करने का उनका प्रण है। जो कुंवारे हैं, वे अपने व्यक्तिगत खर्च के लिए केवल पन्द्रह रुपये मासिक लेते हैं। इसमें भोजन, वस्त्र, डाक तथा अन्य खर्च, जो उनका अपना खर्च कहा जा सकता है, शामिल है। एक सदस्य, जो विवाहित हैं, वह पचास रुपये लेते हैं। वह एक कालेज में सुयोग्य प्रोफेसर थे। वेतन भी अच्छा पाते थे। सुरेशबाबू और प्रफुल्लबाबू तो हजार-हजार, आठ-आठसौ की सरकारी नौकरियां छोड़कर संस्था में आये हैं। अन्य सभी सदस्य डाक्टर, वकील या वैज्ञानिक हैं और विश्वविद्यालयों की उच्च परीक्षाएं पास

है। डा नृपेन वोम, जो एक अच्छे डाक्टर है, आश्रम के अस्पताल में है और वहा के एक सौ दस कार्यकर्ताओ की सेवा करते है। उसके वाद डाक्टरी का पेशा करते है, जिसमे करीव वारह सौ रुपये मासिक की आमदनी होती है, वह सव आश्रम को जाती है। वह आश्रम के सदस्यो का नियत वेतन केवल पन्द्रह रुपया ही लेते है।

जमनालालजी वोले, "वतलाओ, अगर ऐसे लोगो से मिलने या उनके दर्शन करने न आऊ, तो किससे मिलने जाऊ ? यही लोग तो आज गाधीजी की भावना और विचारो के अनुसार उनके कार्यों को चला रहे है। तुम्हारे वगाल में आज जो खादी का काम हो रहा है, इस आन्दोलन मे जितना कुछ काम हो सका है, वह इन सवकी या ऐसे ही दूसरे सव लोगो की मेहनत का फल है।"

इसी तरह वह दूसरी जगह के कार्यकर्ताओ से, जिन्हे उस आन्दोलन में तकलीफ हुई थी, मिलने गये। श्रीहट्टी के श्री धीरेन्द्रनाथ दास तथा ढाका की श्री आशालता सेन के वारे मे सुना था कि उन्हे वडी तकलीफ सहनी पडी। आशालता का आश्रम जला दिया गया था। धीरेन्द्रवावू को पुलिस की लाठियो की वहुत मार पडी। उन्हे तुरन्त तार देकर वुलाया। उनसे वडे प्रेम और आदर से मिले और उनके आश्रम के लिए रुपयो का इन्तजाम करने का भार मुझे सौंपा।

• ••

ऐसे-ऐसे न मालूम कितने उदाहरण आज मेरी आखो के सामने नाच रहे है।

एक दिन का जिक्र है कि वर्धा के गाधीचौक में सभा थी। जमनालालजी सभापति थे। जानकीवहन ने भी व्याख्यान दिया और सभापतिजी को तो देना ही था। लौटते समय रास्ते में मैंने कहा, "आपसे तो जानकीवहन का व्याख्यान ज्यादा अच्छा हुआ।" वे वोले—"यह तो ठीक है, तुम्हारा और उनका तो अच्छा होगा ही। मुझे तो इस वात की चिन्ता थी कि मैं कोई ऐसी वात न कह जाऊ, जिसको जीवन में उतार न सकू या कर न

पाऊं, और तुम लोग शायद यह सोचते होगे कि 'हमारा व्याख्यान सुनने-वालो को अच्छा लगना चाहिए।' वे हर समय यह सोचते थे कि मेरा जीवन बाहरी और भीतरी एक हो। वे समाज-सुधार की वही बातें कहते, जो खुद अपने घर में करते। जानकीबहन के पर्दा छोडने के पहले उन्होंने पर्दे के विरुद्ध कुछ नही कहा। जानकीबहन तथा अपने परिवार के अन्य लोगो को राष्ट्रीय जीवन की तैयारी कराने के लिए वे आज से अठारह वर्ष पहले पूज्य गाधीजी के पास साबरमती के सत्याग्रह-आश्रम में सपरिवार जाकर रहे और बडी लडकी कमला का विवाह आश्रम में ही किया। सन् १९२७ में उन्होंने अपना प्रसिद्ध लक्ष्मीनारायणजी का मन्दिर हरिजनो के लिए खोला। वे क्रातिकारी मनोवृत्ति के आदमी थे, पर वे उस क्राति को अपने घर से, अपने जीवन से शुरू करते थे। सचमुच उन्होंने अपने जीवन में क्रातिमूलक सुधार किये थे।

* *

वे उग्र थे अपने प्रति और कोमल थे दूसरो के प्रति। वे अपनी छोटी-सी कमजोरी को खोजते थे और उसको हटाने का जोरदार प्रयत्न करते थे, पर दूसरो के गुणो को ही देखते थे। उनके गुणो की प्रशसा करते थे। उन्होंने किसीके अवगुणो को देखा तो उसकी अवहेलना की। मैंने उनके मुह से किसी-की निन्दा नही सुनी। वे केवल बडी-बडी बातो में ही नही उलझते थे। वे तो हर चीज में आनन्द ले लेते थे। उनके पास बहुत-से आदमी आते और उन सबके नाना तरह के सवाल रहते। उनमें से कई-कई तो बहुत ही जटिल हुआ करते, जिनका सुलझाना तो दूर, सुनने से घबराहट होती, पर वे सहज धीरज से उन्हें सुनते और उन आनेवाले सज्जनो की सहायता करते। यह सहायता केवल आर्थिक नही, बल्कि बहुत तरह की होती थी। उन्होंने न मालूम कितने परिवारो को डूबने से बचाया है, कितने कार्यकर्त्ताओ की कितनी समस्याए हल की है। आर्थिक समस्या तो रुपये देकर हल की जा सकती है। देनेवाला उदार और भला कहला सकता है, पर कही स्त्री-पुरु का झगड़ा है, तो कही बाप-बेटे का, कहीं सैद्धातिक कारणो से परस्पर झगडा है, तो कही बाप-बेटी में। कही

विवाह की समस्या हल नहीं हो रही है। वे सबका समाधान करते। साबरमती-आश्रम टूटने से पहले महात्माजी कांग्रेस के समय से पन्द्रह-बीस दिन पहले वर्धा-सत्याग्रह-आश्रम में आ जाया करते थे और वहां से कांग्रेस में जाते। उन दिनों वहा अन्य कार्यकर्ता भी आ जाते। गांधी-सेवा-संघ, चर्खा-संघ आदि की मीटिंगें भी हो जाती। इतने बड़े सत्संग के लालच में मैं भी वर्धा चला जाता या जमनालालजी बुला लेते थे। सन् १९२९ की लाहौर-कांग्रेस के बीस दिन पहले जब मैं वर्धा गया, उस समय की एक घटना है। रात के ग्यारह बजे के करीब पन्द्रह-सोलह बरस की एक लड़की उनके पास आई। पूज्य बापूजी ने उसे भेजा था। सुबह की गाड़ी में लड़की के माता-पिता भी आये। बात यह थी कि माता-पिता लड़की का विवाह करना चाहते थे। लड़की विवाह नहीं करना चाहती थी। वह महात्माजी का 'नवजीवन' तथा अन्य पुस्तकें पढ़ा करती और सेवा करना या पढ़ना चाहती थी। माता-पिता जबर्दस्ती विवाह की बातें करने लगे तो लड़की गाधीजी के पास भाग आई। जवान लड़की, रात में गाधीजी उसे कहां रखते और फिर यह समस्या तो जमनालालजी को ही हल करनी थी। इसलिए महात्माजी ने रात में ही उसे जमनालालजी के पास भेज दिया। लड़की के माता-पिता सख्त नाराज थे। वे गुस्से में भरे पड़े थे। लड़की कहती थी, "मैं आपके घर नहीं जाऊंगी, मैं गाधीजी के पास आश्रम में रहूंगी और अपना सारा जीवन वहीं बिताऊंगी।" पर गाधीजी इस तरह माता-पिता को नाराज करके लड़की को कैसे रखें? मामला बड़ा जटिल था, पर जमनालाल-जी ने उसे ऐसी चतुराई से सुलझाया कि लड़की के माता-पिता बाग-बाग होगये और स्वयं जाकर लड़की को साबरमती-आश्रम में भरती कर आये। लड़की वहां कई वर्ष रही। १९३० के आन्दोलन में उसने खूब काम किया, जेल गई, आश्रम के नियमों का बड़ी अच्छी तरह पालन किया। जमनालाल-जी ने अपने स्नेह-भरे हृदय से कई लोगों को मोह लिया और उनकी बुराई को भलाई में बदल दिया। जिनका पतन होनेवाला था, उनका उत्थान हो-गया, वे सच्चे देश-सेवक बन गये। ऐसे कितने ही काम जमनालालजी द्वारा होते रहते थे।

जमनालालजी की मृत्यु से कुछ ही दिन पहले की बात है—शायद २७-२८ जनवरी की। वर्धा में चक्षु-सुधार-यज्ञ था। जमनालालजी इसे अपने सीधे-सादे शब्दों में आखों का मेला कहते थे, जिसमे वे देहाती लोग, जिनकी आखें ठीक करनी थी, और जिनकी चिन्ता उनको थी, इस यज्ञ का मतलब समझ सकें। इस समय एक घटना हुई। भाई महावीरप्रसादजी पोद्दार, श्री रामकुमारजी भुवालका और मैंने इस विषय में कुछ बातें जमनालालजी से कही। उस समय तो वे कुछ नही बोले। गोपुरी की झोपडी में हम लोगों ने सुबह चार बजे प्रार्थना की। इसके बाद कुछ आपसी चर्चा में जमनालालजी ने पोद्दारजी से और मुझसे कहा, "आप लोगों की जो विचारधारा है, वह ठीक नहीं है। सार्वजनिक सेवक को यदि सेवा करनी है और उसे अपना सेवा-क्षेत्र बढाना है तो उसको शक्तिशाली नये-नये सेवकों को लाना होगा और उन सेवकों की खोज करनी होगी, जो किसी भी अच्छे इल्म की ताकत रखते हैं। उन ताकतवाले लोगों में चाहे कितने भी अवगुण हों, लेकिन सेवक को तो उन्हें प्यार और आदर से अपने सेवा-क्षेत्र की ओर आकर्षित करना होगा। उनके अवगुणों की वजह से हमें उनसे नाराज नही होना चाहिए। हमारे दिल में उनकी भलाई करने की भावना हो और उनके द्वारा देश-समाज की जो भी सेवा बन सके, वह लेनी हो, तो उनको आप आदर से और प्रेम से ही अपनी ओर खींच सकेंगे। निन्दा करके तो हम उन्हें खो भले ही दें।" उस बात को खुलासा लिखा नही जा सकता, क्योंकि वह व्यक्तिगत बात थी, पर सचमुच हमपर उनकी बात का बहुत असर हुआ और हमने उसपर अच्छी तरह से सोचा तो मालूम हुआ कि दर असल हमारी भूल थी। वे हर चीज में गहरे उतरते थे और यही कारण है कि वे इतनी सेवा कर सके और हजारों के हृदयों का प्यार पा सके।

• • ••

वे बराबर कार्य-निष्ठ थे, पर इस बार जबसे उन्होंने गो-सेवा-संघ का काम लिया तबसे तो वे इस काम के पीछे पागल-से होगये थे। सुबह जब गोपुरी की झोपडी पर गाय आती तो वे स्वय उसकी सेवा करते। उसको

पोछते-पपोलते और खिलाते। एक दिन ऐसा करते देखकर मुझे राजा दिलीप की याद आगई।

वे तमाम दिन मिलनेवालो से गोरक्षा, गो-सुधार, गो-वश की वृद्धि की चर्चा किया करते। उनकी प्रबल इच्छा थी कि इस एक वर्ष में कम-से-कम एक हजार गो-सेवा-सघ के सदस्य बना लू और सबसे गाय के दूध, घी और अहिंसक चमडे के व्यवहार की प्रतिज्ञा करा लू।

एक दिन रामेश्वरजी नेवटिया (उनके बडे दामाद) आये। कुछ व्यापार-सम्बन्धी बात करने लगे। उन्होने कहा—"ये बातें मुझे अच्छी नही लगती। गो-सम्बन्धी या कोई दूसरी सार्वजनिक बात हो तो मेरा समय लो, नही तो जाओ।" वे तो घर के आदमी थे, इसलिए ऐसा कह दिया, पर सचमुच अन्य बातो में वे रस नही लेते थे।

इस बार नागपुर-जेल में वे बीमार हुए और अवधि से पहले छोड दिये गए तो स्वभावत उनसे मिलने की इच्छा हुई। पर मैं कभी उनसे बिना पूछे या बिना बुलाये उनके पास नही गया, क्योकि वे बराबर हर बार याद कर लिया करते थे। तो भी इस बार आल-इडिया-काग्रेस-कमेटी की बैठक के पहले मैं उनके दर्शन नही कर सका। १४ जनवरी को जब मैं वर्धा पहुचा तो वे सामने ही मिले। मैंने उन्हे इतना दुबला-पतला पहले कभी नही देखा था। उनके शरीर की हालत देखकर मैं सहम गया। मैंने कहा, "आप तो बहुत कमजोर होगये है।" उन्होने कहा, "कमजोर? नही, दुबला-पतला हो गया हू। कमजोर तो दूर, मै तो पहले से भी ज्यादा शक्ति महसूस करता हू।"

आल-इडिया-काग्रेस-कमेटी की बैठक के बाद पूरे बीस दिन मैं उनके पास रहा। गाधीजी की आज्ञा से उन्होने 'गो-सेवा-सघ' का काम अपने ऊपर ले लिया था। उसी समय 'गोपुरी' का नामकरण हुआ और वही एक टीले पर एक सुन्दर घास-फूस की झोपडी में वे रहने लगे। मेरा अधिक समय उनके साथ ही बीतता था। मित्रवर महावीरप्रसादजी पोद्दार भी हम लोगो के साथ रात को वही सोते थे। विभिन्न विषयो पर उनसे बातें होती रहती थी।

एक दिन कुछ जोर की वर्षा होने लगी। मैंने कहा कि झोपडी में तो बौछार आवेगी, शायद पानी चूने लगेगा। उन्होने मारवाडी बोली मे कहा, "मैं तो जाट जन्मा था और जाट ही मरना चाहता हू। मुझे वर्षा का क्या डर है? यहा तो तुम-जैसे नवावो को तकलीफ हो सकती है।" (मुझे वे मजाक में 'नवाव' कहा करते थे।)

• • • • •

मुझे क्या पता था कि पाच-दस दिन में ही यह निधि यो लुट जायगी! इन वीस दिनो में कितनी वातें हुई। हम लोग चार वजे से पहले उठ जाते थे। प्रार्थना के वाद आपसी चर्चा होती थी, जिसमें अपनी-अपनी गलतिया सोची जाती थी। उन्होने कई वातें वताई, जिनका वर्णन इस समय नही किया जा सकता। वह निरन्तर अन्तर्मुख होकर आत्म-परीक्षण में रत रहते थे।

जमनालालजी का कहना था कि मैं किसीकी भी सेवा लिए बिना मरना चाहता हू। मेरे एक घनिष्ठ मित्र की हृदय की गति रुक जाने से मृत्यु हो जाने पर जमनालालजी ने एक वार मुझे लिखा था, "ऐसी मृत्यु तो भाग्यशाली व्यक्तियो की होती है। वह ईश्वर की कृपा का लक्षण है। आदमी इस कमरे में मरे, तो वगल के कमरेवाले को वाद में पता चले, ऐसी मृत्यु होनी चाहिए।"

जमनालालजी की मुराद पूरी हुई। उनके-जैसी मृत्यु तो सचमुच ईश्वर की कृपा का ही लक्षण है। वे तो अमर होगये। हजारों हृदयो में उनकी स्मृतिया सदा हरी-भरी रहेंगी।

: २४ :

सहृदय और स्नेहशील

भागीरथ कानोडिया

गाधी-युग में हिन्दुस्तान की जिन कुछेक विभूतियो का दर्शन देश-वासियो को मिला है, उनमें जमनालालजी अपना एक खास स्थान रखते थे। उनका सारा जीवन राष्ट्र-निर्माण की विविध प्रवृत्तियो से इतना जुडा और गुथा हुआ रहा है और सार्वजनिक क्षेत्र के हरएक पहलू में उनकी सेवाए इतनी गहरी रही है कि वे अपने-आपमें स्वय एक सस्था बन गये थे।

जमनालालजी का जीवन समाज मे शिक्षा-प्रचार तथा अन्य समाज-सुधार के कार्यो से शुरू होकर राजनैतिक और रचनात्मक कार्यक्षेत्र से गुजरता हुआ एक आत्मनिरीक्षक और अन्तर्मुखी साधक के रूप में समाप्त हुआ है। उनकी सारी उम्र एक सच्चे कर्मयोगी की तरह 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' में बीती। उन्होने अपने धन और शक्ति का भोग 'तेनत्यक्तेन भुजीथा' के सिद्धात पर किया।

दूसरी बहुत-सी खूबियो के साथ उनमें सबसे बडी खूबी यह थी कि जबतक वे अपने जीवन में किसी सिद्धात को आचरण में नही उतार लेते थे, तबतक लोगो मे उसका प्रचार नही करते थे। निकटस्थ मित्रो को भी वैसा करने को नही कहते थे। सामाजिक सुधार या राजनैतिक क्षेत्र में जो भी काम उन्होने किया, उसकी शुरुआत बराबर स्वय अपने से और अपने घर से की। मारवाडी समाज में सबसे पहले वे ही ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होने अपनी लडकी का विवाह बडी उम्र मे और व्यर्थ की रूढियो को तोडकर अत्यन्त सादगी के साथ साबरमती-आश्रम मे किया। आज तो समाज थोडा आगे बढा हुआ है और इस तरह के विवाह करनेवाले दूसरे लोग भी नजर आते है, लेकिन जिस वक्त उन्होने अपनी लडकी कमला का विवाह किया था, उस समय इस तरह से

विवाह करना जरा हिम्मत का काम था। हरिजनों के लिए उन्होंने अपना वर्धा का श्री लक्ष्मीनारायणजी का सुप्रसिद्ध मन्दिर उस समय खोला था, जिस वक्त कि हिन्दुस्तान में शायद ही किसी दूसरे मन्दिर में हरिजन प्रवेश पा सके हों। इस मन्दिर को खोलने में उन्हें अपने कुटुम्बियों और साथियों का विरोध भी कुछ कम नहीं सहना पड़ा था। लेकिन उनमें गजब का धैर्य और सहिष्णुता थी। किसीसे नाराज होना तो वह जानते ही नहीं थे। उन्होंने इन सारे विरोध का मुकाबला सहज दृढ़ता और नम्रता से किया। उन्होंने अपने सिद्धांतों में जीवन भर कहीं भी समझौता नहीं किया,पर साथ ही विपक्षी के भावों के प्रति भी वे सदा ज्यादा-से-ज्यादा आदरशील रहे। अपने सिद्धांत पर अटल रहते हुए वे इस बात का बराबर ध्यान रखते थे कि विपक्षी दल के लोगों की भावना को कहीं ठेस न लगे और आड़े वक्त पर विरोधियों की मदद उतनी ही तत्परता और सहृदयता से करते थे, जितनी कि किसी भी स्वजन की।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' उनमें दानशीलता परोपकार, स्वाभिमान, स्वावलम्बन और स्वदेश-प्रेम की भावना बहुत छोटी उम्र से ही थी और उन्होंने हरएक मौके पर लोगों के सामने इसका उदाहरण रखा। गवर्नमेंट के उपाधिधारी होने पर भी सरकारी अफसरों से वे जब भी मिले या जब भी उन्हें अपने घर पर दावत वगैरा दी तो बराबर देशी पोशाक में में और हिन्दुस्तानी ढंग से ही। देश की पुकार होने पर उन्होंने सर्वप्रथम उपाधि का त्याग किया और बराबर जेल गये।

वे गांधीजी को अपना परम गुरु मानते थे और हर चीज को गांधी-विचारधारा और गांधी-दर्शन के अनुसार सोचते और देखते थे। उनके विचारों और कार्यों में पूर्ण ऐक्य था। उन्होंने जीवनभर इस बात का सतत प्रयत्न किया कि वे अपने कार्यों में कहीं भी अपने विचारों से पीछे न रहें और वे इसमें सफल हुए।

जमनालालजी में ऐसी कई विशेषताएं थी, जो कई बड़े-से-बड़े नेताओं में भी मुश्किल से पाई जाती है। अक्सर यह देखा जाता है कि एक आदमी दूर से बहुत अच्छा दीखता है और उसपर श्रद्धा भी होती है, लेकिन उस व्यक्ति

के निकट जाने पर और उसकी गहरी जानकारी होने पर वह श्रद्धा कम हो जाती है, किन्तु जमनालालजी में दूसरी बात थी। कोई भी आदमी उनके जितना निकट जाता था और जितनी ज्यादा सच्ची जानकारी उनके बारे में हासिल करता था, उतनी ही उसकी श्रद्धा उनके प्रति गहरी होती जाती थी। मैं जब-जब उनसे मिला, तब-तब हरएक मिलन में मेरी श्रद्धा उनके प्रति ज्यादा -से-ज्यादा होती गई। वे कितने निरभिमान पर कितने स्वाभिमानी थे, कितने मितव्ययी पर कितने उदार थे, कितने नम्र पर कितने दृढ थे, कितने सीधे और सरल पर कितने प्रखर थे। वे अपने प्रति जितने अनुदार और कठोर थे, दूसरो के प्रति उतने ही उदार और स्निग्ध थे। वह एक अत्यन्त सहृदय और स्नेहशील व्यक्ति थे। देश की बहुव्यापी प्रवृत्तियो में मलग्न रहते हुए भी वे लोगो की, खासकर नेताओ और कार्यकर्त्ताओ की, व्यक्तिगत और कौटुम्बिक समस्याओ का बराबर ध्यान रखते थे। कार्यकर्त्ताओ के अलावा और भी कोई व्यक्ति यदि अपनी किसी भी तरह की मुश्किल लेकर उनके पास पहुच जाता था तो वे बराबर उसकी बात सहानुभूतिपूर्वक सुनते थे और अपनी बुद्धि व शक्ति लगाकर उसे सुलझाते थे। वे इस मामले में सहानुभूतिशील होने के साथ-साथ अत्यन्त पटु भी थे। कार्यकर्त्तागण तो उन्हें अपनी ढाल मानते थे और आज उनके वियोग में अनेक कार्यकर्त्ता अपनेको पितृहीन या आश्रय-हीन-सा अनुभव करते हैं। वे जिस किसी भी आदमी के सपर्क में आते, उसके कुटुम्ब की, उसकी स्थिति की, उसके दु ख-सुख की, उसके जीवन के भावी उद्देश्य की और दूसरी हर तरह की छोटी-बडी बात की जानकारी हासिल करते और आवश्यकतानुसार उसकी रहनुमाई करते थे।

वे अपनेको मिशनरी मानते थे और दरअसल एक खास मिशन लेकर ही वे आये थे, जिसके अनुसार उन्होने अपने जीवन-भर काम किया। उनका यह उद्देश्य था कि समाज के नवयुवको और नवयुवतियो में ऐसी प्रवृत्ति पैदा करें, जिससे वे अपने जीवन को जनसेवा के मार्ग में लगावें। आज मारवाडी, गुजराती और मराठी समाज में ऐसे अनेक व्यक्ति है, जिनकी जीवन-धारा जमनालालजी ने गलत रास्ते से सही मार्ग की ओर मोड दी। जमना-

लालजी से रहनुमाई और राहत पाये हुए अनेक व्यक्ति आज देश के विभिन्न भागो में जन-सेवा का कार्य कर रहे हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के अलावा भी कितने ही व्यक्ति और कुटुम्ब हैं, जिनको जमनालालजी ने सलाह और सहायता देकर डूबने से उबार लिया। विद्या का ज्ञान अल्प होने पर भी वे अपने महान् व्यक्तित्व और उज्ज्वल कृतियो द्वारा वर्धा-जैसे एक साधारण कस्बे को एक महान् तीर्थ बनाने में सफल हुए, जहा आज इस देश के विभिन्न मतो, मजहबो सप्रदायो और श्रेणियो के बडे-से-बडे लोग तथा यूरोप, अमरीका, और चीन आदि विदेशो के अनेक लोग इसलिए आते हैं कि वहा आकर वे जीवन का सच्चा रहस्य समझ सकें और वहा से सभी लोग कृतकृत्य होकर लौटते हैं।

चर्खा-सघ, गाधी-सेवा-सघ, गो-सेवा-सघ तथा उनकी दूसरी अनेक महत्वपूर्ण रचनाए और देश एव समाज के प्रति की हुई उनकी चतुर्मुखी व्यापक सेवाए उन्हें अमर रखेंगी। जमनालालजी की नश्वर देह भले ही नष्ट होगई हो, लोगो के हृदयो में वे अमर हैं और अमर रहेंगे।

●

आज नववर्ष का दिन है। · · · · ·आपकी याद आई दो तरह से। आप स्नेही रूप में तो हैं ही, परन्तु पूज्य जन भी हैं। आपको सबोधन करने में मैं सयम से काम लेता हू। पूज्य भाव को मन में छिपाकर आमतौर पर सबोधन करता हू। परन्तु आज तो व्यक्त करने का मन हो आया है। समुद्र की तरह आपके हृदय की विशालता और बालक की तरह हृदय की सरलता पूजनीय है। इस नववर्ष के उपलक्ष्य में आपको मेरा प्रणाम है।

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती। मगनलाल का प्रणाम

: २५ :

कठोर, पर कोमल

हरिभाऊ उपाध्याय

स्व श्रद्धेय जमनालालजी के सस्मरण जब-जब याद आते है तो उनकी एक लड़ी आखों के सामने आ जाती है ।

एक बार राजस्थान के कई कार्यकर्त्ता गांधी-आश्रम, हटूडी (अजमेर) में एकत्र हुए, इस विचार से कि राजस्थान के संगठन और सेवा का मार्ग प्रशस्त किया जायगा । उन दिनो स्व पथिकजी राजस्थान के नेताओ में प्रमुख थे, परन्तु उनकी और जमनालालजी की कार्यनीति मिलती नही थी । जमनालालजी ने कई घटे उनसे बातचीत में लगाये । मै राजस्थान में आकर वहा के व्यक्तियो और नेताओं से बखूबी परिचित होगया था । मुझे खास आशा नही थी कि पथिकजी से जमनालालजी की कार्य-नीति के बारे में कोई मेल बैठ सकेगा । मैने उनसे कहा—"आप क्यो अपना समय बरबाद करते है ? पथिकजी के दिमाग में कोई बात बैठ भी जाय तो जो कार्य-प्रणाली बरसो से उनकी रग-रग में भरी हुई है, वे उसके प्रभाव से सहसा कैसे छूट सकेंगे ? उन्होने जवाब दिया, "नही, मै अपने बारे में गलतफहमी दूर कर रहा था । मेरी यह इच्छा है कि मरते समय एक भी व्यक्ति ऐसा न रह जाय, जिसके मन में मेरेलिए गलतफहमी रहे, मतभेद भले ही रहे ।" मै मानो नीद से चौंक पडा । अहिंसा की, अपनेको निर्दोष बनाने की, उससे बढकर साधना क्या हो सकती है ? इतना धीरज उसी व्यक्ति में हो सकता है, जो सेवा को, देश या राष्ट्र के कार्य को अपनी आत्मा का अग समझता हो ।

.. . ..

बापू के प्रति अगाध श्रद्धा रखते हुए भी, बापू के अन्ध-अनुयायी माने जाते हुए भी, जमनालालजी अपनी स्वतत्रता रखते थे । कई अवसर ऐसे

आये हैं जब बापू के साथ जमनालालजी लडे है, जोरदार बहस की है और एक बार तो उनके खिलाफ ए आई सी सी में वोट भी दिया था। पटना में ए आई सी सी की मीटिंग थी। जहातक मुझे याद पडता है, सत्याग्रह को स्थगित करने-सबधी प्रश्न था। जमनालालजी के गले वह बात उतर नही रही थी। बापू ने उन्हें बहुत समझाने का प्रयत्न किया। अकसर जमनालालजी बापू की बात मान लिया करते थे, भले ही उनकी युक्ति के कायल न हुए हो। परन्तु इस बार उन्हे लगा कि बापू गलती कर रहे है। उनका दिल किसी तरह मान नही रहा था। उन्होने बापू से कहा, "आज मेरा दिल बहुत दुखी है। अपने मत से आपके मत को सदैव मैने श्रेष्ठ माना है। उसे उच्चता और तरजीह दी है, परन्तु आज मै मजबूर हू। आज आपके विरोध में मत देने के लिए स्वतत्र रहूगा।" और समवत विरोध में मत दिया भी था। बापू ने उनके विरोध की, इस स्वतत्र वृत्ति की, कदर की, जैसी कि वे अक्सर किया करते थे और उसके कारण प्रतिपक्षी भी उनका आदर करते थे।

— —

जमनालालजी वादा कम करते थे, ऊपर से निरुत्साहित कर देते थे, परन्तु दरअसल मन में गुजाइश ज्यादा रखते थे। प्रत्यक्ष काम ज्यादा कर देते थे। इससे शुरू में व्यक्ति दुखी, नाराज, निराश भले ही हो जाय, अन्त में वह उनका भक्त बन जाता था। पैसे-टके के खर्च में पाई-पाई का खयाल रखते थे। अपने साथियो पर भी इस मामले में कडी निगाह रखते थे और उन्हे सावधान रखते थे। एक बार मै एक बडे आदमी के बुलाने से ग्वालियर गया। आने-जाने का खर्च मुझे पास से करना पडा। मै नपा-तुला पैसा हिन्दी 'नवजीवन' से लेता था। जमनालालजी जानते थे कि यात्रा-खर्च उसमें से नही निकल सकता था। उनकी व्यवहार-बुद्धि ने उन्हे यह भी सकेत कर दिया था कि यह पैसा हरिभाऊ के सिर पर पडेगा। बुलानेवाले पूछेंगे नही, यह लिहाज-शर्म से उनसे कहेंगे नहीं। लौटने पर मुझसे पूछा—"यात्रा-खर्च का क्या हुआ ?"

मैंने कहा—"कुछ नही।"

उन्होंने उत्तर दिया—

"उन्होंने नही दिया ?"

"जी नही।"

"मैं जानता था। अब क्या करोगे ?"

"पास से दिया है।"

"इतना रुपया बचा है ?"

मैं चुप। थोडी नसीहत की बात कहकर मुझे वह खर्च अपने पास से दे दिया।

. .

एक बार एक ए आई सी सी की मीटिंग में मै गया। बिना ज्यादा सोचे ही मैंने मन में मान लिया कि खर्च जमनालालजी से ले लेंगे। नया-नया ही साबका था। कार्यकर्त्ताओ के सहायक के रूप में उनकी बडी ख्याति थी। कइयो का खर्च चलाते थे। ऐसे अवसरो पर कइयो की सहायता करते थे। मैं 'नवजीवन' कार्यालय से कर्ज लेकर वहा गया। जब यह बात उनके सामने आई तो मुझसे पूछा—"इस कर्ज का क्या होगा ? इसको कैसे चुकाओगे ?"

"मैंने सोचा था कि आपसे ले लूगा।"

उन्हे यह जवाब अच्छा नही लगा। जरा तिनककर बोले, "क्यो ? क्या आप मुझसे पूछकर वहा गये थे ? मैंने कोई आपसे वादा किया था कि खर्च आपको दे दूगा ?"

मुझपर तो घडो ठडा पानी पड गया। जिस व्यक्ति को इतना उदार समझते थे, वह ऐसा रूखा, कठोर है! मैंने मन-ही-मन अपने कान पकडे कि बडी भूल की, जो इनसे आशा की। मैंने धीरे-से कहा—"जी नही, आपने तो पूछा नही था।" मै अपना-सा मुह लेकर चला आया।

बाद में मालूम हुआ कि उन्होंने वह रुपया अपने नामे डलवा दिया।

: २६ :

समूचे भारत की संपत्ति

शिवरानी प्रेमचन्द

जमनालालजी हमें छोडकर परलोक सिधार गये। वह कितने महान् थे, यह कैसे बताऊ ? वह सच्चे साधु थे। वे सच्चे अर्थो में राष्ट्र के वीर पुत्र थे। उनकी सम्पत्ति ससार की सम्पत्ति थी। भारत-माता की करुण पुकार सुनकर उन्होंने उसे गुलामी से मुक्त करने के लिए अनेक बार जेल की कठोर यातनाए सही थी। जेल की यातनाओ से ही शायद उनका शरीर इतना जीर्ण हो गया कि वे हमारे बीच नही रह सके। मुझे ऐसा वीर, साहसी, त्यागी पुरुष दूसरा नही दिखाई पडता।

ऐसी आत्माओ का आगमन कभी-कभी ही ससार में होता है। वे अपने लिए नही आते, लोगो के—विशेषकर गरीबो के कल्याण के लिए ही उनका अवतार होता है। हमारे देश का एक ऐसा रत्न खो गया, जिसकी चमक पर कोई भी गौरव कर सकता है।

जमनालालजी को मैंने बहुत निकट से देखा था। जयपुर-स्टेशन पर सन् १९४० में मैंने उनके अन्तिम दर्शन किये थे। मै जयपुर-स्टेशन पर रेल में बैठी थी। मालूम होने पर वह मेरे डिब्बे के पास आकर बोले—"कहिए, आप कुशल से तो है न।" स्नेह-वश उन्होंने अपने भतीजे और एक और सज्जन को मेरे डिब्बे में इसलिए भेज दिया कि मै सकुशल रात की यात्रा पूरी कर सकू।

मै और वे साथ-साथ उदयपुर पहुचे। उन्हें खादी-प्रदर्शिनी का उद्घाटन करना था। मै महिला-सम्मेलन का सभापतित्व करने वहा गई हुई थी।

हिन्दी-साहित्य के भी वह एक चमकते हुए तारे थे। वे सम्मेलन के सभापति भी रह चुके थे। उनके कामो की गिनती करना मुश्किल है।

जमनालालजी समूचे भारत की सम्पत्ति थे।

: २७ :

दानवीर, तपोवीर, सेवावीर

दादा धर्माधिकारी

जमनालालजी नही रहे। मैंने उनके पार्थिव अश को भस्मसात् होते हुए अपनी आखो से देखा। लेकिन फिर भी मैं अबतक यह महसूस नही कर सकता कि जमनालालजी दरअसल नही रहे हैं। वर्धा के आसपास का सारा वायुमण्डल उनके व्यक्तित्व के प्रभाव से छलक रहा है, उनके सुकृतो की सुगध से महक रहा है। जिन थोडे-से व्यक्तियो ने मेरे जीवन को प्रभावित किया है, उनमें से जमनालालजी का एक विशेष स्थान है। लेकिन फिर भी मैं उनसे बहुत कम मिलता था। मेरा कार्यक्षेत्र ही ऐसा था कि शिक्षा-मडल या महिला-सेवा-मण्डल की बैठको के सिवा, साल भर में मुश्किल से आठ या दस बार उनसे मुलाकात के मौके आते थे, इसलिए उनके शरीर के भस्म हो जाने पर भी मुझे यह अनुभव नही होता कि अब जमनालालजी नही रहे। सारा वातावरण उनके समृद्ध और पवित्र जीवन के प्रभाव से शराबोर है।

ग्यारह तारीख को जमनालालजी का कनिष्ठ पुत्र रामकृष्ण लगभग तीन बजे अपने 'घनचक्कर' मित्रो के साथ गपशप कर रहा था। इतने में एक नौकर से उसे खबर मिली कि 'काकाजी' एकाएक सख्त बीमार होगये। मुझे यह खबर करीब सवा तीन बजे मिली। हम लोग तुरन्त चल पडे। लेकिन उनकी कोठी के फाटक पर ही मालूम हुआ कि वह नही रहे। करीब पौन घटे में सारा खेल खत्म. होगया।

जिस कमरे में उनका शव पडा था, वहा पहुचने पर हमने जो अद्भुत दृश्य देखा, उसका वर्णन करना असम्भव है। वह दृश्य जितना करुण था,

उतना ही उदात्त था, जितना गभीर था, उतना ही प्रेरणाप्रद था। जमनालालजी के शव के पास गाधीजी और जानकीदेवी बैठे थे और चर्चा कर रहे थे। शोक के उद्रेक से दोनो का हृदय विदीर्ण हो रहा था, लेकिन दोनो को यह चिन्ता थी कि उनका क्या कर्त्तव्य है। जानकीदेवी अपने श्वसुर-तुल्य और गुरु-स्वरूप बापूजी से पूछ रही थी, "अब मेरा क्या कर्त्तव्य है? सती-धर्म का आचरण करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए?" उस गभीर अवसर पर बापू जमनालालजी के शव के समीप बैठकर सतीधर्म की व्याख्या अपनी अनुपम सीधी-सादी और घरेलू भाषा में कर रहे थे। उन्होने कहा, "जिस कार्य के लिए जमनालालजी जीये, जिनका अनुशीलन और चिन्तन करते हुए वह यहा से चले गये, उस काम को अपना सारा जीवन और सम्पत्ति समर्पण करना ही सच्चा सहगमन है, यही यथार्थ सतीधर्म है, यही सहधर्माचरण है।"

उस शोकाकुल स्थिति में भी जानकीदेवी ने अपने पतिदेव के नश्वर शरीर को साक्षी रखकर नम्रतापूर्वक, सकुचाते हुए, यह पवित्र और गभीर सकल्प किया। बापू और विनोबा से उन्होने विनय की—"भगवान् से प्रार्थना कीजिए कि वे मुझमें उनकी शक्ति, बुद्धि और गुण भर दे, जिससे उनका कार्य आगे चला सकू।"

यह सारा सवाद मेरे समाजवादी मित्र डा राममनोहर लोहिया सुन रहे थे। वह कहने लगे, "भई, गाधीजी गजब के आदमी हैं।"

गाधीजी ने कहा है, "जमनालालजी बडे तगडे आदमी थे।" लेकिन जब-जब यह दृश्य याद आता है तो मैं सोचने लगता हू, "जानकीदेवी दबग स्त्री है!" अपने अनुरूप साहस, निष्ठा और त्याग देखकर जमनालालजी की आत्मा कृतकृत्य हुई होगी।

यह दृश्य पुराणकाल की याद दिलानेवाला था। उसके बाद विनोबा की मधुर-गभीर ध्वनि में गीता के बारहवें अध्याय के पाठ ने उस अवसर को एक पुण्यपर्व का रूप दे दिया। पुण्यात्मा का प्रयाणकाल भी एक शुभ मुहूर्त ही होता है। इसीलिए वह पुण्यतिथि के रूप में मनाया जाता है।

दानवीर, तपोवीर, सेवावीर

गांधीजी ने कहा है—जमनालालजी एक दिग्गज पुरुष थे। कहीं भी भीड़ में खड़े होते थे तो दूर ही से उनकी गर्दन और सिर दिखाई देता था। उनका डील-डौल लम्बा-चौड़ा और भारी-भरकम था। एक कहावत है कि चंगे शरीर में चंगा मन रहता है। जमनालालजी के ऊंचे-पूरे और विशाल शरीर में उतनी ही विशाल आत्मा और उन्नत हृदय था। उनकी विशालता में स्वाभाविकता थी। उनका शरीर कसरत या व्यायाम से कमाया हुआ नहीं था। उसी तरह उनकी बुद्धि में भी आधुनिक शिक्षा की चमक-दमक नहीं थी। फिर भी उनमें स्वाभाविक संस्कारिता, कुशाग्रता तथा मूलगामिता की कमी नहीं थी। उनकी बुद्धि की उदारता और शक्ति उनके साथ अनेक संस्थाओं में काम करनेवाले उनके सहकारी भलीभांति जानते हैं, उनके हृदय की विशालता का अनुभव तो सभीको है। उनके शरीर की ऊंचाई मानो उनके विचारों की उच्चता की द्योतक थी।

यों तो संसार में पैदा होनेवाला हरएक व्यक्ति अपूर्व और अद्वितीय ही होता है। एक के जैसा दूसरा नहीं होता। इसलिए हरएक को पहचान सकते हैं। इस प्रकार हरएक की शक्ल-सूरत एक-सी नहीं होती। परन्तु जमनालालजी एक विशेष अर्थ में अपने ढंग के एक ही आदमी थे, वह केवल दानवीर ही नहीं, तपोवीर और सेवावीर भी थे। सत्कर्मों में आर्थिक मदद देने तक ही उनकी सत्कार्य-निष्ठा सीमित नहीं थी, वह उन कार्यों में एक सच्चे साधक की तरह अद्भुत लगन और तत्परता के साथ जुट जाते थे और सेवा तथा सदाचार के व्रतों को अपने जीवन में चरितार्थ करने की निरन्तर और अविरत चेष्टा करते थे। उन्होंने केवल सत्याग्रहाश्रम को द्रव्यदान देकर वर्धा में उसकी नींव ही नहीं डाली, अपितु सत्याग्रह के लिए आवश्यक व्रतों का अनुशीलन अपने जीवन में सचाई के साथ करने का यत्न किया। गृहस्थ होते हुए भी वह कई वर्षों से ब्रह्मचर्य का पालन करते थे और अपने जीवन की सादगी तथा कष्ट-सहन की शक्ति से विरक्त कार्यकर्त्ताओं को भी चकित कर देते थे। इसीलिए यह कहने में

अत्युक्ति नहीं है कि वह जनकादि राजर्षियो के एक प्रामाणिक अनुयायी और वंशधर थे ।

...

जमनालालजी में व्यवहारज्ञान और तत्वनिष्ठा, दातृत्व और हिसावी-पन, सज्जनता और विवेकशीलता का वडा मनोरम सगम था । ससार में सम्पन्नता और शुचिता, वैभव और पावित्र्य, काचन और चारित्र्य एक साथ विरले ही पाये जाते है । जमनालालजी में इन परस्पर-विरोधी गुणो का मधुर मिलाप था । वह जब कोई रकम या सम्पत्ति किसी पुण्यकार्य के लिए देते थे तो उसे 'दान' नही समझते थे । उपनिषद् की आज्ञानुसार वह बडे सकुचाते हुए, विनयपूर्वक, देते थे—'ह्रियादेयम्' । इसीलिए उनका दान निरपेक्ष और करीब-करीब निर्दोष होता था । वह कहा करते थे कि जिस सम्पत्ति की व्यवस्था का भार मुझे सौंपा गया है, उसके सदुपयोग का सुयोग मुझे जिन सस्थाओ, व्यक्तियो या कार्यो की बदौलत प्राप्त होता है, उनकी बड़ी कृपा है । इसीलिए जब वह किसी कार्य में श्रद्धा से आर्थिक सहायता देते थे तो सत्ता या यश की अभिलाषा तनिक भी नही करते थे । उल्टे, उनका यह प्रयत्न रहता था कि हरएक सस्था या कार्य किसी जिम्मेदार और योग्य व्यक्ति को सौंपकर खुद दूसरा काम शुरू कर दे । इसीलिए उनके धन से कोई व्यक्ति आश्रित या पगु नही बनता था । सस्था के सचालको की आत्ममर्यादा और आत्मनिष्ठा ही उसकी आत्मा है, यह वह भली प्रकार जानते थे ।

मैं कह चुका हू कि जमनालालजी वडे हिसावी और व्यवहार-चतुर थे । विनोवा अक्सर कहा करते है कि परमार्थ उत्कृष्ट हिसाव है । केवल आर्थिक दृष्टि से अधकचरा और अपूर्ण हिसाव होता है । पारमार्थिकता में ही सच्ची आर्थिक वृत्ति है । जमनालालजी अपनेको एक कुशल वनिया कहते थे । इसलिए वह कहा करते थे, "मैं अगर पैसे से प्रतिष्ठा, प्रशसा और सत्ता खरीदू, तो उससे मेरा पतन होगा, देश की हानि होगी और जनता के साथ प्रतारण होगा । अगर मैं अपने आस-पास चापलूस और मतलबी लोगो

को इकट्ठा करूंगा तो मेरी आत्मा का विकास नहीं हो सकता।" इसलिए एक दूरदर्शी और अग्रसोची व्यापारी की तरह वह अपने द्रव्य का विनियोग ऐसी संस्थाओं और कार्यों में करना चाहते थे जो उनकी आत्मोन्नति में सहायक हों।

यही कारण है कि वह इतने त्यागी और तपस्वी समाज-सेवकों का संग्रह कर सके। उनकी लोकसंग्रह की अपूर्व शक्ति का यही रहस्य है। जिन-जिन सन्तों और कर्मयोगियों को जमनालालजी की निष्ठा और निर्व्याज प्रेम बरबस वर्धा खींच लाया, उन्हें केवल धन के जोर पर कुबेर भी नहीं खरीद सकता। इस दृष्टि से जमनालालजी केवल आदर्श अतिथि-सेवक ही नहीं, आदर्श 'यजमान'—'यजन करने वाले'—भी थे। उन्होंने ईश्वर और मनुष्यता की उपासना तथा आराधना सन्तों, सेवकों और सत्प्रवृत्त सज्जनों के रूप में की। क्या यह उत्कृष्ट हिसाबी वृत्ति और सच्चा व्यवहार-कौशल नहीं है?

उनकी दानशीलता उनकी जीवन-व्यापी निष्ठा का केवल एक अंश थी। उनके चारित्र्य ने उनके सारे परिवार में क्रान्ति उपस्थित कर दी है। उनकी पत्नी, उनके पुत्र, उनकी लड़कियां—सभी उनकी जीवननिष्ठा के कायल हैं। उनके दोनों पुत्रों ने जेलखाने की सजाएं ही नहीं भुगती हैं, बल्कि विनोबा के आश्रम में पाखाने साफ करने में अपनेको गौरवान्वित माना है। उनकी लड़कियों ने भी विनोबा के चरणों में बैठकर रामायण और ज्ञानेश्वरी का अध्ययन किया है और सफाई तथा शरीरश्रम की प्रतिष्ठा के पाठ सीखे हैं। बापू और विनोबा जब कोई नया प्रयोग करना चाहते थे तब जमनालालजी और उनके कुटुम्बी उनकी सेवा में हाजिर रहते थे। राधाकृष्ण बजाज जैसा चरित्र्यवान् और अध्यवसायी कुशल सेवक उन्हीं-की तो देन है। इस प्रकार जमनालालजी के कुटुम्बी उनके अनुयायी भी हो गये हैं। यह कमाई कुछ कम नहीं है। देश में इस तरह के परिवार कितने हैं?

जमनालालजी की एक और विशेषता का उल्लेख करना जरूरी है। उन्होंने अपनी कर्मभूमि और सेवाभूमि को अपनी जन्मभूमि से अधिक प्रिय और सेव्य माना। वर्धा से उन्हें जो प्रेम था और उस नगरी की शोभा और महिमा बढाने के लिए उन्होंने जो प्रयत्न किया, वह उनकी इस वृत्ति का परिचायक था। नागपुर प्रान्त की जनता और भाषा से भी उन्हें विशेष अनुराग था। विनोबा को वह अपना गुरु मानते थे और उनके सभी बच्चों ने विनोबा के पास बैठकर मराठी के अनुपम काव्य 'ज्ञानेश्वरी' का अध्ययन किया है। लेकिन वह अपनी जन्मभूमि को भी बिल्कुल नहीं भूले। जयपुर राज्य प्रजामण्डल का कार्य उनके जन्म-भूमि-प्रेम का साक्षी है।

जमनालालजी संस्थाओं की संस्था थे। सत्याग्रहाश्रम, महिला-सेवा-मंडल, मारवाडी शिक्षा-मंडल, कामर्स कालेज, गो-सेवा-चर्मालय, गो-सेवा-संघ, ग्राम-उद्योग-संघ, चरखा-संघ, गांधी-सेवा-संघ, आदि कितनी ही संस्थाओं की नींव उन्होंने डाली। प्रेरक और आद्य-प्रवर्तक अलबत्ते गांधीजी ही रहे, लेकिन जमनालालजी केवल इन संस्थाओं के प्रतिष्ठित और आश्रय-दाता ही नहीं थे, उनके साथ उनका जीवित संपर्क था। महिलाश्रम की महिलाएं और लडकियां तो 'काकाजी' को हर माने में अपने पिता और पालक मानती थीं, उनके लिए तो जमनालालजी के रिक्त स्थान की पूर्ति होना असम्भव ही है।

जिनका जीवन इतना समृद्ध और उपयोगी था, उनकी मृत्यु भी उतनी ही वैभव और सम्यक और ईर्षास्पद हुई। मरने में भी जमनालालजी ने अपनी बनिया-वृत्ति से काम लिया। न बीमार हुए न लाचार हुए और न किसीकी सेवा ही ली।

वह अपने जीवन द्वारा तत्त्वनिष्ठ व्यवहार-कुशलता का जीवन और असाधारण उदाहरण उपस्थित कर गये।

: २८ :

सच्चे भारतीय

सुन्दरलाल

भाई जमनालालजी बजाज गाधीजी के अनन्य भक्त और बडी शुद्ध और ऊची आत्मा के आदमी थे। त्यागी तो वह बहुत बडे थे ही। यदि गाधीजी की सूझ, आत्म-शक्ति, तपस्या, प्रेरणा और त्याग ने असहयोग-आन्दोलन को सफल बनाया तो जमनालालजी की तपस्या, दानशीलता और दूसरो मे पैसा खीच लाने की शक्ति ने भी उस आन्दोलन को सफल बनाने में कुछ कम भाग नही लिया। देश की वह एक विभूति थे। मारवाडी-समाज के तो वह शिरोमुकुट थे ही। मुझे इस समय दो-तीन छोटी-छोटी घटनाए याद आ रही है।

पहली यह कि मेरा जमनालालजी से परिचय कब और कैसे हुआ। सन् १९०८ के बाद की बात है, मैं उन दिनो नौजवान था। अरविन्दबाबू के क्रांतिकारी दल का मेम्बर था। एक मारवाडी सज्जन श्री दामोदरदास राठी (कृष्ण मिल, ब्यावर के मालिक) भी हमारे सच्चे मददगारो में से थे। धन मे भरपूर सहायता करते थे। मैं नए-नए मददगारो की खोज मे रहता ही था। दामोदरदासजी ने मुझसे कहा कि वर्धा में एक बहुत अच्छा होनहार मारवाडी युवक रायबहादुर जमनालाल है, तुम उससे जरूर मिलो। मैं पूना से लौटते हुए जमनालालजी से पहली बार वर्धा में मिला। खूब बातें हुई। तब से अन्त तक जमनालालजी से प्रेम बढता गया। पर जमनालाल-जी शुरू से बहुत ही सीधे, सच्चे और भले आदमी थे। वह उन दिनो स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखले के प्रशसक और अनुयायी थे। लोकमान्य तिलक का वह आदर करते थे, पर उनके विचारो से उतना अपनापन महसूस न कर पाते थे। मैं भी स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखले का बडा आदर करता था। पर

मैं अनुयायी था तिलक महाराज का। जो हो, जमनालालजी की नेकी और सच्चाई का आदर उसी दिन से मेरे दिल में बढ़ता चला गया।

यह एक स्वाभाविक बात थी कि जमनालालजी-जैसे आदमी को देश-सेवा के मैदान में गांधीजी ही पूरी तरह खींच सकते थे। जमनालालजी के दिल को कोरी राजनीति उतनी अपील नहीं करती थी, जितना सत्य और अहिंसा और गांधीजी ने तीनों को एक कर ही दिया था। यही गांधीजी में जमनालालजी की अटूट श्रद्धा और जमनालालजी के साथ गांधीजी के वात्सल्य-प्रेम का कारण था।

दूसरी घटना असहयोग-आन्दोलन के शुरू हो जाने के बाद की है। यह भी वर्धा ही की है। गांधीजी वर्धा में जमनालालजी के बाग में ठहरे हुए थे। मैं भी वहीं था। असहयोग का ऐलान हो चुका था। जमनालालजी को एक धर्म-संकट उत्पन्न हुआ। वह किसी शिक्षा-संस्था को कोई निश्चित रकम सालाना देने का वादा कर चुके थे। जहांतक मुझे याद पड़ता है, वह कर्वे साहब की महिला यूनिवर्सिटी* थी। जमनालालजी ने मुझसे पूछा कि असहयोग शुरू हो जाने के बाद उन्हें रकम देनी चाहिए या नहीं। मैंने कहा—हर्गिज नहीं। जमनालालजी को मेरी राय ठीक न लगी। उन्हें लगता था कि जिसे वचन दिया है, उसे पूरा करना ही चाहिए। आखिर मामला गांधीजी के पास गया। उन्होंने हम दोनों की बात सुनकर मेरी राय को ठीक माना। उनके समझाने से जमनालालजी सन्तुष्ट भी हो गए। यहां दलीलें दुहराने की आवश्यकता नहीं है। यह घटना मैंने केवल यह दिखाने को लिखी है कि जमनालालजी कितने ईमानदार और अपनी बात के कितने पक्के थे।

तीसरी घटना झंडा-सत्याग्रह की है। सन् १९२३ की बात है। देश में दो पार्टियां हो चुकी थीं, एक कौंसिल जाने के पक्ष में और दूसरी कौंसिल-बहिष्कार जारी रखने के पक्ष में। गांधीजी जेल में थे। राजाजी, जमनालालजी, और हम लोग 'नो चेन्ज' (अपरिवर्तनवादी) विचार के थे। सवाल यह था कि कौंसिल न जाकर हम लोग क्या करें? तय हुआ कि

कोई-न-कोई सत्याग्रह शुरू करके जेल जाया जाय और इस तरह गाधीजी के चलाए हुए आन्दोलन को जीवित रखा जाय। पर क्या सत्याग्रह किया जाय और किस बात पर किया जाय ? मै जबलपुर प्रान्तीय काग्रेस कमेटी का प्रेसीडेंट था। उन दिनो राजाजी के साथ प्रान्त का दौरा कर रहा था। जबलपुर म्युनिसिपैलिटी ने प्रस्ताव पास किया कि एक खास अवसर पर जबलपुर टाउनहाल के ऊपर राष्ट्रीय तिरगा झडा फहराया जाय । सरकार ने उस प्रस्ताव को रद्द कर दिया और हुकुम दिया कि टाउनहाल पर तिरगा झडा न लगाया जाय। इगलिस्तान की पार्लमेंट में भी वहा की सरकार ने खुले आम कहा कि तिरगा झडा सरकारी इमारतो पर नही लग सकता और न उसके जलूस की इजाजत दी जा सकती है। पुलिस ने टाउनहाल को घेर लिया। समाचार मिलते ही मैने फौरन तय किया कि इसी बात पर प्रान्त में सत्याग्रह शुरू कर दिया जाय । राजाजी की भी राय मिल गई। झडा-सत्याग्रह जबलपुर में शुरू होगया। देशभर में खूब जोश पैदा होगया। कई बार बडी सुन्दरता के साथ टाउनहाल पर भी झडा फहराया गया। इसी बीच मुझे पकडकर जेल में डाल दिया गया। मै उस समय सत्याग्रह का सचालक था, जिसे उन दिनो 'डिक्टेटर' कहते थे। महात्मा भगवानदीनजी नागपुर में थे। मैने जेल जाते समय उन्हें अपनी जगह सचालक नियुक्त कर दिया। उन्होने जबलपुर की जगह नागपुर को सत्याग्रह का केन्द्र बनाया। तुरन्त नागपुर में पाच आदमियो की एक सत्याग्रह-कमेटी बन गई, जिसके प्रधान महात्मा भगवानदीनजी थे। इस कमेटी के एक मेम्बर जमनालालजी भी थे। उनकी सहायता और उनके सहयोग ने बहुत बडा काम किया। अन्त में सत्याग्रह की पूरी विजय रही और और देशभर में तिरगे झंडे के जुलूस निकालने और सार्वजनिक इमारतो पर झडा फहराने की इजाजत हो गई।

जमनालालजी सच्चे 'भारतीय' थे। सचमुच, गाधीजी के दत्तक पुत्र थे।

: २९ :

एक अंग्रेज की श्रद्धांजलि

वेरियर एल्विन

पिछले कुछ सालो मे मैं जमनालालजी को बहुत ही कम देख पाया था, हालाकि एक समय ऐसा था, जब हम एक-दूसरे के काफी नजदीक थे। ऐसा कोई क्षण मुझे याद नही पडता, जब मैंने प्रेम और कृतज्ञता के साथ उनका स्मरण न किया हो।

दस साल पहले जब मैं धूलिया जेल में जमनालालजी से मिलने गया और उन्हें 'सी' क्लास में रहते देखा, तो मुझे इतना आघात पहुचा कि मैंने उसी समय प्रतिज्ञा की कि जबतक हमारे देश में ये बातें होती रहेंगी, मैं नगे पैर ही घूमूगा। मै आज भी नगे पैर ही घूमता हू, और यह एक ऐसी घटना है, जो प्राय मुझे अपने मित्र का स्मरण करा दिया करती है।

आज से दस बरस पहले वर्धा में जमनालालजी के उस छोटे-से सीधे-सादे घर में उनके मेहमान बनकर रहना एक अद्भुत चीज थी। अपने जीवन में जमनालालजी ने कभी सादगी का त्याग नही किया। बाद में जब वर्धा ने राजधानी का रूप ले लिया तो सहज ही वहा बहुत-सी नई इमारतें और सस्थाए खडी होगई और जो थी वे भर गई। मगर १९३१-३२ में तो उनके घर में साधु की कुटिया की तरह शांति और सादगी का वातावरण मानो मुह मे बोलता था।

जमनालालजी में कई ऐसे गुण थे, जो पश्चिम-वालों को खूब पसन्द आते। उनकी सादगी और स्वाभिमान, उनकी सच्चाई और स्पष्ट-वादिता, और जीवन के प्रति क्वेकरो-सी उनकी वृत्ति पश्चिम-वालों पर अपना प्रभाव डाले बिना न रहती।

उनके-जैसे धनी आदमी में सत्य का इतना आग्रह क्वचित ही पाया

जाता है। उनके मुह से निकलनेवाले प्रत्येक शब्द को आप जब चाहें कसौटी पर पूरा उतार सकते थे। आपको विश्वास रहता था कि उनकी भावुकता में कोई परिवर्तन न होगा और उनके आदर्शों में कोई कमी न आवेगी। मैं उनको दिल से प्यार करता था, और आज जब वे चले गये हैं, मैं अपने जीवन में एक बड़े अभाव का अनुभव कर रहा हू। मैं यह भी अनुभव करता हू कि वर्धावासियो और देश की जनता को उनके समान शुद्ध हृदय, प्रेमी, उदार और व्यापक सहानुभूतिवाले व्यक्ति का अभाव कितना खटक रहा होगा।"

●

मैंने आज अपना एक मित्र खो दिया और राष्ट्र ने एक सच्चा सेवक। १९२० से देश की सेवा में उन्होंने अपना जीवन समर्पण कर दिया था। तबसे जीवन के अन्त तक वे देश की सेवा करते रहे। वह अपनी विविध प्रवृत्तियों के कारण प्रथम श्रेणी के राष्ट्रीय नेता होगये थे।

उनका हृदय और उनके घर का द्वार राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं के स्वागत के लिए हमेशा खुला रहता था। वे सफल व्यवसायी थे। उन्होंने केवल पैसा कमाना ही नही सीखा था, वे उसे व्यय करना भी जानते थे। भारत मे ऐसी कई राष्ट्रीय सस्थाए है, जो उनकी सहायता की बदौलत ही जी रही है। आज वे हमारे बीच में नही ह, परन्तु उनकी सेवाओ के फल हमेशा हरे रहेंगे और उनकी याद कभी धुधली नही होगी।

—अबुलकलाम आजाद

: ३० :

मन की मन में रह गई

माधव विनायक किबे

श्री जमनालालजी का और मेरा परिचय उस समय हुआ जब इंदौर में प्रथम बार अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन महात्माजी की अध्यक्षता में हुआ। सम्मेलन के बाद सेठजी फिर मिले और मेरी पूर्व जागीर के गाव राऊ में, जो इंदौर से छ मील पर है, काच और चायमाल कारखानो को देखने की इच्छा प्रकट की। मैंने व्यवस्था कर दी। इसके बाद बहुत दिनों तक मिलना नही हुआ। मैं लन्दन की गोलमेज-परिषद् मे वापस आया और राज्य की सेवा से मुक्त हुआ। उसके बाद मुझे भारत-सरकार ने, बम्बई प्रान्त के सरदार, इनामदार, जागीरदार, तालुकेदार मडल के अध्यक्ष की हैसियत से उनके प्रतिनिधि के रूप में पार्लामेंटरी कमेटी के सामने उनके हित का विवरण रखने के लिए लदन बुलवाया। मैं वहा गया और गवाही देकर ३-४ महीने बाद वापस आया। सेठजी से मेरा पत्र-व्यवहार होता रहा। बाद में हम लोग वर्धा गये और सेठजी के यहा ठहरे। वहा की सस्थाए देखकर इंदौर आये। महात्माजी से हम लोगो का परिचय लदन मे हो गया था। कुछ वर्ष घर-गिरस्ती की व्यवस्था करके मैंने महात्माजी के पास जाने का विचार किया और सेठजी को लिखा। उन्होंने मुझे वर्धा बुलाया। मैं गया। वहा और भी नेता थे। सेठजी दो बार मुझे महात्माजी के पास ले गये। महात्माजी ने मुझे अपने पास रखना स्वीकार किया, परन्तु कहा कि जेल जाने की वहा तैयारिया हो रही है, इसका मैं विचार कर लू। मैं इंदौर लौटा। घर की व्यवस्था करके वर्धा जाना चाहता था कि सेठजी के देहान्त की सूचना मिली। मन की मन मे रह गई। मेरी पत्नी और मुझे दोनो को बडा धक्का लगा। सेठजी का मधुर स्वभाव, महान उदार व्यक्तित्व, परोपकार-सहृदता, इन गुणो से हम दोनो बहुत प्रभावित हुए थे।

: ३१ :

धनिकों में अपवाद

के० सतानम्

मैं १९२०-१९२२ में जमनालालजी के सम्पर्क में आया। कई बार मैं वर्धा मे उनका मेहमान बना। वे मुझसे बडी दयालुता का व्यवहार केवल इसलिए नही करते थे कि सीधे उनकी देखरेख में मैं खादी का काम करता था, बल्कि वे राजाजी के गहरे मित्र और प्रशसक थे और उनके साथ काम करनेवालो को बहुत चाहते थे।

वे महात्माजी के बहुत बडे भक्त थे, परन्तु इसका अर्थ यह नही कि वे उनके अन्ध-भक्त या आज्ञा-पालक मात्र थे। अपने क्षेत्र में उनके स्पष्ट और निश्चित विचार थे और वे अक्सर औरो को उन्हे स्वीकार करने के लिए समझाने-बुझाने में सफल हुआ करते थे।

वे मानव-प्रकृति को समझने में कुशल थे, हृदय की भावना छिपाने मे कुशल नही थे। जो कोई रचनात्मक काम करता, वह उनके पास जरूर जाते थे। उनका जीवन तपस्यामय था। वे जितना खा सकते, उतना ही भोजन परोसने देते और कभी खाने का कोई कण भी नही छोडते थे। वे लाखों का दान देकर भी छोटी रकमो के बारे में बहुत खयाल रखते थे।

जमनालालजी की मिसाल सामने होने के कारण ही महात्माजी ने देश के अमीरों को अपनी सम्पत्ति का ट्रस्टी होने की सलाह दी। जमनालालजी धनिकों में एक अपवाद थे। उन्होंने महात्माजी को काग्रेस के कार्य में जो मदद दी थी उसके कारण ही आज काग्रेस एक समाजवादी राज्य की धारणा बना सका है। जमनालालजी सभा और प्लेटफार्मो पर सबसे पीछे बैठते थे, पर मुझे निश्चय है कि गाधीजी के बाद स्वाधीनता के आरम्भिक सग्राम में उनका हाथ सबसे अधिक था।

: ३२ :

उनकी हिन्दी-भक्ति

गिरिधर शर्मा 'नवरत्न'

इन्दौर मे मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति के जन्म के बाद हिन्दी म 'कुछ विशेष' करने की धुन में मै यहा (झालरापाटन में) राजपूताना-हिन्दी-साहित्य-सभा स्थापित करके बम्बई गया था। सन् '१५ की बात थी। बम्बई में काग्रेस थी, हिन्दू महासभा थी और कई महासभाओं के उत्सव थे। हिन्दू महासभा के सभापति थे माननीय मदनमोहन मालवीय और वेदी पर बैठे हुए थे (स्वर्गीय) सर प्रभाशंकर पट्टणी, श्रीमती सरोजिनी नायडू, आदि-आदि। हिन्दी का प्रस्ताव मुझे करना था, वह मैंने किया। मेरे पौन घण्टे के भाषण से जो लोग प्रसन्न हुए, उनमें २४-२५ वर्ष का मारवाडी युवक भी था। इस युवक का नाम सेठ जमनालाल बजाज था।

'महात्मा' गाधी उस समय तक 'कर्मवीर' गाधी थे। 'महात्मा' नही हुए थे। काठियावाडी पगडी, लम्बी अगरखी पहनते थे और मारवाडी विद्यालय में उतरे थे। मैं एक रात उनके साथ ही रहा। इसके बाद मै एक रोज जमना-लालजी के यहा गया और उनसे हिन्दी के सम्बन्ध में काफी बाते हुई। उन्होंने हिन्दी के लिए जो-कुछ किया वह एक सच्चे हिन्दी-भक्त की तरह से ही किया।

एक बार वे दिल्ली आये हुए थे। उनके कान में पीडा थी। मेरी उनसे भेंट हुई। कान से पीडित होने पर भी हिन्दी की सेवा के लिए उन्होंने उपयोगी परामर्श दिया। उनके न रहने से ऐसा मालूम होता है कि हमने एक विशिष्ट पुरुष को खो दिया।

शान्त, विवेकी, शुचि-हृदय, सत्यनिष्ठ, नर-भाल।
बसु नव निधि महि तजि मिले प्रभु में जमनालाल॥

: ३३ :

उनकी छाप

दामोदरदास खडेलवाल

स्वर्गीय सेठ जमनालालजी बजाज से सर्वप्रथम मेरा साक्षात्कार २३ दिसम्बर १९२६ को मेरे निवास-स्थान पर हुआ था। इसके पहले मैंने सेठजी को दूर से ही एक या दो बार देखा होगा।

उस समय मैं खादी से नफरत करता था। महात्माजी ने सेठजी से मेरे सामने कहा कि खादी के बारे में कुछ बातें इन्हें बतलाओ। सेठजी के सामने ही मैंने उनसे कहा, "ये मुझे नही समझा सकेंगे। मैं इनसे समझना भी नही चाहता। मैं तो आपसे ही समझना चाहूगा।"

महात्माजी ने बडी नम्रता और प्रेम से उत्तर दिया, "मैं तुम्हे जरूर समझाऊगा, किन्तु इस समय तो तुम सेठजी से ही बात करो। महात्माजी के इस आग्रह पर मैंने सेठजी से बात करना स्वीकार कर लिया। मेरा खयाल था कि सेठजी से बात करने का विरोध उनके सामने ही मेरे द्वारा होने से वे नाराज हो जायगे और बात नही करना चाहेंगे, परन्तु ऐसा नही हुआ। उन्होने बडे आदर और प्रेम से मुझसे बातें की। खादी के विषय में उनकी बातों का मुझपर कोई असर नही हुआ, किन्तु मैंने देखा कि इसके बाद से सेठजी मेरे प्रति बहुत स्नेह और कृपा करते रहे। मेरा भी उनके प्रति आदर-भाव और प्रेम रहा। हम दोनो एक-दूसरे के नजदीक आते गए।

महात्माजी और सेठजी दोनो चाहते थे कि मेरी ज्येष्ठ पुत्री कृष्णा का विवाह दूसरी जाति मे हो। सेठजी उसको अपनी पुत्री-जैसी समझने लगे थे और उसके प्रति बहुत स्नेह रखते थे। वे एक या दो बार मुझसे काशी में मिले। कुछ पत्र-व्यवहार भी हुआ, लेकिन कृष्णा स्वय नही चाहती थी कि उसका विवाह अपनी जाति के बाहर हो। इसलिए अपनी जाति में ही

होना निश्चित हुआ। इसकी सूचना मैंने सेठजी को दे दी। उनका पत्र मिला, जिसमें उन्होंने इच्छा प्रकट की कि लडकी की खुशी हो तभी जाति तोडी जाय और उसके पूर्ण सन्तोष का खयाल रखा जाय। इन पत्र में उनकी उदारता, उनके हृदय की विशालता, दूसरों की भावना के प्रति आदर, सच्ची सलाह एव स्नेह आदि का नमूना मिलता है।

बाद में सेठजी किसी कार्य से दौरे पर निकले और इलाहाबाद होते हुए बनारस पधारे। मेरे निवास-स्थान पर आये। चर्चा के बाद उन्होंने कृष्णा का विवाह अपनी जाति में ही करने की स्वीकृति दे दी। इतना ही नहीं, श्री राजेन्द्रप्रसादजी के साथ वे विवाह के समय घर पधारे और दोनो महानुभावो ने मेरी दोनो पुत्रियो को, जिनके विवाह एक ही दिन, एक ही समय, एक ही मडप में हुए, तथा दोनों वरो को अपने आशीर्वाद दिये। महात्माजी उस समय मुगलसराय होकर पटना जा रहे थे। सेठजी ने दोनों कन्याओ और वरो को मुगलसराय साथ ले जाकर महात्माजी से भी आशीर्वाद दिलवाया। ऐसी थी उनकी उदारता।

अन्तिम बार मैं १९४१ के सितम्बर महीने में वर्धा गया। स्टेशन पर वेटिंग रूम में सामान छोडकर सेठजी से मिलने गया। वे भीतर कमरे में तेल मालिश करा रहे थे। ज्योंही उन्हें सूचना मिली, उन्होंने मुझे बुलाया। मैं जब मिला तो उन्होंने बडे स्नेह से उलाहना दिया कि सामान स्टेशन पर छोडकर खडे-खडे मिलने आये हो, यह क्या बात है? और यह भी क्या कि बिना बापूजी से मिले जाते हो! मैंने कहा, "जल्दी है।" पर उन्होंने एक न सुनी। हुक्म दिया कि एक सप्ताह ठहरना होगा। स्टेशन से सामान मॅगवा लिया। छ दिन रहना पडा। यही मेरी उनके साथ अन्तिम भेंट थी।

सेठजी का स्नेहमय व्यवहार, ऊंचे दर्जे की निष्ठा, उदार-हृदयता, दूसरो के प्रति आदर-भाव, मित्रता निभाने की रीति, परस्पर मिलना-जुलना, हमेशा प्रसन्न रहना आदि, अनेक बातों की छाप मेरे हृदय पर आज भी ताजी बनी हुई है।

: ३४ :

भाईजी भाईजी ही थे !

हीरालाल शास्त्री

१९२३ की बात है । मैं जयपुर से अहमदाबाद होकर बम्बई जा रहा था। हमारी गाडी घटे-आध घटे बाद आबूरोड स्टेशन पहुचनेवाली थी। एक छोटे स्टेशन पर किसी कारण से गाडी रुकी । अचानक मेरे कान में 'बिडलाजी!' यह आवाज आई । मैंने बाहर देखा कि एक पूरे कद का आदमी किसीको पुकार रहा है । एक मुसाफिर ने मुझसे कहा—"ये सेठ जमनालाल बजाज हैं ।" मैंने कहा—"अच्छा, ये हैं सेठ जमनालाल बजाज !" जिनको आवाज लगाई जा रही थी, वे कोई दूसरे बिडलाजी थे । मुझे उस घडी कुछ भी खयाल न था कि श्री जमनालालजी से और श्री घनश्यामदासजी से मेरा बहुत निकट का सम्बन्ध बननेवाला है ।

•• • ••

११ फरवरी, १९४२ को तीसरे पहर वनस्थली में मैं बडा बेचैन हो उठा । बेचैनी बढती ही जा रही थी, लेकिन कारण समझ में नही आ रहा था। रात की गाडी से कुछ बच्चिया जयपुर से आनेवाली थी । मुझे नीद नही आई, तो मैंने सोचा, बच्चियो के आने के बाद अर्थात् रात के १ बजे बाद सोऊगा । जैसे-तैसे एक-डेढ घटे तक पडा रहा। ठीक १ बजे उठ बैठा और चल दिया, यह देखने के लिए कि अब तो बच्चिया आ ही रही होगी । जयपुर स्टेट रेलवे की कृपा से बच्चिया उस रात को २॥ बजे पहुची । वे सब-की-सब गुम-सुम थी, लेकिन इस विचित्रता की ओर मेरा उस समय बिल्कुल ध्यान नही गया । चद्रकला ने मेरे पास आकर पूछा—"आपको काकाजी का कोई पत्र मिला ?" मैंने कहा—"नही ।" —"आपको और कुछ मालूम है ?" मैंने फिर कह दिया—"नही।" लडकी डरती हुई-सी बोली—"काकाजी

की तो बहुत बुरी खबर है।" आगे का वाक्य सुनकर मैं ज्यों-का-त्यों खड़ा रह गया। बाद में तो हम लोग जागते ही रहे।

१९२४ का वह दिन मुझे अच्छी तरह याद है, जब मैं जयपुर के बिड़ला-भवन में पहले-पहल सेठजी से मिला। सेठजी राष्ट्र-सेवा में लग सकनेवाले लोगों की खोज में रहा करते थे और इस प्रकार उन्होंने मुझे भी टटोल लिया था।

मैंने राज की नौकरी छोड़कर देश के काम में लगने का निश्चय कर रखा था। परन्तु सेठजी के सहयोग से मेरा यह निश्चय जल्दी अमल में लाया जा सका। मुझे इस बात का जीवन-भर खयाल रहेगा कि सेठजी का अमूल्य सहयोग न मिलता तो न जाने मैं कबतक नौकरी के फंदे में फंसा रहता।

लड़कपन से ही मैंने सोच रखा था कि मैं किसी गांव में रहकर ग्राम-वासियों की सेवा करूंगा। नौकरी छोड़ने के बाद वनस्थली में 'जीवन-कुटीर' की स्थापना होने से पहले मेरे चुनाव करने के लिए एक से अधिक कार्यक्रम आते रहे। 'जीवन-कुटीर' का काम मैंने अपने खुद के आग्रह से और सेठजी की अनुमति के बिना शुरू किया था।

परन्तु सेठजी बहुत बड़े थे। एक बार उनको किसी मित्र से यह पता चल गया कि वनस्थलीवाले विशेष आर्थिक कठिनाई में हैं। इसीपर से सेठजी ने मुझे तार देकर बुलाया और अपने-आप ही सहायता की व्यवस्था कर दी। सेठजी वनस्थली को अपनी निजी चीज मानते थे। १९३६ का बड़ा जलसा उन्हींके सभापतित्व में हुआ।

•• •• ••

न जाने एक के बाद दूसरी कितनी बातें याद आती हैं। वर्धा में बारिश हो रही थी। हम लोग चार-पांच आदमी आजकलवाले नवभारत विद्यालय के बरामदे में टहल रहे थे। बड़ी गरमागरम बहस हो रही थी। सवाल यह था कि मुझे कहांपर कौन से काम में लगना चाहिए? घनश्यामदासजी का एक खयाल था, जमनालालजी का दूसरा, हरिभाऊजी का तीसरा, और मेरा खुद का चौथा, जिससे सीतारामजी सेकसरिया भी सहमत थे। भाईजी

कुछ जोश में आगये थे। आखिर हारकर बोले—"तुम्हारी समझ में बैठे सो करो, लेकिन इस तरह तुम्हें सफलता नही मिलेगी।" मैंने अपनी जिद को रखते हुए मजबूती के साथ कहा कि मुझे अवश्य सफलता मिलेगी और न मिलेगी तो आपके पास आ जाऊगा। मैंने तो वनस्थली में जाकर अपनी कुटिया बना ही डाली। बाद में जिस तरह से भाईजी ने वनस्थली को अपनाया, वैसा और कोई आदमी शायद ही कर सकता था। उनका हृदय विशाल था।

•• •• ••

भाईजी के जरिये एक बार एक सस्था से सिर्फ २४००) की सहायता लेनी थी। भाईजी रुपया दिलवाना नही चाहते थे। सस्था की समिति हरिभाऊजी की और मेरी माग को अस्वीकार कर चुकी थी। यह बात मुझे बहुत अखरी और मैंने नाराज होकर एक लम्बा-चौडा पत्र भाईजी को लिखा। न जाने मैंने क्या-क्या लिख मारा होगा। शायद मेरे उस पत्र का भाईजी ने कुछ-न-कुछ जवाब दिया था। उनके पत्र के जवाब में या वैसे ही मैंने एक दूसरा पत्र उनके पास और भेज दिया। नतीजा यह निकला कि हमें वे २४००) मिल गये। भाईजी कई बार कहा करते थे कि जब कोई मुझसे लडता है तो मुझे बहुत अच्छा लगता है। किशोरलालभाई ने मुझसे विनोद में जो-कुछ कहा उसका उस समय मैंने यह अर्थ समझा कि मुझ-जैसे 'मुडचिरो' को बेचारे सेठजी रुपया न दिलावें तो क्या करें? अपने से झगडनेवालो को प्यार करनेवाले भाईजी एक ही थे।

भाईजी ने अपनी नाप-तोल बना रखी थी। उनकी कसौटी स्पष्ट थी। वे सहज ही किसी बात के लिए 'हा' नही कहते थे। जब 'हा' कहते थे तब भी ऐसे ढग से कहते थे कि सुननेवाला यह नही सोच सकता था कि कोई बडा फल निकलनेवाला है। लेकिन भाईजी की मामूली-सी 'हा' भी बडी ठोस होती थी। मैंने उनसे जयपुर-प्रजामडल का सभापतित्व मजूर करने के लिए कहा। उन्होने छ-कुछ 'हा' की। बापूजी से पूछना जरूरी था। हम लोग बम्बई से वर्धा गये और फिर सेवाग्राम पहुचे। बापूजी भी राजी होगये। तो मैंने अपना सितारा बुलन्द समझा। सेवाग्राम से वर्धा लौटते

हुए मोटर मे मैंने कौन जाने क्या-क्या सोचा ! मानो मुझे एक अलभ्य वस्तु मिल गई थी ! जयपुर के मामलो मे फिर भाईजी ने जो रस लिया वह भी किससे छिपा है ? उन्होने अपने जीवन मे वडे-वडे काम किये थे, लेकिन यह जाने बिना कि जाना कहा है, रातोरात सैकडों मील मोटर मे घुमाये जाना, पुलिसवालो के द्वारा जबरदस्ती उठाकर मोटर में डाला जाना, कपडे फट जाना, खून आ जाना—यह सबकुछ भाईजी के लिए अपनी जन्म-भूमि में होना वदा था।

मेरे खयाल मे वडे-वडे लोग भाईजी की कुशलता के कायल थे। लेकिन मुझे कभी-कभी वे वडे भोले मालूम होते थे। कभी तो वे प्रतिपक्षी के सामने इतनी सीधी-सपाट बात कह डालते थे कि मै सोचता ही रह जाता था कि ये भी कोई राजनीतिज्ञ हुए। मेरी जानकारी मे कुशलता और सरलता का भाई-जी एक ही नमूना थे। मै डरा करता कि उनमे अमुक बात कहू या नही। सोचता कि इनसे कुछ कहा कि ये तो उसीसे कह देंगे, जिसकी बात है। अब मै विचार करता हू कि उनकी सरल स्पष्टवादिता के कारण उनके बारे मे किसीको वहम हो ही नही सकता था।

भाईजी का घर क्या था, एक राष्ट्रीय धर्मशाला थी। उनका सबके साथ बैठकर खाने का वह दृश्य देखने ही लायक था। बडे-से-बडे और छोटे-से-छोटे आदमी—पुरुष भी, स्त्रिया भी, हिन्दू भी, मुसलमान भी हरिजन भी—सब एक पक्ति मे। विनोद का वातावरण होता था। मुझे इस बात का गर्व है कि उस मडली मे मै भी कई बार शामिल होता था। 'जीवन-कुटीर' के टूटे-फूटे गाने गवाये जाते सो सब जयपुर की बोली मे। जो न समझते उन्हे भाईजी खुद समझाते। अक्सर मेरी भोजन-भट्टता का नमूना पेश होता। एक ही दो स्थान ऐसे और है, जहापर मै इतनी खुलावट के साथ भोजन कर सकता हू, परन्तु वहा इतना बडा समाज नही जुट पाता। भाई-जी का सबसे प्यार था और न जाने कितने लोग यह समझते होगे कि उन्हींके साथ उनका सबसे ज्यादा प्यार था। ऐसा लोक-सग्रह करनेवाला दूसरा व्यक्ति मेरे खयाल से हिन्दुस्तानभर मे नही होगा।

: ३५ :

उदार और सदाशयी

महात्मा भगवानदीन

सेठ जमनालालजी से मेरा पहला परिचय सेठ चिरजीलाल वडजात्या की मारफत सन् १९१७ में वर्धा में हुआ था। मुलाकात तो कुछ मिनटो की थी, पर खासी घनिष्ठता होगई।

दूसरी बार सन् १९१९ में मिलना हुआ। ये दिन वे थे जब जलियावाला बाग-काड हो चुका था और मेरे नाम मेरी गिरफ्तारी के लिए दिल्ली पुलिस का वारन्ट था। गाधीजी की सलाह के अनुसार मैं दिल्ली पुलिस को अपना प्रोग्राम भेज चुका था। अब बचने-बचाने, छिपने-छिपाने की कोई बात ही न थी। सेठ जमनालालजी और सेठ चिरजीलालजी दोनो पर यह बात खोल दी गई। इस खबर का कोई असर सेठ जमनालालजी पर नही हुआ। मैं पाच-सात रोज वर्धा ठहरा। करीब-करीब रोज ही घटे-डेढघटे बात होती थी। इन मुलाकातों से हम और भी पास आगये। सन् १९२० मे काग्रेस के अवसर पर मैं नागपुर मे सेठजी के ही पास ठहरा। गाधीजी भी उसी बगले मे थे। हम दोनो बहुत पास आगये। सन् १९२१ के जनवरी महीने की पहली तारीख को नागपुर में 'असहयोग-आश्रम' खुल गया। उसकी जिम्मेदारी मेरे सुपुर्द हुई। उसके लिए धन जुटाने का काम सेठ जमनालालजी के सुपुर्द हुआ। 'जुटाने' का अर्थ देना ही समझिए, क्योंकि आश्रम का सारा खर्च सेठजी की दुकान से आता था। मैं कुल पचहत्तर दिन आजाद रह पाया और इन पचहत्तर दिनो में पाच दिन भी ऐसे नही मिले कि सेठजी और मैं किसी एक दिन भी पाच घडी मिल बैठ सके। आश्रम का खर्च खूब था। सेठजी की दुकान से रुपया मिलने में कोई दिक्कत नही होती थी। मेरे जेल जाने के बाद भी मुझे जेल मे खबर मिलती रही कि

वालो को कभी कोई दिक्कत नही हुई।

सन् १९२२ में मैं जैसे ही जेल से छूटकर आया कि आश्रमवासियो ने पैसो का रोना शुरू कर दिया। मालूम हुआ दो-तीन महीने से वर्धा की दुकान से पैसे मिलने बद हैं। आश्रम को उन दिनो सेठजी की दुकान से ३००) माहवार मिलते थे—आज के तीनसौ नही, सन् १९२२ के तीनसौ। इतनी बडी रकम का एकदम बद हो जाना आश्रम के चलानेवाले १८-२० वर्ष के लडके कैसे बरदाश्त कर सकते थे? आधे-पेट रह रहे थे। फटे कपडो में दिन काट रहे थे। देशभक्ति ही उनका सहारा थी। मेरी वापसी की आशा उनकी राह का मील का पत्थर था। उनकी यह हालत देखकर मेरा तन-बदन फुक उठा। मैं सीधा वर्धा पहुंचा और सेठजी से बुरी तरह भिड बैठा। वे जरा भी नही गर्माये। ठण्डे-ठण्डे सुनते रहे। मेरे चुप होने के बाद बोले, "आपने आश्रम का हिसाब देखा है? मेरे मुनीम का कहना है कि हजार रुपये की रकम जो आश्रम को भेजी गई थी, वह आश्रम के वही-खाते में जमा नही है।" मै आगे कुछ न बोला। नागपुर वापस चला आया। हिसाब की जाच की। कोई गलती नही मिली। एक हजार रुपये की रकम, जो वर्धा की सेठजी की दुकान आश्रम को भेजी बताती थी, वह कभी आश्रम तक नही आई थी।

मै फिर वर्धा पहुचा और सेठजी को सारी बात समझाई। मैंने उनसे कहा कि आप मुझे अपना वही-खाता देखने दें और अपनी यह तसल्ली करने दें कि आखिर एक हजार की रकम किस तरह आश्रम के नाम डाली गई है। सेठजी ने उसी समय मुनीमजी को हुक्म दे दिया और मैंने कुछ मिनटो में ही मामले को समझ लिया और सेठजी को समझा दिया। उनकी तसल्ली हो गई। उसी वक्त मुझे रुपया मिल गया। फिर वे तीन सौ रुपये माहवार ३१ दिसम्बर सन १९२३ तक बराबर मिलते रहे।

गया-काग्रेस में काग्रेस ने एक पलटा खाया। गाधीजी जेल में थे। दो दल बन गये। एक दल कौंसिलो में जाना चाहता था, दूसरा कौंसिलो में जाना ठीक नही समझता था। सन् '२३ की कोकनाडा-काग्रेस तक बडी उम्र के और वकील-पेशा सब कौंसिलवादी बन गये। कुछ जोशीले जवान बच रहे, जो

कौंसिलों में जाना पसन्द नही करते थे। कौंसिलवालों का दल सत्याग्रह से जी चुराता था। जो कौंसिलवाले नही थे वे सत्याग्रह की तरफ इस तरह दौडते थे, जिस तरह पतंगा दीपक की ओर। वे कोई मौका हाथ से नही खोना चाहते थे। आखिर सन १९२३ में जबलपुर में झण्डा-सत्याग्रह छिड गया। वहा सरकार ने दबाया तो वह नागपुर में जा फटा और वहा उसने बडा उग्र रूप धारण कर लिया।

नागपुर का यह हाल था कि प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी कौंसिलवादी प्रधान थी। नागपुर की नगर-कांग्रेस-कमेटी सत्याग्रह-वादियो से भरी हुई थी। नगर-कांग्रेस-कमेटी ने अपने बल पर सत्याग्रह छेड दिया। अब कांग्रेस की वर्किंग कमेटी में ज्यादातर ऐसे आदमी थे, जो हर समय से फायदा उठाना चाहते थे। उन्होंने नागपुर के सत्याग्रह को नही रोका। एक तरह से मदद ही की। उसको चलाने के लिए पाच आदमियो की जो कमेटी बनी उसमें सेठ जमनालाल बजाज भी थे। खजाची की हैसियत से जमनालालजी आल इण्डिया वर्किंग कमेटी के सदस्य भी थे। मै उस कमेटी का मेम्बर था। स्वय-सेवक-विभाग मेरे सुपुर्द था। एक तरह से सत्याग्रह के सचालन का कार्य मेरे हाथ में था। धन इकट्ठा करने की जिम्मेदारी सेठजी पर थी। पर सेठजी थे वर्किंग कमेटी के मेम्बर। अगर वे किसी वजह से उस कमेटी को छोडकर चल देते तो उनकी जगह किसी दूसरे को लेकर पाच की कमेटी काम चला सकती या नही, ऐसा कोई निर्णय देना मुश्किल है।

अब हुआ यह कि पहले ही दिन जो दस स्वय-सेवको का जत्था भेजा गया, वह गिरफ्तार कर लिया गया। दूसरे दिन के लिए सिर्फ तीन स्वय-सेवक थे और चाहिए थे दस। इस बात का पता मेरे सिवाय कमेटी के किसी मेम्बर को न था। मेरा यह विश्वास था कि सेठजी को इस बात का पता देना खतरे से खाली नही है, क्योकि आल इण्डिया वर्किंग कमेटी, जिसके सेठजी सदस्य थे, उन दिनो सत्याग्रह में इतना पक्का विश्वास नही रखती थी, जितना मै और मेरी नगर-कांग्रेस-कमेटी। मुझे यहातक डर था कि स्वय-सेवको की इस कमी का कही यह असर न हो कि सेठजी मेम्बरी

छोड़कर अलग होजाय। अब सवाल यह था कि इस कमी को पूरा कैसे किया जाय? पूरा करने के लिए कुछ समय की जरूरत थी। उतना समय मिल नही सकता था। मैंने सेठजी से अलहदा में सलाह की। उन्हें समझाया कि जब सत्याग्रह शुरू होगया है तो यह महीनों चलेगा। इसलिए ठीक यह रहेगा कि हफ्ते में एक रोज की छुट्टी रखी जाय।

सेठजी राजी होगये, बोले, "इतवार ठीक रहेगा।"

उनका सुझाया इतवार था तीसरे दिन और मुझे फिक्र थी दूसरे दिन यानी कल की। मैं तुरन्त बोला, 'सेठजी, इतवार से शनीचर अच्छा। शनीचर का दिन होता भी मनहूस है। इतवार का दिन सरकारी दफ्तरों की छुट्टी का दिन होता है, और हम नही चाहते कि हमारा सत्याग्रह सरकारी नौकर न देख सकें। उनके लिए यही दिन बढ़िया दिन होगा। इसलिए इतवार के दिन जरूर सत्याग्रह होना चाहिए। छुट्टी शनीचर की ही रहेगी।

सेठजी ने यह बात मान ली और इतवार के दिन ग्यारह आदमियों का जत्था भेजा गया। शनीचर की कमजोरी का पता किसीको भी न चल पाया। बहुत दिनों बाद जब सेठजी को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने खुले दिल से कहा, "बेशक, अगर वक्त-के-वक्त मुझे पता चल गया होता तो जरूर मुझसे कोई ऐसा काम होगया होता, जिससे सत्याग्रह को धक्का पहुचता, क्योंकि मैंने वर्किंग कमेटी को यह विश्वास दिला रक्खा था कि हमारे पास सत्याग्रह के लिए स्वयसेवकों की कोई कमी नही है और न पैसे और काम करनेवालों की।"

झण्डा-सत्याग्रह के बाद सन् १९२३ में सितम्बर के महीने में दिल्ली में स्पेशल कांग्रेस हुई। उस कांग्रेस में सत्याग्रहवादियों का जोर था। दिसम्बर के महीने में देहरादून में यू०पी० कान्फ्रेंस हुई। उसमें 'देश-बन्धु' भी शामिल हुए। इसमें कौंसिलवादियों का जोर था। दिल्ली की स्पेशल कांग्रेस के बाद कोकनाडा में कांग्रेस का बाकायदा जल्सा हुआ। उसके प्रेसिडेन्ट मौलाना मोहम्मद अली थे। वह कम सत्याग्रहवादी और ज्यादा कौंसिलवादी थे। राजगोपालाचारी भी पूरे-पूरे सत्याग्रहवादी न थे। नतीजा यह हुआ कि

जमनालालजी भी कौंसिलवाद की ओर झुक गये । सत्याग्रह के जन्मदाता और महारथी महात्मा गाधी यरवदा-जेल मे थे । सर पर कफन बाधकर गाधीजी को जेल से छुडाने की बात वकीलपेशा लोगो को निरी मूर्खता जची। उन्हे आसान यह ही मालूम हुआ कि वे सरकार के किले में घुसकर यानी कौसिलो में शामिल होकर ही गाधीजी को छुडा सकते है ।

आखिर कोकनाडा में दासबाबू और भाई मोतीलालजी की जीत हुई। काग्रेस दो हिस्सो में बट गई। एक कहलाये परिवर्तनवादी और दूसरे कहलाये अपरिवर्तनवादी । जमनालालजी परिवर्तनवादी थे और मैं था अपरिवर्तनवादी। कोकनाडा-काग्रेस ३१ दिसम्बर १९२३ को खत्म हुई । उसके दूसरे दिन यानी पहली जनवरी सन् '२४ को कोकनाडा में ही सेठजी ने मुझसे अपना आर्थिक सम्बन्ध तोड लिया और अपनी ३००) रु० मासिक की मदद एकदम बद कर दी ।

ये सब होने पर भी उनकी-मेरी आपसी दोस्ती में कोई अन्तर नही आया। वे नागपुर आते तो मुझसे जरूर मिलते । मैं वर्धा जाता तो उनसे जरूर मिलता । सत्याग्रहवादियो की सभाए तक सेठजी के ही मकान पर होती । उनकी खातिरदारी में उन्होने कोई आगा-पीछा नही किया । यह कुछ कम मार्के की बात नही है । इस तरह का व्यवहार आजकल उठ-सा गया है । राजकाजी मामलो के मतभेदो ने न सेठजी को पागल बनाया, न मुझे । सन्' २४ में गाधीजी जेल से छूट गये । वे जुहू मे ठहरे हुए थे । उन्होने पडित सुन्दरलालजी, सेठ जमनालालजी और मुझे बुलाकर आपस मे फिर आर्थिक सम्बन्ध जुडवाना चाहा, पर वे असफल रहे । उन्होने मुझे यह कहकर जुहू से विदा किया कि सेठजी और तुम्हारे बीच मे गगा बहती है, उसका पुल तुम दोनो ही बाध सकते हो, मैं नही । चलते-चलते उन्होने सलाह दी कि राजकाजी मामले बे-पसे नही चलते । किसी-न-किसी पैसेवाले को बनाकर रखना ही पडता है ।

गाधीजी के जेल से छूट आने पर और उनके यह बात मान लेने पर कि कोकनाडा-काग्रेस में सत्याग्रहवादी पक्ष यानी हमारा पक्ष ही ठीक था,

जमनालालजी और मैं उतने पास न आ पाये, जितने सन्, २३' में थे। इसका एक कारण यह भी रहा होगा कि मैं या हमारा असहयोग-आश्रम या हमारे कुछ साथी कभी-कभी कुछ ऐसे काम शुरू कर देते थे, जिनसे गांधीजी सर्वथा सहमत नहीं होते थे। कभी-कभी विरोधी भी होते थे। जमनालालजी चाहते थे कि मैं और हमारे साथी गांधीजी के हर बात में कट्टर भक्त बनें। मेरे खयाल से यही एक वजह हो सकती है, जिसके कारण वे मेरे पास आते और मुझसे दूर हो जाते थे। मिसाल के लिए सेठ पूनमचन्दजी की बुलाई हुई 'नागपुर विभाग राजकीय परिषद्' ही लीजिए, जिसके श्री सम्पूर्णानन्दजी सभापति थे। इस परिषद् के बारे में तो सेठजी की शिकायत पर गांधीजी ने खुद मुझसे पूछा था कि नागपुर में यह कांग्रेस के खिलाफ क्या हो रहा है? और ताना देकर यह भी कहा, "तुम महात्मा बने फिरते हो! यह अपने यहां क्या करा रहे हो?"

मैंने जवाब में कहा, "नागपुर में कांग्रेस के खिलाफ कुछ नहीं होने का। जिस किसीने आपको खबर दी है, गलत खबर दी है।"

गांधीजी की तसल्ली होगई और परिषद् में वैसी कोई बात भी नहीं हुई। होनहार, गांधीजी से जब यह बात हो रही थी, उसी समय सेठजी वहां आ पहुंचे। गांधीजी हँसते हुए बोल उठे, "जमनालाल ने ही तो मुझसे कहा था।"

जमनालालजी भी हँस दिये। मेरे असहयोग-आश्रम के मेम्बर जनरल आवारी का उठाया हुआ 'तलवार-सत्याग्रह' भी ऐसा ही सत्याग्रह था, जिसे गांधीजी पसंद नहीं करते थे। उस सत्याग्रह के खिलाफ तो गांधीजी ने 'यंग इण्डिया' में नोट भी निकाला था।

बस, ऐसी ही कुछ बातें थीं, जिनके कारण सेठजी मेरे बहुत पास नहीं आ सकते थे और आर्थिक मदद तो कर ही नहीं सकते थे। सेठजी को मुझसे व्यक्तिगत कोई शिकायत न थी। शिकायत तो दूर उल्टे, मुझसे मोह था। इसलिए उनके कुटुम्ब-भर को मुझसे मोह था, और फिर मुझे उनसे मोह था और वह आजतक बना हुआ है। एक दिन सेठजी मेरे आश्रम में आये, मुझसे पूछा, "अब आपका काम कैसा चलता है?"

मैंने कहा, "खासा चलता हूँ। जब आपके तीन सौ मिल जाते थे तो परिश्रम नही करना पडता था और चिकनी-चुपडी मिल जाती थी। अब थोडा परिश्रम करना पडता है और रुखी-सूखी मिल जाती है ।"

वे बोले, "रुखी-सूखी भी तो बे-पैसे नही मिलती।"

मैं बोला, "नागपुर में ऐसे दातार है और इतने देशभक्त भी है, जिनसे काम चल जाता है।"

सुनकर वे चुप होगये, पर वही पडी हुई मेरी पासबुक उनके हाथ पड गई। उसे उठाकर देखने लगे। उसमें जमा थे कुल २०) रु० और ये रुपये भी उन्नीस-बीस बरस पुराने थे। उस किताब में न कभी एक पैसा जमा हुआ था और न निकाला गया था। उन्होंने वह किताब चुपचाप रख दी। थोड़ी देर और बैठे और चल दिये।

छठे-सातवे रोज सेठजी की दुकान से २५) रुपये का एक मनीआर्डर आ टपका। मैंने कबूल कर लिया। दो-एक महीने बाद यह रकम कुछ और बढ गई और दिसम्बर सन् ३६ तक मुझे बराबर मिलती रही। असहयोग-आश्रम सन् ३२ में ही खतम होगया। ये ही सब हैं मेरे उनके प्रति सस्मरण।

●

जमनालालजी के लिए यह कहा जाना सच है कि वह देश की उन्नति के लिए जिये और उनका एक भी काम ऐसा नही था, जो देशसेवा के लिए न हो। अपने प्रारम्भिक जीवन से ही वह महात्मा गाधी के सच्चे अनुयायी मित्र व उनकी प्रवृत्तियो के समर्थक बन गये थे। अपने जीवन को ही उन्होंने इस पवित्र उद्देश्य के लिए समर्पित कर दिया था। उन्होंने अपने घर को प्रत्येक सार्वजनिक कार्य और कार्यकर्त्ता का तथा सेवाग्राम को गाधीजी का ही नही गाधी-आदोलन से सम्बद्ध कई सस्थाओ का घर बना दिया था। उन्होंने ग्रामोद्योग-सघ, चर्खा-सघ, बुनियादी तालीम योजना को, जो महात्मा गाधी के जीवन, कार्य और विचारो के मूर्त स्वरूप थे, जन्म दिया था।

वे सदात्मा थे। स्वभाव से वे अत्यन्त प्रसन्नमुख थे और त्याग में तो देश के सार्वजनिक जीवन में वे अद्वितीय ही थे। —भूलाभाई देसाई

: ३६ :

सच्चे मित्र

रामनरेश त्रिपाठी

जमनालालजी की मूर्ति पचतत्त्वो ने मिलकर निर्माण की थी, वह समय पूरा होने के पहले ही फिर उन्ही पचतत्त्वो में अदृश्य होगई। अब वे फिर कभी आखो के आगे नही आ सकेंगे। मुस्कराहट के साथ मित्रो का स्वागत करने के लिए आगे बढते हुए अब वे फिर नही दिखाई पड सकेंगे। प्रेम से भरे हुए व्यग्य और नुकीले तानो मे हृदय को गुदगुदानेवाली उनकी नरम वाणी अब फिर सुनने को नही मिलेगी। सयम, सेवाभाव, दानशीलता और सदा ऊचे उठने की प्रवृत्ति आदि गुण जो उनके दैनिक जीवन में जगमगाते रहते थे, अब उनकी झलक नही दिखाई पडेगी। ससार में जन्म और मृत्यु की घटना सदा से होती आ रही है, पर मनुष्य आजतक स्वाभाविक वस्तु को अस्वाभाविक ही समझता रहा है और रहेगा भी, बल्कि अस्वाभाविकता उनके लिए अधिक स्वाभाविक होगई है।

जमनालालजी चले गये, हम सबको भी कभी-न-कभी जाना ही होगा, पर जाने के लिए अपनी इच्छा से हममें से कोई भी तैयार नही है। हम जमनालालजी को भी जाने देना नही चाहते थे। यह प्रवृत्ति ही हमारी वेदना का मूल कारण है।

जमनालालजी से मेरा पहला साक्षात्कार सन् १९१० या ११ में फतहपुर (सीकर) में हुआ था। उनके गुणो और उनकी ख्याति का परिचय देकर बजरगलालजी लोहिया मुझे उनसे मिलाने को ले गये थे। मेरी-उनकी पहली मुलाकात सेठ रामगोपालजी गनेडीवाला के नोहरे मे हुई थी, जहा वे ठहरे हुए थे। मैं उन दिनो सग्रहणी रोग से पीडित होकर स्वास्थ्य सुधार के लिए फतहपुर (शेखावाटी) गया हुआ था।

उस समय जमनालालजी की अवस्था बाईस-तेईस वर्ष की रही होगी। उनकी मुखाकृति मुन्दर और आकर्षक थी। युवावस्था के सौंदर्य के साथ उनके सयमी जीवन की चमक भी उनके चेहरे पर थी।

हम लोग आधे घटे तक बातें करते रहे। मारवाडी-समाज में फैले हुए अज्ञान, कुरीतियो, अपव्यय और अशिक्षा आदि की बाते उन्होंने मुझे बताईं और फिर मुझे उत्साहित किया कि मैं उनके दूर करने में उनकी कुछ सहायता करू। तबसे उनके साथ मेरी निकटता उत्तरोत्तर बढती गई और हम दोनो एक-दूसरे को मित्र समझने लगे। मृत्यु के कुछ ही महीने पहले तक हमारा एक-दूसरे से समय-समय पर मिलना और पत्र-व्यवहार होता रहा।

जमनालालजी स्वभाव के बहुत ही मधुर और बडे ही विनोदी थे। गाधीजी के सम्पर्क मे आ जाने के बाद मे तो वे अपने वचन और कर्म में सत्य के स्वरूप को अधिक-से-अधिक स्पष्ट रखने की सावधानी रखने लगे थे।

उनके बहुत-से मुखद सस्मरण है, जो मेरे जीवन-सगी है। किसको लिखू, किसको न लिखू। पद्रह-बीस वर्ष पहले मैंने उनका जीवन-चरित लिखा था। उसमे उनके उस समय तक के जीवन की खास-खास बातें आगई थी। पर उसके बाद का उनका जीवन तो बहुत ही व्यापक और महत्वपूर्ण होगया था, जो अभी तक लिखा नही गया था। बीच में मैंने उसे पूरा करने की बात चलाई थी, पर उन्होंने रोक दिया था। यहा कुछ सस्मरण देता हू, जिनसे उनके व्यक्तित्व का कुछ परिचय पाठको को मिलेगा।

सन् १९१४ या १५ मे मै बबई गया, तब उन्हीके पास ठहरा। सवेरे दस बजे के लगभग उनके नौकर ने आकर सूचना दी कि रसोई तैयार है। जमनालालजी ने मेरी ओर इशारा किया कि चलो, जीमें।

रसोई-घर की ओर जाते हुए वे तो लघुशका करने चले गये और मैं हाथ-पैर धोकर चौके में गया। चौके में एक आसन के सामने चादी की थाली, चादी का लोटा-गिलास और चादी की कटोरिया रक्खी थी। नौकर ने उसीपर बैठने के लिए मुझे सकेत किया। बैठ जाने पर मैंने देखा कि बगलवाले आसन पर मुरादाबादी कलई की थाली, कटोरिया और गिलास रक्खे हैं।

मैं सोचने लगा कि बैठने में मुझसे भूल हुई है। चांदी के बर्तन तो सेठजी के लिए होंगे। इच्छा हुई कि आसन बदल लूं। पर यह सोचकर कि नौकर ने जहां बैठाया, वहां मैं बैठ गया, भूल हुई होगी तो उनकी जिम्मेदारी नौकर पर है, नौकर और मालिक निपट लेंगे, मैं बैठा ही रहा। सेठजी आये और बगलवाले आसन पर बैठ गये। भोजन परोसा गया। मेरे बर्तनों में कई तरह के स्वादिष्ट पदार्थ परोसे गये और उनके बर्तनों में बाजरा, मक्का और ऐसे ही एक और किसी अन्न की रोटियां, दही और बिना मिर्च के एक या दो शाक परोसे गये।

खाते-खाते मैंने अपनी शंका मिटाने के लिए कहा—चांदी के बरतनों में बाजरे की रोटी शोभा नहीं देती होगी।

कुशाग्र बुद्धि जमनालालजी ने तत्काल हंसकर उत्तर दिया—"तुमको भी पीतल की ही थाली मिलेगी। आज अतिथि हो, कल घर के हो जाओगे।" इसमें उनकी कितनी आत्मीयता प्रकट होती है। उनके उत्तर पर मैं तो मुग्ध होगया।

अगले दिन सचमुच वैसे ही कलई के बरतन मेरे सामने भी रक्खे गये, पर खाने के पदार्थों में अंतर बना ही रहा। वे रूखा-सूखा आहार क्यों लेते थे? मैंने पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया—"अभ्यास डालता हूं। कभी पास में पैसा न रहा तो गरीबी अखरेगी तो नहीं।"

जमनालालजी से जब मैं पहली बार मिला था, तब उनका शरीर बहुत ही मोटा था। उनकी तोंद धोती की सुर्री के बाहर चार-पांच अंगुल से ज्यादा लटकी हुई थी। लगातार उपवास करके, चरबी बढ़ानेवाली चीजों का परित्याग करके उन्होंने बाद में अपना शरीर सुडौल बना लिया था। खान-पान के प्रयोग उनके बहुत चलते रहते थे। मैं बम्बई अक्सर जाता रहता था। कभी वे चीनी छोड़े हुए मिलते, कभी घी। चने की दाल उन्हें बहुत पसंद थी, उसमें आसक्ति न होजाय, इस खयाल से एक बार उन्होंने उसे भी छोड़ रक्खा था।

जब कभी वे इलाहाबाद आते, समय निकालकर एक बार मेरे घर पर

भोजन करने जरूर आते। उनके इलाहाबाद आने का समाचार पाकर मैं प्राय उनसे मिल आया करता था। उसी समय वे अपने आने का समय बता देते थे और मैं उनकी रुचि का सादा भोजन तैयार करा रखता था, भोजन में चने की दाल जरूर रखता। एक बार जब वे इलाहाबाद आये, मैं कही बाहर था। उनसे मिलने नही गया। पर वे तो अपने नियम को नही भूले। मेरी अनुपस्थिति में मेरे घर पर अचानक आये और उन्होने नौकर से कहा—"कुछ खाने को हो तो लाओ।" खाना तैयार नही था। सडक पर मक्के के भुट्टे बिक रहे थे। चार भुट्टे मगवाये और भुनवाकर खाकर तब गये। इलाहाबाद से उनके चले जाने के बाद मैं आया तो यह किस्सा सुना। दूसरी बार जब मुलाकात हुई तो तब मिलते ही उन्होने कहा—"तुम्हारी गैरहाजिरी में मैं तुम्हारे घर हो आया हू और भुट्टे खा आया हू।" उनका अकृत्रिम स्नेह, सरलता और सादगी देखकर मैं तो अवाक् रह गया। धनी होने का अभिमान तो उनको छू ही नही गया था।

कुछ दिनो तक उनके साथ रहने का अतिम मौका मुझे भुवाली में मिला था। मैं नैनीताल गया था, वहा सुना कि सेठजी भुवाली मे ठहरे हुए हैं। मैं एक दिन उनसे मिलने गया। वहा डाक्टर कैलासनाथ काटजू भी उनके पास ठहरे हुए थे। खाना खाते वक्त सेठजी ने कहा—"हमारी तुम्हारी मित्रता के पच्चीस वर्ष पूरे होगये।"

मैंने कहा—"आइए, रजत-जयती मनाए।"

उन्होने कहा—"चलो, पहाड की पैदल सैर करें।"

अगले दिन बड़े सवेरे सेठजी, मैं, डाक्टर काटजू, श्रीमती जानकीदेवी और सेठजी की एक कन्या—याद नही मदालसा थी या ओम्—और डाक्टर सुशीला नैय्यर पैदल सैर को निकले। बिस्तरे और खाने-पीने का कुछ सामान कुलियो को सौंपकर और उनके साथ डाक्टर काटजू का एक नौकर करके हम लोग रामनगर की राह लगे। यह तय हुआ था कि हम लोग, जबतक किसी खास कारण से विवश न हो, तबतक पैदल ही चलेंगे।

मुझे चलने का अभ्यास कम था और पहाडी रास्ते का तो बिल्कुल ही

नहीं था। इससे मैं थक जाता था, पर थोडा सुस्ता लेने पर फिर ताजा हो जाता था। हम लोग तीन टोलियो में बट गये थे। मेरा और डाक्टर काटजू का साथ था। डाक्टर काटजू बहुत तेज चलते है। मेरी थकावट का एक कारण यह भी था। सेठजी धीरे-धीरे चलते थे, पर बैठते कही नही थे। हम कही बैठकर दम लेने लगते, इतने में वे आ खडे होते और कहते—"पहाडी रास्ते पर चलने का अभ्यास बढाइए।"

स्त्रिया ज्यादा थक जाती थी, पर बोलती नहीं थी। हम लोग दिनभर चलते, शाम को कभी-कभी दस बजे रात तक किसी डाकबगले में पहुचते। वहा कुली और डाक्टर काटजू का नौकर पहले ही पहुचकर खाने-पीने और सोने की व्यवस्था कर रखते थे।

तीसरे दिन की मजिल जरा कडी थी। मकतेसर तक पहुचते-पहुचते तो मैं सचमुच अधमरा होगया था। डाकखाने के पक्के बरामदे में मैं तो जाकर फर्श पर बेहोश पड गया। लेटते-लेटते मैंने डाक्टर काटजू से कहा कि वे पडाव पर चले जाय, मै कल आऊगा। पर डाक्टर काटजू मुझे राह में अकेला छोडकर जाना नही चाहते थे। वे डाकखाने में बैठकर चिट्ठिया लिखने लगे।

इतने में सेठजी भी आगये। तबतक मैं कुछ स्वस्थ हो चुका था। हम लोग मकतेसर का हस्पताल देखने गये। वहा एक डाक्टर ने हमें चाय का निमत्रण दिया। उस दिन की वह चाय मुझे कितनी प्यारी लगी, उसकी कोई तुलना ही नही की जा सकती। चाय पीकर हम लोग अगले पडाव पर गये और रात मे लगभग दस बजे पहुचे। रास्ता जगल के बीच से होकर गया था और रात भी अधेरी थी। इससे भटक जाने की सभावना हरएक के सिर पर थी। इसका इलाज सेठजी के सुझाने से हम लोग यह करते थे कि पिछडे हुए साथी को रास्ता बताने के लिए पूरे जोर से 'ओम्' की आवाज लगाते थे। उसे सुनकर पिछडे हुए साथी को भी पूरे जोर से 'ओम्' का उच्चारण करके अपना पता देना पडता था।

सेठजी के पहुच जाने पर तो पार्टी का हरएक सदस्य थकान भूल

जाता था। सेठजी हरएक के स्वभाव से परिचित-जैसे थे, यह उनमें विलक्षण गुण था। हरएक से उसीकी रुचि से मिलती हुई बात करके वे उसका मन-मोह लेते थे।

हम लोगो ने छ-सात दिनो में सत्तासी मील का सफर हँसते-बोलते बडी आसानी से पूरा कर लिया। रास्ते में एकबार मुझे थका देखकर श्रीमती जानकीदेवीजी ने कहा—"पडितजी बापडा तो थक गेया।" सेठजी की दृष्टि मुझपर गई। हँसकर कहने लगे—"थक गये हो तो घोडा ले लो।" मैंने कहा—"स्त्रियां पैदल चलें और मैं पुरुष होकर घोडे पर चलू!" पर दुख-कातर सेठजी ने कहा—"उनके लिए भी घोडे ले लो।" कई घोडे ले लिये गए और थके हुए लोग उनपर सवार होकर साथ चले। पडाव पर पहुच-कर घोडे छोड दि ेगए। पर उस दिन के बाद तो मैं श्रीमती जानकीदेवी का शिकार बन गया। मैं थका भी न रहू तो भी वे प्राय कह दिया करती थी—"पडितजी बापडा तो थक गेया।" और सेठजी उसी वक्त घोड़े मगा देते थे। मैं समझ जाता था कि श्रीमतीजी थक गई है और चुपचाप अपने को थका हुआ स्वीकार कर लेता था। जब-जब वे मेरी थकावट की घोषणा करती थी, तब-तब मुझे बडा आनद आता था।

जमनालालजी का चरित्र बहुत शुद्ध था। यद्यपि वे शरीर से जैसे सुन्दर थे, उनकी धर्मपत्नी वैसी सुन्दर नही थी, पर दोनो के हृदय एक से बढकर एक सुन्दर थे, इससे दोनो में दाम्पत्य का आदर्श प्रेम था। सादा जीवन जैसा सेठजी को प्रिय था, वैसा ही जानकीदेवीजी को भी। एक बार वे अपनी एक कन्या के साथ बिहार का दौरा करके प्रयाग आई और मेरे पास ठहरी। मैंने उनको जीमने के लिए कहा तो वे अपना झोला लेकर रसोईघर में गई और उसमें से दो मोटी-मोटी रोटिया निकालकर कहने लगी—मेरे पास तो मेरा खाना तैयार है। मैंने कहा—'मेरे यहा तो आपको मेरा ही खाना खाना होगा।" उन्होने कहा—"रोटिया मैं खराब नहीं करूगी।" फिर इस शर्त पर वे मेरे घर की ताजी रोटिया खाने को राजी हुईं कि उनकी रोटिया मेरे नौकर खा लें।

बिहार के दौरे में वे खाने-पीने में अधिक समय नही देती थी। कई वार के लिए एक साथ ही रोटियां पकाकर झोले में रख लेती थी और समय पर अचार, गुड या आसानी से बन सकी तो तरकारी बनाकर, उससे खा लिया करती थी। सेठजी उस समय जेल में थे। जानकीदेवीजी इस तरह तपस्या करती हुई उनके मार्ग का अनुसरण कर रही थी।

मेरे साथ जमनालालजी का अकृत्रिम प्रेम-भाव, आदि से अन्त तक एकरस रहा। एक वार मई १९२६ में वम्बई में हम लोग मिले थे। तब किसी बात में कुछ गलतफहमी होगई थी। प्रयाग आकर मैंने जमना-लालजी को एक पत्र में अपने मन का संदेह लिख भेजा। उसके उत्तर में उन्होंने लिखा—

"आपका मेरा निर्मल प्रेम-सम्बन्ध जैसा रहता आया है, वैसा भविष्य में रहना बहुत संभव है, क्योंकि हम दोनों का परस्पर का संबंध कोई व्यक्ति-गत लाभ को लेकर नही हुआ है, यह हम दोनों बराबर जानते हैं, फिर गैर-समझ कैसे हो सकती है। आपके मन में कुछ विचार आया हो तो बिल्कुल निकाल देवें। मन को आनन्द और उत्साह से भरा रखें। कवि होने का यही एक गुण और धर्म है कि सदा आनन्द में मस्त रहें, नही तो कवि होने से आत्मा को क्या लाभ?"

एक वार की घटना तो बहुत ही मनोरंजक है। बम्बई के एक युवक सेठ, जो मेरे मित्र हैं, एक वार अपनी स्त्री का इलाज कराने बनारस आये। मैं प्रयाग से उनसे मिलने गया और पांच-सात दिन उनके पास ठहरा रहा। अन्तिम दिन मैं विदा होने लगा तो उन्होंने पूछा—"आजकल क्या चिन्ता चल रही है।" मैंने कहा—"एक प्रेस खोलने की चिन्ता में हूं, पर प्रेस में सब रुपये एक साथ लगाने पडते हैं, जिनका संग्रह होना कठिन है। उस समय मेरे मन में जरा-सी भी यह वासना नहीं थी कि मेरी आवश्यकता सुनकर वे मुझे कुछ सहायता देने का विचार करें, पर हुआ ऐसा ही। बनारस से लौटकर मैं किसी काम से कलकत्ते चला गया। वहां हिन्दी-मन्दिर से एक पत्र पहुंचा, जिसके साथ मेरे उक्त मित्र का भी पत्र था। पत्र के साथ चार हजार

रुपये का इलाहाबाद बैंक के नाम एक ड्राफ्ट था और पत्र में लिखा था कि प्रेस के लिए एक मशीन इन रुपयों से खरीद ली जाय और सौ रुपये महीने के हिसाब से रुपया पटा दिया जाय। रुपये का व्याज नहीं लिया जायगा। मित्र ने सौ रुपये महीने की शर्त इसलिए लगाई थी कि जिसमे शर्त को पूरा करने के लिए मैं अधिक तन्मयता से काम करूं और प्रेस चल निकले। यह बात भी पत्र में लिखी थी।

प्रेस खोल लेने के बाद मैं प्रतिमास सौ रुपये नियम से भेजने लगा और पैंतीस महीने तक लगातार भेजता रहा। प्रेस की आर्थिक दशा अच्छी हो चली थी और मैं सोचने लगा था कि पांच सौ रुपये और देने हैं, सो किसी दिन एक साथ ही भेज दूंगा। इस सोच-विचार में दो-ढाई महीने बीत गये। इस बीच मैं वर्धा गया हुआ था और सेठजी के पास ठहरा हुआ था। शाम को एक सज्जन कार में बैठकर सेठजी से मिलने आये। सेठजी गद्दी में थे और मैं बगल के कमरे में था। उक्त सज्जन जब मिलकर जाने लगे तो मैंने उनकी झलक देखी। मुझे भ्रम हुआ कि वह मेरे बबईवाले मित्र थे।

इसके बाद ही सेठजी उस कमरे में आये, जिसमें मैं था। मैंने पूछा—"आपसे मिलने कौन आया था?" सेठजी ने बताया और फिर पूछा—"क्या इनको जानते हो?"

मैंने 'जानता हूं' कहकर यह बात भी बताई कि किस तरह पोद्दारजी ने प्रेस के लिए रुपये भेजे थे और शर्त का पालन मैंने कहांतक किया था।

सेठजी सुनकर चुप रहे। हम लोग रसोई-घर की तरफ गये। वहां बरामदे में उनके मुनीमजी मिले। सेठजी ने उनसे कहा—"पांचसौ रुपये रामनरेशजी के नाम लिखकर अभी उन मित्र को भिजवा दो, वह रात में बम्बई चले जायगे। रामनरेशजी इलाहाबाद जाकर रुपये भेज देंगे।"

मुनीमजी चले गये। फिर सेठजी मेरी ओर देखकर यह कहते हुए कि 'छोटे वादे को भी दृढ़ता के साथ पूरा करना चाहिए' रसोई-घर में गये।

सेठजी ने एक सच्चे मित्र का काम किया। मुझसे जो नैतिक भूल हो रही थी, उसे उन्होंने सम्हाल लिया।

: ३७ :

राम-अवतार

रहाना तैयब

पू० श्री जमनालालभाई से मैं सबसे पहले एक मित्र के रूप मे बहुत साल पहले बडौदा में मिली थी। वह और श्री जानकी माताजी मुकर्रम बाबाजान और अम्माजान से मिलने आये थे। उसी वक्त मुझपर यह असर हुआ कि जमनालालभाई और माताजी मेरे लिए जरा भी अपरिचित नही हैं; बल्कि पुराने खान्दानी दोस्त है। यही उनके सादे, सच्चे और प्रेमल स्वभाव का महिमा थी। उस वक्त उन्होने महिला-आश्रम की बात की और कहा, "एक बार हम तुम्हे जरूर वर्धा ले जायगे। वही बिठा देंगे।"

बरस बीत गये। कभी-कभी जुहू पर, या मुसाफिरी करते, या किसी खास मौके पर उनके दर्शन हो जाते थे। जाती परिचय, मगर सन् '४० मे पूना में हुआ, जब वह और मदालसाबहन बीमार होकर डा मेहता के 'नेचर क्योर क्लिनिक' में इलाज के लिए रहे थे। उस वक्त उनके गाढ भजन-प्रेम का, उनकी गुप्त, मगर गहरी आध्यात्मिक रुचि का मुझे बडा सुन्दर अनुभव हुआ। मेरी कितनी खुशकिस्मती थी कि उनको भजन रोज सुनाने का शरफ (इज्जत) मुझे प्राप्त हुआ। उस वक्त अम्माजान बहुत बीमार रहती थी। पू० बाबाजान तो सन् '३६ में ही जा चुके थे। जमनालालभाई ने मेरी भावी तनहाई का खयालकर मुझको अपना लिया। वे जानते थे कि मेरा कुटुम्ब बहुत प्रेमल होते हुए भी मुझको सपूर्ण रूप से सतुष्ट नही कर सकेगा, क्योंकि मुझे अपनी स्वतत्र जिंदगी बनाने की ख्वाहिश थी। उन्होंने मुझसे कहा—(मुझे उनके शब्द बराबर याद है) "रेहानाबहन, तुम्हारे बाबाजान और अम्माजान के लिए हमको हमेशा बडा प्रेम, बडा आदर रहा है। बाबा-जान की व अम्माजान की हम कोई सेवा नही कर सके। तुम्हारे लिए जो

कुछ भी करें, अम्माजान व बाबाजान की सेवा ही समझकर करेंगे। तुम बिल्कुल डरो नही। कोई चिंता न करो। तुम मेरी छोटी बहन हो, मुझको अपना बडा भाई मान लो, हम तुम्हारा सब देख लेंगे।"

मेरे बारे में उनका हरएक कौल अल्लाह ने पूरा किया। वे मुझे वर्धा खीच ही लाये। मेरेलिए हजार तकलीफे गवारा करके मुझको यहा बसा देने में हर तरह से मदद की। पू० काकासाहब, जमनालालभाई और उनका परिवार वर्धा में मेरा बना-बनाया कुटुम्ब बन गया।

जब पहली बार वह मुझको वर्धा लाये तो मुझे अपने यहा ही रक्खा। मेरी तबीयत खराब थी। मेरे साथ एक बूढी बाई (नौकरानी) भी थी, जो मेरी खबर रखती थी। जमनालालभाई ने मुझसे और उससे कुछ इस तरह का बर्ताव किया कि बडौदा मे उनके देहत्याग का समाचार सुना तो वह बिलख-बिलखकर रोई, गोया उसके अपने खान्दान के बुजुर्ग आखो से अदृश्य हुए है। उन्होने उसे कभी महसूस न होने दिया कि वह नौकरानी है और रात-दिन मेरी ऐसी खबर रखते रहे कि अभी उसने मुझसे रोकर कहा, "साहब, आपके तो सहारा गये है, जो पिता-जैसे ही थे।" उनके घर मे रहकर मेरी बूढी सूरज और मै इस बात से बेहद प्रभावित हुए कि पू० जमनालालभाई घर के मालिक होते हुए भी नौकरो-चाकरो पर बराबर अपनी धाक जमाते हुए ससार के, व्यवहार के, सब नियम और शिष्टाचार सपूर्णतया पालते और पलवाते हुए अमीरो और गरीबो में फर्क नही करते थे।

एक सुबह जमनालालभाई सरोजबहन को व मुझे श्री लक्ष्मीनारायण का मन्दिर दिखाने ले गये। उनकी ख्वाहिश थी कि मै बहुत बार जब जी चाहे तब वहा बैठकर भजन गाऊ। वह जगह सचमुच है भी ऐसी ही। ज्योही हम मोटर से उतरे, हमारे कानो में तम्बूरे के तारो की सुरीली तान पडी—एक बहुत ही मधुर आसावरी राग की तान। अन्दर गये तो देखा कि एक वृद्ध सूरदास भक्त आवेश में आकर श्री लक्ष्मीनारायण की मूर्त्ति के सामने भजन गा रहे है। हम (सरोजबहन व मै) उनके पास बैठ गई। उनके भावावेश में हम भी गर्क हो गईं। जमनालालभाई कुछ काम पूरा करके वहा आगये।

सूरदासजी का भजन खत्म हुआ तो जमनालालभाई ने कुछ अजब आदर और वात्सल्य-भाव से पूछा—"क्योजी, कैसा चलता है, सब ठीक तो है न ? कोई तकलीफ तो नही है न ?" सूरदासजी ने उल्लास से जवाब दिया, "आपकी कृपा से बडा आनन्द है ! सुबह उठते है, कोई हमें अखबार सुना देता है, यहा आकर भगवान् के सामने भजन गाते है । हमारी सब आशाए आपकी दया से पूर्ण होती हैं। बडा ही आनन्द है ।" जमनालालभाई बोले "हां-हा, अच्छा—अच्छा"। और हमें वहा से ले चले। मगर उस घटना का असर हमारे दिल में गहरा जम गया। जमनालालभाई देश के लिए जो अनेक महान् कार्य करते रहे, वे तो जग-प्रसिद्ध हैं। मगर इन अधे सूरदासजी और शायद उनके जैसे हजारो बेवस और अनाथ गरीबो की अधेरी जिंदगी मे उनके प्रेम, सहानुभूति और आकिल (दया) ने कितनी रोशनी फैलाई होगी, वह कौन जान सकता है, सिवा अल्लाह के !

एक और भी इस किस्म की घटना यहा देती हू ।

आश्रम का तागेवाला रामाधीन एक रोज मुझसे अपनी रामकहानी कहने लगा। उसने कहा कि किस तरह घोडा-गाडी का त्याग करके मोटर इख्तियार कर लेने पर जमनालालभाई ने उसे इस तागे के काम पर लगा दिया। फिर जोश में आकर बोला, "बहनजी ! सेठजी हमारे लिए तो भगवान् है। हमने भगवान् को कहा देखा है ? हमारे लिए तो बस, यही भगवान है, यही मालिक है। हम और किसीको नही जानते।" फिर आखो में आसू लाकर गद्गद् हो कहने लगा—'सेठजी जेल जा रहे थे। स्टेशन पर बडे-बडे लोगो की भीड जमा थी। हम दूर पीछे खडे देख रहे थे । उस गडबड की घडी मे भी सेठजी ने हमारी तरफ मुस्कराकर हमें आश्वासन दिया। इतने बडे आदमी, जाने की घडी और इतनी गडबड, मगर उस वक्त भी हमारे सरकार हमको नही भूले ! बहनजी ! हमारे लिए तो वे राम-अवतार ही है, और कोई माने या न माने।"

जिस बूढे ने उमरभर उनकी चाकरी की, उसकी दिल की गहराई से दी हुई इस सनद के सामने कौन-सी सनद या खिताब ठहर सकती है ?

: ३८ :

साधन और साधनावान

वल्लभस्वामी

जमनालालजी और मेरा प्रथम सबध, जब हम एक-दूसरे को नही पह-चानते थे, तभी आया था। बात ऐसी है कि जब मै शायद छ साल का बच्चा था तब सूरत से करीब दस मील दूरी के डुम्मस गाव की पाठशाला मे पढता था। डुम्मस से करीब दो मील की दूरी पर समुद्र-किनारे का भीमपोर नामक गाव हवा खाने का स्थान माना जाता है और अक्सर बबई के कई श्रीमान लोग गर्मियो में वहा आते रहते है। जमनालालजी भी वहा आते थे। एक दिन उनकी मोटर हमारे स्कूल के पास ठहरी। वे उतरकर हेडमास्टर के पास गये और उन्होने पाठशाला के सभी बच्चो को अपने यहा भोजन.का निमत्रण दिया। बच्चो में मै भी था। जब कई सालो के बाद मै वर्धा-आश्रम में विनोबाजी के साथ पहुचा तो उन्होने मेरी जानकारी प्राप्त करने के बाद विनोबाजी से कहा कि वल्लभ का और मेरा सबध आपसे भी पुराना है और वल्लभ को मैने आपको दिया है।

... ...

१९२० में नागपुर-काग्रेस के बाद वर्धा में आश्रम की स्थापना हुई। लेकिन जमनालालजी का कार्य मुख्यतया राजनैतिक क्षेत्र में रहा, विनोबाजी का मुख्यतया आश्रम का और ग्रामसेवा का। इसलिए हम बच्चो से जमनालालजी का बहुत कम सबध आता। जब कभी वे आश्रम मे आते हमारे साथ अनाज चुगने आदि कामो में शरीक होते और अक्सर पीसने को भी बैठते। विनोबाजी से धर्म-कर्म चर्चा तो अवश्य ही होती। १९२८-२९ के बारडोली-सत्याग्रह के समय वे कुछ दिनो के लिए अपने साथ मुझे ले गये। छोटी-मोटी बातो मे भी वे मुझे सिखलाते थे। एक स्थान पर हम गये।

वहा कोई परिषद थी। वहा जाने पर मैंने कपडे धोने के लिए वहा के लोगो से साबुन मागा, क्योकि आश्रम में हमें आदत थी कि अपने पास हम कोई सग्रह नही रखते थे। जब कोई जरूरत होती तो आश्रम के व्यवस्थापक से माग लेते थे। जमनालालजी ने मुझे बाद मे समझाया कि हमको साबुन अपने पास रखना चाहिए। जहा जाते है, वहा से नही मागना चाहिए।

१९३९ से वर्धा से आठेक मील की दूरी के सुरगाव मे ग्रामसेवा के लिए मुझे विनोबाजी ने भेजा था। मेरेलिए ही वे एक तरह से एक बार सुरगाव आये। उनकी इच्छा उस दिन सुरगाव में रहने की थी, लेकिन मुझे संकोच हो रहा था कि जमनालालजी को वहा कैसे ठहरावे, उनके अनुकूल उचित व्यवस्था कैसे हो सकेगी ? फिर भी वे आग्रहपूर्वक ठहर गये और ठहरने के बाद सुरगाव में सबसे बूढा आदमी कौन है, इसकी जानकारी प्राप्त करने वे उनके पास पहुचे। उनसे बाते की और पूछा, उन्हे कुछ जरूरत है क्या ? वे वयोवृद्ध आदमी भी एक तरह से स्वसतुष्ट थे। इसलिए उन्होने कुछ नही मागा। जमनालालजी-सरीखे श्रीमान् मनुष्य नम्रता से अपने यहा आये, इसका उन्हें बहुत ही आनन्द था। आखिर में जमनालालजी ने ही मुझसे कहा कि इनके लिए दूध और कुछ मीठे की व्यवस्था कर दी जाय और उसका खर्च मेरे से मांग लिया जाय। दूसरी बार वे श्री घनश्यामदास बिडला के पुत्र को साथ लेकर आये और परिचय करवाते हुए उन्होने कहा कि इनकी मालिकी की पाच हजार मोटरें हैं। इन्हें इसलिए यहा लाया हू कि गरीबो के पैसे से यह सारा वैभव इन्हें प्राप्त हुआ है तो कभी-न-कभी गरीबो की सेवा मे उसमें से लगावें, ऐसी प्रेरणा देहात में आकर और गरीबो की दशा देखकर इनको हो। इस तरह जब कभी वे आते, अक्सर किसी-न-किसी श्रीमान् को भी अपने साथ ले आते।

जब आते, अपने खाने का ले आते, क्योकि वह किसी भी तरह से गाव-वालो पर बोझ-रूप होना नही चाहते थे। जमनालालजी उस सारे क्षेत्र में लोक-सेवा के कारण सुपरिचित थे। गाव-गाव के प्रमुख लोगो से व्यापार या अन्य निमित्त से उनकी पेढी का सबध आता था और कोई भी उनका

आतिथ्य करने में अपनेको गौरवान्वित मानता। लेकिन जमनालालजी हमेशा यह वृत्ति रखते कि देहात में मैं जाता हू तो वहा के लोगो की सेवा के लिए जाता हू, उनका आतिथ्य लेने के लिए नही। एक बार उनके साथ के लोग खाने का तो लाये थे, लेकिन पत्तले या केले के पत्ते नही लाये थे, क्योकि उन्होंने सोचा था कि सुरगाव में केले के काफी बगीचे है, वही से पत्ता माग लेंगे। भोजन की तैयारी करते हुए साथ के लोगो ने गाव-वालो से कहा कि केले के पत्ते ला दीजिए। यह सुनते ही जमनालालजी को बहुत दुःख हुआ और कुछ झुझलाकर उन्होने साथ के लोगो मे कहा कि अपने साथ में पत्ते क्यो नही लाये?

• • • • •

सुरगाव का एक गरीब मुसलमान किसान था। उसका खेत नीलाम में जमनालालजी के पेढी के किसी आदमी ने लिया था। जब उन्हे यह मालूम हुआ तो उन्होने उस किसान से कहा कि जितनी रकम मे वह खेत नीलाम मे खरीदा गया है, उतनी ही रकम मे वह खेत तुझे वापस मिल जायगा। कुछ दिनो के बाद जब मैं वर्धा गया तो उन्होने याद रखकर मुझसे कहा कि उस दिन उस किसान से मैंने जो कहा था उसके अनुसार उस खेत के बारे मे मैंने बात कर ली है और उस किसान को खबर दे दी जाय कि वह आकर अपने खेत को छुडा ले।

• • • • •

श्रीमान् होते हुए भी जमनालालजी को श्रीमती का कोई स्पर्श नही था। उल्टा हमेशा वे श्रीमती को दूसरो की, विशेषतया गरीबो की, सेवा में उपयोग मे लाने की चिंता करते थे। किसीने कहा है कि कुछ दाता ऐसे होते है, जो अपने पास कोई मागने आने पर मुश्किल से देते है। कुछ ऐसे होते है, जो मागनेवाले के आने पर खुशी से देते है, लेकिन कुछ दाता ऐसे होते है जो अपने दान के लिए उचित पात्रो को ढूढते रहते है, और उन्हें स्वय आगे होकर दान देते है। जमनालालजी इस विरल श्रेणी के दाता थे और दान देने के बाद उस चीज पर किसी भी तरह से अपना अधिकार या अकुश नही

मानते थे। पवनार मे जो बगला उन्होने बनवाया और बाद में जिसमें विनोबाजी रहने लगे और अब 'परमधाम' के नाम से जो प्रसिद्ध है, उसके बारे मे एक घटना उनके इस स्वभाव को अच्छी तरह प्रकट करती है। शायद १९४०-४१ की बात है। वैयक्तिक सत्याग्रह मे विनोबाजी जेल गये हुए थे। जमनालालजी जेल मे छूटे थे और शहर से दूर कही कुछ दिन रहना चाहते थे। स्वाभाविक रूप में उनकी नजर पवनार के बगले पर गई। वहापर आश्रम के एक-दो लडके रहते थे, जो उसकी देखभाल करते थे। उसमें से एक तेज मिजाज का था। जमनालालजी उस बगले में आकर रहना चाहते थे, इसलिए उससे पूछा गया। उसने कहा कि बगले में तो आकर वह रह सकते है, लेकिन जो स्नान-घर है उसका उपयोग नही कर सकेंगे, क्योकि स्नानघर के लिए जिस कमरे में से जाना होता था, उस कमरे में अनाज पीसने की चक्की रखी हुई थी। जमनालालजी के अलावा उस कमरे से नौकर आदि भी गुजरते और वह कमरा खुला रहता। कुत्ते आकर चक्की को चाटते, इसलिए उसने कहा कि नया स्नान-घर पहले अलग मे बनवा लें और फिर बगले में आकर रह सकते हैं। मुझे कई दिनो के बाद यह किस्सा मालूम हुआ। मालूम होते ही मैं जमनालालजी के पास पहुचा और उनसे कहा कि आप उस बगले में तुरत आ सकते है और नहाने के कमरे का भी उपयोग कर सकते हैं। चक्किया दूसरी किसी जगह रखेंगे। लडके ने जो कुछ कहा है, उसपर कोई ध्यान न दें। जमनालालजी ने मेरी बात सुन ली, लेकिन उस लडके के बारे मे कोई शिकायत नही की। मेरे आग्रह के बावजूद वे दूसरा स्नान-घर बनवाकर ही उस बगले में रहने के लिए गए। दूसरा कोई दाता होता तो कम-से-कम वह उस लडके की शिकायत करता, उसके मन में कुछ दुःख होता, लेकिन जमनालालजी के मन मे या चेहरे पर शिकायत या दुख का कोई भाव मैंने नही देखा। शायद एक प्रकार का उन्हें मजा ही आया होगा कि ऐसे भी लडके है, जो मेरी भी परवा नही करते हैं।

जमनालालजी के और भी कुछ सस्मरण दिये जा सकते है, लेकिन कुछ चुने हुए प्रसग मैंने इसलिए दिए है कि वे उनके स्वभाव को विशेष रूपसे प्रकट

करते है। जमनालालजी की याद के साथ ही "शुचीनाम् श्रीमताम् गेहे योग-भ्रष्ट अभिजायते"—(अर्थात् साधनवान श्रीमानो के यहा योग-भ्रष्ट जन्म लेते है)—इस गीता वाक्य का स्मरण होता है। जमनालालजी साधनवान तो थे ही, लेकिन साधनो के साथ ही साधनावान भी थे। बचपन से आखिर तक इनके जीवन में यह साधना दीख पडती है। स्कूली शिक्षा उन्हें बहुत कम मिली थी, लेकिन गुरुजनो की सेवा, वृद्धो की सेवा, सतो की सेवा और सहकारियो की सेवा से उन्होने अत्युत्तम शिक्षा पाई थी और साधना को उत्तरोत्तर बढाते हुए ही वे देह छोड गये।

●

मेरे सामने मारवाडी जाति में धन का उपयोग लोककल्याण के लिए करनेवाले, अपनी सपत्ति के मालिक नही, ट्रस्टी बनकर देशहित के लिए उसे लुटानेवाले त्याग, सेवा और तप से परिपूर्ण तीन व्यक्ति रहे है—सेठ जमनालालजी, सेठ जुगलकिशोरजी बिडला और सेठ रामगोपालजी मोहता।

भाई जमनालालजी का रायबहादुरी की पदवी को ठुकराना, महलो को छोडकर कुटियो में रहना, देशहित के लिए बडी-से-बडी कुर्बानी करने की भावना ही नही रखना, बल्कि उसे चरितार्थ करना, जेलो में अनेक सकट उठाना, असहयोग-आन्दोलन की समरभेरी बजाना, सविनय आज्ञा-भग आन्दोलन मे अग्रभाग लेना, नागपुर में झडा-सत्याग्रह करना, जयपुर में सत्याग्रह चलाना और अन्त मे गोपुरी में रहकर गोमाता की सेवा करने ने उन्हे अमर बना दिया है।

उनकी सादगी, मिलनसारी, पारिवारिक कठिनाइया सुलझाने की शक्ति, सबके प्रति आत्मीयता, अपने चुम्बक के समान आकर्षण से नवयुवक-युवतियो को सामाजिक क्राति के पथिक बनाने की शक्ति ने उन्हे सबके आदर का पात्र बना दिया था। मेरे सामने उन्होने कई देवियो का पर्दा छुडवाया और उन्हे खादीधारिणी बना दिया।

यद्यपि मातृभूमि का वह जगमगाता लाल आज हमारे बीच में नही है, तथापि उनकी छोडी हुई कृतिया हमारे सामने है। —चादकरण शारदा

: ३९ :

मनुष्यता का एक दुर्लभ 'टाइप'

रामनाथ 'सुमन'

जमनालालजी बहुत दूर होकर भी मेरे बहुत नजदीक थे। बहुत कम बार हम मिले है, बहुत कम बार पत्र-व्यवहार हुआ है, फिर भी बडी ही निकटता हम दोनो के बीच सदा रही। पहली बार जब मै उनसे मिला, तब मैंने स्पष्ट बातें की। दूसरी बार मैने आलोचना की। तीसरी बार उनपर अपनी झुझलाहट और खीझ व्यक्त की और चौथी बार मैंने कहा—आप 'होपलेस' है। और वह थे कि देखते रहे, मुस्कराते रहे, शायद मुझे अन्दर-अन्दर तौलते रहे। फिर बाद में खूब खुलकर बातें हुई। मुझे उन्होने अपनी बनाई हुई एक सस्था का भार लेने को कहा। मैंने उसमें काम करनेवाले तीन आदमियो की कसकर टीका की और कह दिया कि इन लोगो पर मुझे भरोसा नही है और मैं इनके साथ काम न कर सकूगा। क्षणभर को वह विरक्त हुए और बोले—"आलोचना करने की तुम्हारी आदत है, पर अमुक को मैं कैसे छोड सकता हू ? वह बहुत पुराने कार्यकर्त्ता है।" मैंने कहा—"मैं समझता था, आप आदमियो को पहचानते है, पर अब मुझे अपनी राय बदलनी पडेगी। शीघ्र ही आप जान जाय कि कौन कितने पानी में है।"

मैं चला आया, पर छ महीने के अन्दर ही जब वह मिले तो बोले—"तुमने मुझसे ठीक कहा था। क्या अब तुम मेरे साथ रह सकते हो ?"

मै उनके साथ रहना तो चाहता था, पर रह न सका। कुछ घरेलू कठिनाइयां थी। पर तबसे वह मेरे बहुत निकट आगये। कई अवसरों पर बिना कुछ कहे, केवल मालूम होने पर उन्होने मेरी सहायता की। दान के रूप में मैंने कभी उनकी कोई सहायता स्वीकार न की। इस सम्बन्ध में मेरा अहकार सदा बाधक रहा, पर बाधकता उलटे मुझे उनके निकट खीच लाई। एक बार

: ४० :

अनेक गुणों से विभूषित

प्रो० सत्यनारायण

"मै तो सिर्फ मत्र दिया करता था, लेकिन वे उसको रूप दिया करते थे। मैंने स्वप्न में भी नही सोचा था कि मुझे यह दिन देखने को मिलेगा। उन्होंने मुझसे वादा किया था कि मेरे बाद, मेरे सभी कार्यों को वे सभाल लेंगे। मगर वे मुझसे पहले ही चले गये।" ये वेदना-पूर्ण शब्द दिवगत जमनालालजी के सबध मे महात्माजी के थे। जमनालालजी के कई मित्र महात्माजी के निमत्रण पर हिन्दुस्तान के कोने-कोने से आये हुए थे। जमनालालजी के श्राद्ध का दिन था। आगत मित्रो मे श्री जमनालालजी के सहकर्मी, सहचर, सह-व्यापारी और सहयोगी थे। उनमें कई क ोडपति थे तो कई भिक्षुक भी। उनके हृदयो मे श्री जमनालालजी के वियोग की बडी पीडा थी। उनके स्मरण के प्रति बडी श्रद्धा थी। सभीके मन मे अपने किसी पारिवारिक सदस्य की मौत से होनेवाली वेदना-सी छाई हुई थी। उन सबकी तरफ से महात्माजी ने प्रतिनिधि-स्वरूप आसुओ से उनकी स्मृति पर जलाजलि छोडी।

साधारणतया यह सुनने में आता है कि महात्माजी को क्या है, उनको तो जमनालालजी-जैसे करोडपति की शक्ति और धन प्राप्त है। वे क्या नही कर सकते है? लोगो का यही खयाल रहता था कि जमनालालजी एक बडे सेठ है। कुशल व्यापारी है। खूब रुपया कमानेवाले है। महात्माजी को अपने पास रखे ए है और उन्हें भरपूर धन दिया करते है। बहुत कम लोग यह जानते थे कि जमनालालजी एक बहुत ही बडे सहृदयी, अपने साथियों के प्रेमी, कार्यनीतिज्ञ, सचालन-दक्ष, निपुण निर्माता तथा बडे ही तेज बुद्धि के व्यक्ति थे। बीस वर्ष के पहले हिन्दुस्तान के नक्शे पर वर्धा को कोई नहीं पहचान सकता था। वह एक मामूली कस्बा था। एक रेलवे जकशन और दो-चार

: ४० :

अनेक गुणों से विभूषित

मो० सत्यनारायण

"मैं तो सिर्फ मत्र दिया करता था, लेकिन वे उसको रूप दिया करते थे। मैंने स्वप्न में भी नही सोचा था कि मुझे यह दिन देखने को मिलेगा। उन्होने मुझसे वादा किया था कि मेरे बाद, मेरे सभी कार्यों को वे सभाल लेंगे। मगर वे मुझसे पहले ही चले गये।" ये वेदना-पूर्ण शब्द दिवगत जमनालालजी के सबध में महात्माजी के थे। जमनालालजी के कई मित्र महात्माजी के निमत्रण पर हिन्दुस्तान के कोने-कोने से आये हुए थे। जमनालालजी के श्राद्ध का दिन था। आगत मित्रो में श्री जमनालालजी के सहकर्मी, सहचर, सह-व्यापारी और सहयोगी थे। उनमे कई क रोडपति थे तो कई भिक्षुक भी। उनके हृदयो में श्री जमनालालजी के वियोग की बडी पीडा थी। उनके स्मरण के प्रति बडी श्रद्धा थी। सभीके मन में अपने किसी पारिवारिक सदस्य की मौत से होनेवाली वेदना-सी छाई हुई थी। उन सबकी तरफ से महात्माजी ने प्रतिनिधि-स्वरूप आसुओ से उनकी स्मृति पर जलाजलि छोडी।

साधारणतया यह सुनने में आता है कि महात्माजी को क्या है, उनको तो जमनालालजी-जैसे करोडपति की शक्ति और धन प्राप्त है। वे क्या नही कर सकते है? लोगो का यही खयाल रहता था कि जमनालालजी एक बडे सेठ है। कुशल व्यापारी है। खूब रुपया कमानेवाले है। महात्माजी को अपने पास रखे ए है और उन्हे भरपूर धन दिया करते है। बहुत कम लोग यह जानते थे कि जमनालालजी एक बहुत ही बड़े सहृदयी, अपने साथियो के प्रेमी, कार्यनीतिज्ञ, सचालन-दक्ष, निपुण निर्माता तथा बडे ही तेज बुद्धि के व्यक्ति थे। बीस वर्ष के पहले हिन्दुस्तान के नक्शे पर वर्धा को कोई नही पहचान सकता था। वह एक मामूली कस्बा था। एक रेलवे जंक्शन और दो-चार

कपास के कारखानों को छोडकर कोई विशेष बात वर्धा में नही थी। आज वह सारे भारत का क्या, सारे संसार का केन्द्र बन गया है। वर्धा को इतना महत्व होने और इतना महत्व मिलने का एकमात्र कारण स्व जमनालालजी बजाज ही थे। अगर महात्मा गाधी वर्धा के प्रकाशमान सूर्य थे तो जमनालालजी उस सूर्य के दर्शनार्थ आनेवाले हजारो लोगो को जगह देनेवाले आधार-भूमि थे।

सन् १९२३ की बात है। कोकनाडा में काग्रेस का अधिवेशन हो रहा था। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के एक विशेष अधिवेशन की भी तैयारियां थीं। बाबू राजेन्द्रप्रसादजी उस अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये थे। मगर अस्वस्थता के कारण वे कोकनाडा नही पहुच पाये। श्री जमनालालजी ने इस कार्य को संभाला। पहली बार उनके मैंने दर्शन वहीपर किये। चूंकि मैं स्वागत-समिति का एक मंत्री था, इसलिए मुझे बार-बार उनसे मिलने और उनके साथ अधिक समय व्यतीत करने का सौभाग्य मिला। उनके सौजन्य की बात मैं पहले ही सुन चुका था, फिर भी उनके बहुत बडे धनी लखपती होने की बात मैं भूल नही सकता था। लेकिन एक-दो दिन की संगत में ही उनकी सहृदयता, व्यवहार की मधुरता, उदारता और बुद्धिमत्ता की मेरे ऊपर गहरी छाप पडी। उन्होने एक बहुत बडी कुटी अपने लिए ले रखी थी। उसमें रोज पन्द्रह-बीस मित्रों को खाने के लिए बुलाया करते थे। उनके साथ दस-पन्द्रह मित्र पहले ही से थे। वे यात्रा में रहते हुए भी अपने अतिथि-सत्कार और मित्र-प्रेम का परिचय बखूबी देते थे। उसके बाद भी गत [illegible] वर्षों में प्रत्येक काग्रेस में मैंने उनको इसी प्रकार मित्रो का सत्कार करते और अधिका-धिक मित्रो और सहयोगियो के बीच समय व्यतीत करते देखा। जिस स्थान पर जमनालालजी पहुच जाते थे, वह स्थान धर्मशाला हो जाता था। [illegible]-कोच लोग वहा पहुच जाते थे। काग्रेस वर्किंग कमेटी के एक प्रमुख एवं प्रति-ष्ठित सदस्य ने एक बार कहा कि हमारी वर्किंग कमेटी में [illegible] काफी करते हैं। कोई-कोई बहस में घंटों समय लेते हैं। लेकिन दो सदस्य ऐसे हैं, जो बहुत कम बोलते है। लेकिन जब बोलने लगते हैं तो [illegible]

बुद्धि की धारा बहा देते हैं। प्रश्न चाहे जितना जटिल हो, वह चाहे राजनैतिक हो या आर्थिक, अथवा साप्रदायिक, उसके हल की तरफ कमेटी की दृष्टि खीचते हैं। उनमें पहला नम्बर जमनालालजी बजाज का है।

अपनी बारह बरस की उम्र तक जमनालालजी ने मामूली मराठी पढी। २० वर्ष की उम्र में आनरेरी मजिस्ट्रेटी और २८ वरस की उम्र में रायबहादुर का खिताब पाया। २९ वर्ष की उम्र में महात्माजी की सुसगति प्राप्त की। तबसे लेकर भौतिक शरीर छोडने की अन्तिम घडी तक, जबकि उनकी उम्र ५३ वर्ष की थी, देश की उन्होने तन-मन-धन से सेवा की। इन २४ वर्षों में वे महात्माजी की छाया बनकर रहे और महात्माजी ने उन्हे पुत्रवत् देखा। जब जमनालालजी ने अपनेको महात्माजी की सेवा में अर्पित किया, उनकी चाह भी यही थी। वे बहुत बडे साधक थे। अपनी साधना में उन्होने उच्चकोटि का सयम, विवेक, योग्यता और मजगता दिखाई। उनकी साधना सफल भी हुई।

जीवन को श्रेष्ठतम और सफल बनाने के लिए जिन गुणो की जरूरत होती है, वे जमनालालजी मे भरपूर थे। वे एक महान् वीर पुरुष थे। मनुष्य-गत कमजोरियो से पग-पगपर लडकर उन्होने उन्हे जीता था। वे कर्मठ व्यक्ति थे, जीवन के प्रत्येक क्षण को उन्होने लाभदायी कार्य में लगाया। वे एक तपस्वी थे, उन्होने ईश्वर-चिन्तन, धर्म-चिन्तन और कार्य-चिन्तन, इन तीनो के सम्बन्ध मे अपनी तपस्या का फल देखा। वे बडे कार्य-कुशल थे। न अपने व्यवहार से वे किसीको निराश करते थे, न किसीके व्यवहार से निराश होकर परेशान होते थे। उन्होने जीवन में किसीको बडा समझकर अपनी आत्मा और स्वतंत्र विचारो को नही दबाया। वे एक निर्माता और सफल संचालक थे। उन्होने अपने पारिवारिक तथा अपने अन्तर्गत सभी सस्थाओ की रफ्तार को पग-पगपर नापा और उनके भविष्य को सुदृढ बनाया। वे एक बडे सेवक थे। सेवा को ही सबसे उत्तम धर्म समझकर तन-मन-धन से देश की सेवा की। वे एक मित्र थे। उन्होने अपने आश्रित व परि-चित सभी लोगो के साथ समान रूप से मित्रता निभाई। उनकी मित्रता में

न स्वार्थ रहता था, न बडप्पन की गन्ध। वे बडे खुश-दिल थे। गभीर-से-गभीर कार्य के बीच मे भी बच्चो और बडो के साथ हँसी-विनोद किया करते थे। वे बडे शक्तिशाली थे। किसी भी नए कार्य को शुरू करना और उसे निभाना उनके बाये हाथ का खेल था। वे बडे त्यागी थे। उन्होने अपनी सारी वैयक्तिक लालसाओ को एक-एक करके त्याग दिया। अपनी किसी शक्ति या सपत्ति को अपने स्वार्थ के काम मे नही आने दिया। वे बडे सहनशील थे। कभी भी उनके चेहरे पर क्रोध की रेखा नही देखी गई। वे बडे परि-श्रमी थे। सवेरे ४।। बजे से लेकर रात के नौ बजे तक काम मे लगे रहते।

उन्होंने अपने निर्णय में कभी ढिलाई, आलस्य, असावधानी और अपूर्णता नही रहने दी। वे जितने उदार थे, उतने ही किफायतशार। कागज के एक टुकडे का भी बरबाद जाना वे सह नहीं सकते थे, न एक पैसे का अपव्यय उनसे बर्दाश्त होता था। उनके पास से एक पैसा भी अपात्र के यहा नही गया। आदमी को पहचानने मे वे बेजोड थे। एक बार विश्वास कर लेने पर फिर कभी भी वे उसे नही कसते थे। अपनी हरएक आदत को उन्होने अनुशासन की कसौटी पर अच्छी तरह कसकर देखा। इसलिए उनकी सभी आदतें परिष्कृत हो उठी।

जैसा उनका सामाजिक जीवन था, वैसे ही उनका पारिवारिक जीवन भी बडा आनन्दमय था। उन्होने अपने परिवार के सभी लोगो को अपने आदर्श की कसौटी पर कस-कसकर उज्ज्वल बनाने की पूरी कोशिश की। अपने बच्चो के साथ इस तरह व्यवहार करते थे कि उनके पितृत्व का वजन महसूस ही न होता था। उन्होंने अपने जीवन में जितने धन का सग्रह किया, उससे ज्यादा परख-परखकर उत्तम कार्यकर्ताओ का सग्रह किया, और उन सबको अपने परिवार का अविभाज्य अग बना लिया। अपने साथियो के बच्चो के लिए भी वैसे ही 'काका' थे जैसे अपने बच्चो के लिए। उन्होने देश के काम में २५ लाख से ज्यादा रुपये दिये। उससे भी ज्यादा कीमती समय दिया। उससे भी ज्यादा मूल्यवान मन लगाया। इनका, पात्रता के खयाल से, आवश्यकता के खयाल से बडी, सावधानी के साथ, उन्होने बँटवारा किया था। स्वय बडे धनी होकर बडे साधक बने और एक नया मार्ग धनवानो के सामने रखा।

: ४१ :

आकर्षक व्यक्तित्व

अलगूराय शास्त्री

महाराणा प्रताप और भामाशाह के सम्बन्ध के इतिहास का स्मरण आता है, जब महात्मा गाधी के साथ स्व सेठ जमनालाल बजाज की मूर्ति मन के सामने आती है। मेरा सपर्क इस महापुरुष के साथ पहले-पहल उस समय हुआ, जब कोकनाडा (आन्ध्र) काग्रेस के अवसर पर मैं हिन्दी शॉर्ट हैण्ड रिपोर्टर के रूप में काग्रेस की स्वागतकारिणी की ओर से वहा बुलाया गया था और सेठ जमनालाल बजाज वहा हिन्दी-सम्मेलन की अध्यक्षता करने गये थे। जमनालालजी का उदारतापूर्ण आकर्षण मेरी ओर इसी कारण हुआ कि मै हिन्दी शीघ्रलिपि प्रणाली से उस समय व्याख्यान लिखा करता था। बडे स्नेह से उन्होने मुझसे कहा कि मै उनका व्यक्तिगत सहायक बनकर सेवा करू। कई कारणो से मैंने उनका उदारतापूर्ण प्रस्ताव ग्रहण नही किया, लेकिन उनके व्यक्तित्त्व में जो स्वाभाविक आकर्षण था, उनके व्यवहार में जो कोमलता और माधुर्य था, वह किसे आकर्षित नहीं करता था। उनका भरा-पूरा शरीर, लम्बा कद और स्नेह से धीरे-धीरे बोलना, हर किसीके मन को लुभा लेता था।

वर्धा में उन्होने एक हिन्दी शॉर्ट हैंड सम्मेलन बुलाया था। मैं उसमें गया। मैंने देखा कि किस प्रकार वाजश्रवा की भाति अन्न के दान और अतिथि-सत्कार में वे आनन्द लेते थे।

महात्मा गाधी के चारो ओर जिन व्यक्तियो ने भारत के स्वतन्त्रता-सग्राम को चलाने के लिए अपने-आपको अर्पित कर रखा था, उनमें जमनालालजी का प्रमुख स्थान था।

: ४२ :

उनका जेल-जीवन

रामेश्वरदास पोद्दार

श्रीजमनालालजी १९३२ में बम्बई में गिरफ्तार हुए, तब की बात है। उन्हें दो साल की सख्त सजा दी गई और 'सी' क्लास में रक्खा गया। पहले उनको वीसापुर-जेल भेज दिया गया। उस जमाने में विसापुर-जेल बम्बई प्रात भर में सबसे खराब जेल था। वहा अधिकतर मुजरिम कैदी थे और वहा की जलवायु जमनालालजी के अनकूल नही थी। अतएव कुछ दिनों के बाद सरकार ने जमनालालजी का धुलिया-जेल में तबादला कर दिया।

श्री जमनालालजी का धुलिया-आगमन-सबधी समाचार मुझे अहमद-नगर के एक मित्र द्वारा प्राप्त हुआ। मैंने यह तार अपने मित्रों को भी पढ-वाया और यह तसल्ली कर ली कि जमनालालजी स्वय दूसरे दिन सुबह धुलिया आ रहे है। यह समाचार जेल में पू विनोबाजी को भी पहुचा दिया। दूसरे दिन प्रात काल मैं अपने मित्रों सहित जमनालालजी के स्वागत के लिए धुलिया स्टेशन पहुचा।

गाडी आई और लोगो ने देखा कि जमनालालजी तीसरे दर्जे के डिब्बे मे मामूली कैदी की पोशाक में है। वे चड्डी और कुर्त्ता और सिर पर टोपी पहने हुए थे। पुलिस के आदमी ने जमनालालजी से कहा कि आप अपने कपडे पहन सकते हैं, परन्तु जमनालालजी ने इन्कार कर दिया। वे उसी पोशाक में सतुष्ट दीखते थे। उन्होंने पुलिस से अपने मित्रो से बातचीत करने की इजाजत मागी, जिसके लिए पुलिस को कोई आपत्ति नही थी। हम लोग जमनालालजी को वेटिंग रूम में ले गये। जमनालालजी को नाश्ता कराया और आधे घटे तक बातचीत की। इसके बाद कुछ मित्रो ने जमनालालजी से आग्रह किया कि वे उन्हीकी मोटर में जेल चले जाय, परन्तु जमनालालजी

इससे सहमत न हुए। एक-सवा मील पैदल चलकर जेल पहुचे।

उधर पू विनोबाजी जेल में जमनालालजी का इन्तजार करते-करते थक गये, क्योकि काफी समय होगया था। वे परेशान हुए और जेलर से जाकर पूछा कि जमनालालजी अबतक क्यो नही आये? जेलर को इस बात से बडा आश्चर्य हुआ, क्योकि उसको स्वय इस बात का ज्ञान नहीं था कि जमनालाल-जी उस जेल में आ रहे है। तब उसने अन्वेषण शुरू किया कि यह खबर जेल के अन्दर तक कैसे पहुची। इसी बीच जमनालालजी भी पहुच गये। जेलर के अन्वेषण का यह फलस्वरूप जेल का एक मामूली नौकर बाहर से जमनालालजी-सबधी खबर कैदियो को पहुचाने का दोषी निकला। जेलर ने उसकी बरखास्तगी का हुक्म निकाल दिया। बेचारा नौकर रोने लगा। यह सारा दृश्य देखकर विनोबाजी व जमनालालजी ने उस अधिकारी को समझाया कि उस बेचारे का कोई दोष नही है, आखिर दोषी तो वे स्वय हैं। जेलर मान गया और उस आदमी को फिर से रख लिया।

यद्यपि विनोबाजी 'बी' श्रेणी में रखे गये थे और जमनालालजी 'सी' में, तथापि जेल के अधिकारियो ने जमनालालजी को विनोबाजी के समीप ही जगह दी, जिससे उन्हे विनोबाजी के साथ रहने का लाभ प्राप्त हुआ।

'सी' श्रेणी के कैदियो की खुराक डेढ आने रोज की थी। इससे अन्दाजा लगाया जा सकता है कि उनको किस तरह का भोजन मिलता था, परन्तु जमनालालजी को तो इससे कोई शिकायत नही थी। हा, उनका वजन इस कारण बेशक बहुत कम होगया, पर उनके चित्त की प्रसन्नता में कोई कमी नही थी, इसलिए कि उन्हे विनोबाजी आदि के सहवास से आध्यात्मिक खुराक तो पर्याप्त मात्रा में मिल रही थी। जो हो, उनकी शारीरिक स्थिति को देख-कर दूसरे मित्र थोडे ही चुप रह सकते थे। उन्होने इस सम्बन्ध में जेलर से कहा तो वह कहने लगा कि जबतक शिकायत जमनालालजी की तरफ से न हो, हम क्या कर सकते है। इसपर जमनालालजी के साथी सालिगरामजी भारतीय ने कहा, "जमनालालजी मरते दम तक अपने लिए किसी खास सुविधा की माग नहीं करेंगे।" उनके गिरते स्वास्थ्य को देखकर जेलर को उस ओर

ध्यान देना पडा। नतीजा यह हुआ कि उनको खूराक में चावल, गेहू की रोटी, और टानिक के तौर पर गाजर खाने को दी जाने लगी। अधिकारी ने यह भी छूट दी कि यदि बाहर से कोई मक्खन भेज सके तो हम उनके पास पहुचा देंगे। तदनुसार रोज बाहर से मक्खन की व्यवस्था होने लगी।

जमनालालजी को जेल मे दूसरी सुविधा यह प्राप्त थी कि उनके नाम की बाहर से आनेवाली डाक उनके मित्र रोज ले जाते थे और अधिकारी की मौजूदगी में पढकर सुनाया करते थे और वे जो कुछ कहते थे, उसको मित्रगण लिखकर भेज दिया करते थे। एक बार डाक पढकर खत्म होने में कुछ देर अधिक होगई। जेलर इसपर गुस्सा होगया और उसके मुह से यह बात निकल गई कि आपको यहा हर तरह की सुविधा हो गई—खुराक में सुधार होगया, हर रोज डाक आती रहती है और मक्खन तक आपको मिलने लगा है। यह बात जमनालालजी को लग गई। वह झट बोल उठे कि साहब, आपकी मेहरबानी पर मैं रहना पसद नही करता। आइन्दा जेल के कायदे के हिसाब से जो चीज नही मिल सकती, मैं वह नही लूगा, मै आपको इसका आश्वासन देता हू। फल यह हुआ कि उसी दिन से उन्होने मक्खन मगाना बन्द कर दिया। उपरोक्त सब बातें गुस्से में होगई। जब अधिकारी शात हुआ तो उसको अपनी गलती मालूम हुई। लेकिन जमनालालजी टस-से-मस न हुए।

अप्रैल का महीना था। जमनालालजी का वजन दिन-ब-दिन घटते रहने से जेल के अधिकारियो को बडी चिन्ता हुई। इसलिए उन्होंने आई जी को खबर दी। इसी बीच वर्धा से जमनालालजी से मुलाकात के लिए (जो कि 'सी' क्लास के कैदी को महीने में दो-एक बार मिलती थी) एक पार्टी आई। उसमें जमनालालजी की माता, जानकीबहन, केशवदेवजी, लालजीभाई आदि थे। जब माताजी ने जमनालालजी को जेल की पोशाक, उनका गिरा हुआ स्वास्थ्य आदि देखा तो बहुत दुखित हुई और दोनो एक-दूसरे से लिपट गये। यह दृश्य देखकर जेलर तक की आखो मे आसू आगये।

गर्मी के दिनो में जेल में पानी की बहुत तगी रहती थी। जमनालालजी की कोशिश से एक कुआ, जो बन्द था, खोला गया और जमनालालजी और

उनके साथी खुशी-खुशी उसमें से पानी खीचने लगे। उनके और साथियो के पानी खीचने के दृश्य की जेलर ने फोटो ली थी, जिसकी एक कापी अब भी श्री माखनलाल चतुर्वेदी के पास है। पानी खीचने का ढग वैसा ही था, जैसे बैल खीचते है।

जमनालालजी का वजन ४० पौंड घट गया। इस सबब में असेंबली में प्रश्न पूछे गये थे, बाद में उनकी बदली पूना हुई।

धुलिया-जेल की ही बात है। वहा का सुपरिन्टेंडेंट एक पारसी था, जो सदैव बातचीत में 'साला' शब्द का प्रयोग करता था। एक बार इसीको लेकर इतना बडा वाद-विवाद जमनालालजी और उसके बीच हुआ कि आखिर जमनालालजी को उसने कह देना पडा कि यदि आप कैदियो के साथ बातचीत करते समय यह गाली बन्द नही करेंगे तो हम सब लोग सत्याग्रह करेंगे। सुपरिन्टेंडेंट डर गया और यहातक नौवत न आने दी।

जेल में विनोबाजी का गीता के सबंध में प्रवचन होता था, लेकिन वह पुरुषो तक ही सीमित था। जमनालालजी की कोशिश से विनोबाजी को प्रवचन सुनाने के लिए स्त्रियो के वार्ड में भी जाने की अनुमति मिल गई।

विनोबाजी जेल में 'गीताई' पुस्तक तैयार कर रहे थे और यह सोचा जा रहा था कि पुस्तक का प्रकाशन कौन करे। जमनालालजी के धुलिया-जेल में आने के बाद इस कार्य में गति आई, परन्तु दिक्कत यह हुई कि जेल में से यह कार्य कैसे संपन्न हो। जब जेलर से बातचीत हुई तो उसने कहा, "अगर यह कार्य गुप्त रूप से चला सको तो मुझे कोई आपत्ति नही। लेकिन इसके लिए छापेखानेवाले को बार-बार इधर आना पडे और आप लोगों के साथ बातचीत करनी पडे, तो उसकी अनुमति देना मेरेलिए संभव नहीं होगा।" धुलिया-जेल में नीचे जेल था, ऊपर पुलिस-आफिस था। इसलिए उन्हें डर था कि यदि किसीने पुलिस-आफिस में उनके विषय में शिकायत कर दी कि वह कांग्रेसी कैदियो के साथ नाजायज रिआयतें दे रहे है तो उनकी खैर नही होगी। यही कारण था कि जेलर ने विनोबाजी के मुक्त होने पर भी अपनेको इस संकट से बचा लेना चाहा। जमनालालजी ने अपने साथी मित्रो से परामर्श किया।

कार ने मगनवाडी पर कब्जा कर लिया था और वहापर पुलिस तैनात थी। इसलिए जमनालालजी ने कह दिया कि मैं तो बगीचे की होली करके आया हू, अब मैं अपने आदमी को पाव भी नही रखने दूगा।

जमनालालजी पूना-जेल में थे। उनके सेक्रेटरी मदनमोहनजी मुलाकात के लिए आये। आई जी ने उनसे कहा कि आप जमनालालजी की पत्नी के द्वारा उनसे कहलवायें कि वे कान की टी बी के इलाज के वास्ते विलायत जाने को तैयार हो जाय तो सरकार उनको मुक्त कर देगी। मदनमोहनजी ने जवाब दिया कि वे अपनी पत्नी की बात थोडे ही मानेंगे। अगर आप चाहें तो गाधीजी से इस बारे में बात छेडिए, क्योंकि गाधीजी ही उनके सर्वस्व हैं।

जमनालालजी विनोबाजी को बडी श्रद्धा से देखते थे। विनोबाजी को एक बार जेल में बडे जोर से खासी होगई, लेकिन उन्होंने कोई इलाज नहीं कराया। जमनालालजी ने उनसे आग्रह किया कि वे कम-से-कम खडी शक्कर और काली मिर्च मिलाकर खा लें। पहले तो उन्होंने इन्कार किया, पर जब जमनालालजी ने कहा कि आप खुद भी रात को नहीं सोते और दूसरो को भी अपनी खासी से नही सोने देते तो उन्होंने हँसकर खडी सक्कर और काली मिर्च खाना कबूल कर लिया। जमनालालजी दूसरे साथियो के साथ बिल्कुल भाई-चारे का बर्ताव करते थे। उनके दुख से दु खी होते थे, सुख से सुखी।

हरिजनो के लिए मन्दिर-प्रवेश का आन्दोलन चल रहा था। जमनालालजी ने वर्धा का लक्ष्मीनारायण-मन्दिर हरिजनों के लिए खुल्वा दिया। हिन्दुस्तान में वह सबसे पहला मन्दिर हरिजनो के लिए खोला गया था। विनोबाजी जेल से छूटकर आगये थे और उन्हीके हाथो यह शुभ कार्य सपन्न हुआ।

जमनालालजी दो साल की सजा पूरी होने के पहले ही पूना-जेल से छूट गये। जेल से वे एक टीन का बर्तन और कटोरी साथ लाये, जिसको उन्होंने बहुत दिनो तक यह कहकर इस्तेमाल किया कि मैं अपनेको तबतक रिहा नही समझूगा, जबतक बापूजी न छूटें।

: ४३ :

मेरे बड़े भाई

गोविन्ददास

सेठ जमनालालजी बजाज से हमारा पारिवारिक सबंध रहा है, क्योकि उनका और हमारा परिवार राजस्थान से मध्यप्रदेश में आया और यहा बस गया। फिर जमनालालजी राजस्थान में सीकर के थे, जहा मेरा विवाह हुआ है। यह योग भी हमारे सबंध को और निकट लाने और बढाने में सहायक हुआ।

जमनालालजी गाधीजी के प्रभाव में आने के पूर्व रायबहादुर थे और मैं भी ब्रिटिश-सरकार के पदवीधारियो के कुटुम्ब में रहता था। उस समय मेरी उनकी सबसे पहले भेंट हुई थी। उस भेंट का मुझे आज भी पूरा स्मरण है। उनमें देशभक्ति की भावनाए उस समय भी विद्यमान थी। वे ही आगे चलकर प्रस्फुटित हुई।

सन् १९२० में नागपुर में होनेवाले काग्रेस-अधिवेशन के अवसर पर प विष्णुदत्तजी शुक्ल को स्वागत-समिति का अध्यक्ष बनाने के सिलसिले में वह जबलपुर में उनसे मिलने आये थे। हमारे यहा ठहरे। यद्यपि वे असहयोग की पूर्ण दीक्षा लेने के लिए शुक्लजी से कही अधिक सक्षम होगये थे, फिर भी उन्होंने शुक्लजी को ही वह सम्मान देने का प्रयत्न किया। यह उस समय की बात है जब काग्रेस के इन पदो का महत्व तत्कालीन मत्रीपदो से कही अधिक था। जमनालालजी का वह प्रयत्न निस्सदेह उनकी महानता का द्योतक था। उन्होंने मुझे भी काग्रेस में खीचने का प्रयत्न किया और यद्यपि मैं स्वय ही काग्रेस की ओर खिच रहा था, तथापि उनकी प्रेरणा से उस खिचाव मे और तीव्रता आगई। जमनालालजी उस समय पगडी बाधते थे।

काग्रेस के नागपुर-अधिवेशन के अवसर पर मैं भी काग्रेस में होगया।

तत्पश्चात् जमनालालजी के स्वर्गवास के समय तक मेरा उनका अत्यधिक निकट का सपर्क रहा, न जाने कितनी बार वे जबलपुर आये और हमारे साथ ठहरे और न जाने कितनी बार मैं वर्धा और बम्बई उनके पास गया और उनके साथ ठहरा। मैं उन्हें सदा अपना बडा भाई और वे मुझे सदा अपना छोटा भाई मानते थे। एक विशेषता यह रही कि उनके असहयोगी और मेरे पिताजी के दीवान बहादुर होते हुए भी हमारे परिवार के साथ उनका बडा स्नेह बना रहा।

राजनैतिक कार्य के अतिरिक्त जीवन में जिन दो कार्यों मे उनका विशेष अनुराग था, वे थे हिन्दी की अभिवृद्धि और गो-सेवा। उन्हींसे मेरा भी अनुराग था। इन कार्यों के सम्बन्ध में भी हम लोगो के बीच प्राय चर्चा होती रहती थी।

जमनालालजी मे देशभक्ति, सादगी, कार्य-तत्परता, कर्तव्य-निष्ठा, देश पर सर्व-समर्पण की भावना, सगठन-शक्ति आदि जिन विशिष्ट गुणो का समावेश था, वह उस काल के भारत की एक बडी देन थी। उन्होने अपने इन गुणो के कारण देश की जो सेवा की, वह भारतीय स्वातन्त्र्य-इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय है। जमनालालजी आदर्शवादी थे, किन्तु उनकी इस आदर्श-वादिता में व्यवहार-कुशलता भी विद्यमान रहती थी।

: ४४ :

वर्धा के वर्धक

मथुरादास मोहता

मेरे पूज्य दादाजी श्री रेखचन्दजी मोहता का स्व जमनालालजी के पूज्य दादाजी श्रीबच्छराजजी बजाज मे भाईचारे का घनिष्ट संबंध था। सन् १९१० में मेरा खुद का निकटवर्ती संबंध भाई जमनालालजी से आरम्भ हुआ।

जमनालालजी युवावस्था में ही व्यापार में अधिक दिलचस्पी लिया करते थे तथा अपना कारोबार मुनीम-गुमाश्तों के अधीन न छोडकर स्वय ही किया करते थे।

जापानी लोग मध्यप्रांत में रुई की खरीदी इत्यादि जमनालालजी के द्वारा ही किया करते थे। जापान के उद्योगपतियों का विश्वास उनके प्रति बहुत अधिक था। जमनालालजी की दूकान के नाम एवं छाप से ही हजारों रुई की गाठें विदेशी व्यापारी खरीद लिया करते थे। कारण यह था कि जमनालालजी सचाई व ईमानदारी को प्रारम्भ मे ही अपना ध्येय समझते थे।

सभा-सोसायटी का शौक उन्हें युवावस्था मे ही था। सन् १९०९ में आपने वर्धा में मारवाडी बोर्डिंग हाउस की स्थापना की। फिर मिडिल स्कूल खोला तथा सन् १९१५ में उसे हाईस्कूल कर दिया। इसके साथ ही बम्बई में मारवाडी-विद्यालय का प्रारम्भ किया, जिसमें एक बडी रकम स्वय प्रथम दान में दी और बाद में बम्बई के अन्य धनिकों को दान देने को प्रेरित किया। वर्धा में हाईस्कूल का विशाल एवं सुन्दर भवन बनवाने के लिए उन्होंने बडी रकम दी और फिर दूसरों से भी प्राप्त की। इस तरह करीब ५ लाख रुपये का फंड मारवाडी एजुकेशन सोसायटी, वर्धा के लिए आपने इकट्ठा किया। वर्धा-जैसे स्थान के लिए इतनी रकम इकट्ठा करना उन दिनों सरल बात नहीं थी।

शिक्षा-संबंधी कार्यों के साथ-साथ सरकारी कार्यों म भी वह दिलचस्पी लेते थे, जिसके फलस्वरूप सरकार की ओर से 'रायबहादुर' की पदवी उन्हें मिली। सन् १९१५ से उन्होंने पूज्य महात्मा गाधी से सत्सग प्राप्त किया तथा उनकी कार्य-प्रणाली मे श्रद्धा जागृत हुई, जो दिन-प्रतिदिन दृढतर होती गई। नतीजा यह हुआ कि 'रायबहादुर' की पदवी सरकार को वापस लौटा दी। उस समय सरकारी क्षेत्रो मे सनसनी फैल गई। सन् १९२० मे नागपुर के काग्रेस-अधिवेशन की स्वागत-समिति के वह सभापति हुए। तब से उन्होंने काग्रेस में दृढता-पूर्वक प्रवेश किया। नागपुर के झडा-सत्याग्रह के परिणाम-स्वरूप प्रथम बार उन्होने जेल-यात्रा की। उस समय के मध्यप्रात सरकार के गृहमत्री ने इनको इनकम-टैक्स आदि में अनेक सहूलियतें देने का प्रलोभन दिया, परन्तु जमनालालजी ने पूज्य महात्माजी के सिद्धातो के अनु-सार चलने का दृढ सकल्प कर लिया था। अत वह टस-से-मस न हुए। उनकी प्रकृति की विशेषता थी कि किसी बात की पूर्ण जाच-पडताल किये बिना उसपर विश्वास नही करते थे और जब कोई बात उन्हें पूर्ण रूप से जच जाती थी तब उससे टलने का नाम नही लेते थे।

सन् १९२० के नागपुर-काग्रेस-अधिवेशन के बाद वह दिन-प्रतिदिन देश-सेवा में अधिक जुटते गये और व्यापार-धधे की तरफ से दिल खीचकर नाम-मात्र का ध्यान देते, फिर भी उच्च दर्जे के व्यापारी थे। कारण कि उन्होंने युवावस्था से ही व्यापार की जड अच्छी तरह से जमा ली थी। देश-सेवा पर तन-मन-धन न्योछावर कर दिया। जिन-जिन क्षेत्रों में उन्होने भाग लिया, उनमें पूरी तौर से सफल रहे। सर्वप्रथम सभा-सोसायटी में भाग लिया तो उसमें उनका नाम अग्रगण्य रहा। सरकारी कार्यक्षेत्र में उतरे तो मध्यप्रात में चमकते हुए व्यक्ति बन गये। पूज्य गाधीजी का सग किया और बापू को वर्धा एव सेवाग्राम में निवास करने के लिए राजी कर लिया तो वर्धा-जैसा मामूली छोटा शहर, जिसे पहले कोई नहीं जानता था, भारत में ही नही, सारे ससार में विख्यात होगया।

: ४५ :

मानवता का पुजारी

काशिनाथ त्रिवेदी

"न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ॥"

सुना है, देव अमर होते हैं और अमरावती में रहते हैं। उनको न बुढ़ापा आता है, न बीमारी सताती है। मौत तो उनके पास फटकती भी नही। इसीलिए वे अजर-अमर कहलाते हैं। हमारे पुराणों में देवो की और देवलोक की एक-से-एक अद्भुत और अनुपम कथाए भरी पडी हैं। मानव-मन की कल्पना ने उन्हें बड़ा ही सरस, सुहावना और लुभावना स्वरूप दे रखा है।

यह भी सुना है कि एक जमाना था, जब इस भारत-भूमि के राजा-महाराजा, ऋषि-मुनि, साधु-सन्यासी और गृहस्थ सशरीर देवलोक की यात्रा किया करते थे, बड़े-बड़े युद्धों में देवों की मदद करते थे, उनसे नाना प्रकार के वर-वैभव, और शस्त्रास्त्र पाते थे, उनका आतिथ्य ग्रहण करते थे और कभी-कभी उनकी ईर्ष्या व रोष के पात्र भी बनते थे।

सुना तो और भी बहुत-कुछ है, लेकिन देखा किसने है? कहा है वह देवलोक? क्या करते हैं उसके देवता? मानवो से आज उनका कोई सबध है या नही। मानव उनकी मदद करते हैं? वे मानवो की मदद को दौडे आते हैं? देवो का मानवो के साथ, मानवो का देवो के साथ, वह पुराण-प्रथित मीठा और मोदकारी सबध कही किसीको नजर आता है? कही देव और मानव मिलकर पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की चेष्टा में लगे हैं?

मानव से पशु और पशु से पिशाच बना हुआ इस युग का यह दो पैरों-वाला प्राणी इन सवालो का क्या जवाब दे? देवत्व उनके आसपास कही फटकता हो तब न? मानवता को वह अपने रक्त और स्वेद से सीच रहा हो,

तब न ? जवाब देने के लिए मुह चाहिए, और मुह से बात निकालने के लिए मनोबल चाहिए—आत्मबल चाहिए ! वह आज हममें से कितनो के पास है ?

• •   • •   • •

मैं कहता हू, मैंने पुराणो के वे देव नही देखे, उनकी अमरावती नही देखी, उनका वैभव और विलास नही देखा, उनकी अजरता और अमरता नही देखी, उनके देवत्व के दर्शन भी नही किये। मैंने भागीरथ-सा तप नही तपा, मैंने ध्रुव-से जप नहीं जपे, मैंने प्रह्लाद-सी भक्ति नही की। मैं उन्हें कैसे देखता ? कैसे उनके दर्शन करता ? वे क्यों मुझे दर्शन देते ?

फिर भी मैं कहता हू कि मैंने एक देवपुरुष को देखा, 'मा' की कोख से जन्मे हुए एक मानव को देखा, जो हर बात में अपनी मानवता का परिचय देता था, मानव की तरह हमारे आपके बीच रहता था, खाता-पीता, हँसता-खेलता, कामकाज करता, सोता-बैठता, और बोलता-बतलाता था। उसे गुस्सा आता था, उसमें राग-द्वेष था, वह गिरता था और उठता था, गलतियां उससे होती थी, पक्षपात वह कर लेता था, पछताने मे वह एक था, बडा था, मगर छोटा बनकर रहना चाहता था, गरीब पैदा हुआ था, अमीर बन गया था, मगर फिर से गरीब बनने के लिए छटपटाता था। वह मानव था—सवा सोलह आने मानव था।

मैंने उस मानव को देखा था। दूर से देखा था, निकट से भी देखा था। घर में देखा था, समाज में देखा था, आश्रमो में और वनो मे भटकते देखा था, बडों के बीच और छोटो के साथ देखा था, गरीबो की झोपडियों के सामने देखा था, अमीरो और रईसों के महलो में जाते और रहते देखा था। जेल में देखा था और जेल के बाहर भी देखा था। वह सेनानी भी था और सिपाही भी था—मैंने उसके दोनो रूप देखे थे। वह अपनी टक्कर का एक ही साधक था, और उसकी सजग साधना भी मैंने देखी थी।

लोग कहते हैं, वह धनी था। लाखो उसने कमाये और लाखो उसने दिये। देश के लिए दिये, आख मूदकर और दिल खोलकर दिये, बिना भेद-भाव के दिये।

मैं भी मानता हू कि वह धनी था और उसने स्वदेश, स्वधर्म और स्वराज के लिए अपना धन दोनो हाथो से उलीचा था, और शायद दस-दस हाथ से उलीचना चाहता था। उस उलीचनेवाले को अपनी आखो मैने उलीचते देखा था—लेकिन सोने-चादी का यह उलीचना भी कोई उलीचना था ?

मानता हू कि यह भी इस युग की एक अनूठी चीज थी। मगर क्या मेरे उस मानव को इससे सतोष था ? नही, हजार बार नही।

धन के धनी तो इस देश मे और इस दुनिया में सैकडो-हजारो पडे है, लेकिन मेरा यह धनी केवल सोने-चादी का धनी नही था। वह सिर्फ इतना ही होता, तो आज मुझसे ये पक्तिया उसकी याद में न लिखी जाती। मेरे मन में वह जिस धन का धनी था, वह तो हृदय-धन था। इस धन के धनी आज की इस दुनिया में ढूढे नही मिलते। मुझे एक वह मिला था और मै उसे पाकर निहाल होगया था। उसने अपना धन खूब बिखेरा था, खूब बाटा था। उसके पास इस धन की अटूट निधि थी और वह दिन-रात खरचने पर भी दिन-रात बढती ही जाती थी।

मैं कौन ? मेरी बिसात क्या ? गरीब बाप का बेटा, गरीबनी मा का लाल, गरीबी में पला, गरीबो के बीच रहा—मुझे उस अमीर से, उस लखपति से, क्या सरोकार ? वह मुझे क्यो पूछे ? और मैं क्यो उसके पास जाऊ ?

मैं साबरमती-आश्रम की सडको पर झाडू लगाता था और मुझे झाडू लगाते देखकर ओठो पर एक अजीब-सी मीठी मुस्कान लिये वह मुस्करा देता था। उसकी एक मुस्कान में सराहना थी, सौहार्द था और सरसता थी। मैं तो तब उसे जानता भी नही था। नाम-ही-नाम सुना था। मगर दिल दिल को पहचान चुका था। और मन ने मेरे मान लिया था कि जो इस तरह मुझे देखकर मुस्करा सकता है, वह जरूर कोई मानव है—उदार और दिलदार!

उसकी पहली झाकी शायद मैंने वही की। वह अपने 'बापू' के पास बार-बार आता या और आकर आश्रम की 'जानकी-कुटीर' में ठहरता था। मैं भी उसे दूर से देख लिया करता था और देखकर खुश हो लिया करता था।

यह सन् उन्नीस की बात है। फिर तीस का स्वातन्त्र्य-युद्ध शुरू हुआ।

इकतीस बीता, बत्तीस बीता और बीतते-बीतते छत्तीस का जून महीना आया।

अचानक मुझे तार मिला कि वर्धा में मेरी जरूरत है और मुझे वहा फौरन पहुच जाना चाहिए। मै पहुचा—सकुचाता-शरमाता, मन में एक अजीब-सी भावना लिये। मै अपने मेजवान से मिला। बातें हुई और हम आगे की बात करने के लिए पैदल सेवाग्राम के सत की कुटिया की ओर चल पड़े।

मुझे आदेश मिला कि मै वर्धा में रहू और वर्धा के महिला-आश्रम की सेवा करू।

मैंने सिर झुकाया, आदेश को सिर-माथे चढाया और धड़कता दिल लिये एक दिन वहा रहने पहुच गया।

छत्तीस बीता, सैंतीस बीता, अड़तीस बीता, साल-पर-साल बीतते चले गये और मैं अपनी 'काजल की कोठरी' में भूत बनकर काम करता रहा। भगवान जाने, मेरा काम किसीको पसद आया या नही, मगर मैं उसमें मगन था, क्योंकि वह मेरे मन का काम था।

.. .. ..

जयपुर मे प्रजा-मण्डल कायम हुआ। राज के साथ मण्डल की खटपट हुई। मण्डल ने सत्याग्रह की ठानी और मेरा वह मानव सत्याग्रह का सेनानी बना।

वर्धा से विदाई का समय आया। उसने मेरी तरफ देखा। मैंने उसकी तरफ देखा। आखो ने उसकी सवाल किया। आखो ने मेरी जवाब दिया। मैंने कहा—जाओ मेरे मानव! निश्चिन्त होकर जाओ और विजयी बनकर आओ। यहा सबकुछ ठीक ही रहेगा—अपने भरसक कोई कसर न रहने दी जायगी।

और वह चला गया। मेरे कन्धो का बोझ बढाकर चला गया। दुर्बल मैं, एकाकी, असहाय, अबूझ, दिनरात एक करके उस बोझ को ढोने लगा। कितनी मिठास, कितना आनन्द, कितना उल्लास, कितनी तन्मयता और कितनी ममता को लेकर मैं उन दिनो भिडा रहता था। कौन जानता है? एक ही धुन थी—एक ही लगन। दिन-रात यही खयाल रहता था कि वह

आयगा और उसको हिसाब देना पड़ेगा।

• • • • • •

उसने बोझ लादा था और मैं—अपनी एक बहन के शब्दों में—उसे 'गधे' की तरह ढोये चला जा रहा था। लेकिन उस बोझ ने मुझे 'गधा' नही बनाया, बल्कि 'गधे' को मानव बना दिया। मुझे कभी उस बोझ की शिकायत नही रही। वह मेरे जीवन का सबसे मीठा बोझ था और मेरे मानव ने उस मिठास मे मिसरी घोल दी थी।

यहा इसी महिला-आश्रम में, मैंने अपने मानव के और उसकी बसाई उस नई दुनिया के उस धन का यथेच्छ उपयोग किया, जिसे हृदय-धन कहा जाता है। वे सस्मरण इतने पवित्र और इतने अपने है कि उन्हें कलम से कागज पर उतारना सभव नही।

सोने-चादी को आदमी चबा नही सकता। उससे न पेट की ज्वाला शात होती है, न मन और आत्मा की भूख बुझती है। माना कि जीवन में वह भी जरूरी है, लेकिन वही जीवन का सार-सर्वस्व नही, उसकी सिद्धि ही जीवन का परम साध्य नही। जीवन का सुकुमार और सूक्ष्म पौधा सोने-चादी की चका-चौंध में पीला ही पड सकता है, पनपकर लहलहा नही सकता।

महिला-आश्रम की यज्ञभूमि में मुझे इस सत्य का अधिक स्पष्ट दर्शन हुआ। आश्रम मेरेलिए निरा आश्रम ही न रहा, वह तो एक पावन पुण्य-भूमि और यज्ञभूमि बन गया। जितना ही मैं उसकी अनेकविध प्रवृत्तियो में गडता गया, उतना ही मेरी आखो के सामने उस भूमि की महानता और पावनता का स्वरूप स्पष्ट होता गया और मैं अपनी सुध-बुध खोकर दिन-रात उसीमें कैद रहने लगा।

• • •

उन्तालीस का साल था। गर्मियो के दिन। आश्रम बन्द हो चुका था। और आश्रम का प्राण, जयपुर की नौकरशाही का मेहमान बनकर, जयपुर के निकट कर्णावतो के बाग में नजरबन्द था। बुलाहट हुई और मैं जयपुर पहुचा। कर्णावतो के बाग में उस दिन मैंने उस नजरबन्द को देखा। लाखों का

धनी, हजारों का पालनहार, सैकड़ो का भाई-बन्धु, और सखा, वहा घुटनो का दर्द लिये, गरीबो का-सा जीवन बिता रहा था। वही खान-पान, वैसा ही रहन-सहन, रात-दिन उन्हीके सुख-दु ख का विचार। उस समय वह जयपुर के लाखो प्रजा-जनो का एकमात्र प्रतिनिधि था—उनका सरदार, सेनापति, सेवक और साथी।

दो दिन तक उसके साथ दिन-दिन भर रहने, खाने, सोने-बैठने और बात-चीत करने का सौभाग्य प्राप्त रहा।

आश्रम और आश्रम की एक-एक विद्यार्थिनी के लिए उसके मन में कितनी आशाए, कितना अनुराग, कितनी ममता, कितनी माया, कितनी दया और कितनी सहानुभूति थी, सो तो मैंने इन दो दिनो में जाना और जानकर मैं कृतकृत्य हो उठा। मेरा सिर झुक गया, मेरा बोझ बढ गया।

• •　　　　•　　　　• •

मैं सोचता हू कि मृत्युलोक से परे जिस देवलोक की कल्पना हमारे पूर्व-पुरुषो ने की है, वह देवलोक हमसे दूर नही, हमसे बाहर नही, हमारे पास, हमारे अन्दर पडा हुआ है। हम चाहें तो उसमें विहार कर सकते हैं और स्वय देवरूप बन सकते हैं, हम चाहे तो उससे बेखबर रहकर पशु और पिशाच भी बन सकते हैं। नर भी हमी हैं और नारायण भी हमीं हैं—पर्दा हटना चाहिए, दुई मिटनी चाहिए, हिये की आखें खुलनी चाहिए।

हिन्दुओ ने तेंतीस करोड देवताओ की कल्पना शायद इसीलिए की थी कि वे अपने बीच किसी दैत्य को, किसी दानव को, किसी पिशाच को, और पशु को पनपने नही देना चाहते थे। शायद वह दुनिया को देवत्व से भर लेना चाहते थे। जीवन के पल-पल में दानवो और दैत्यों का भीषण त्रास वे सह चुके थे। उनकी विभीषिका से वे त्रस्त हो चुके थे और इसीलिए कदाचित् प्रत्यक्ष को भूलकर परोक्ष की मधुर कल्पना में वे लवलीन होगये थे।

हम भी तो आज इसी तरह त्रस्त हैं, हमारा सबकुछ छीना जा रहा है, अस्तव्यस्त और ध्वस्त किया जा रहा है, पृथ्वी को नरक बनाने में कोई कसर नही रखी जा रही है।

ऐसे समय हमें कौन आश्वस्त कर सकता है ? किसकी अमृत-भरी दृष्टि हममें नव-जीवन का संचार कर सकती है ? कौन हमें जीवन का अमर सन्देश सुना सकता है ? कौन मानव की अमरता में हमारी श्रद्धा को बढा सकता है ?

मुझे तो एक ही जवाब सूझता है—वही जो जीवन में प्रतिक्षण मानवता के पुजारी रहे और मरकर अमर बन गये।

राम और कृष्ण को मैंने नही देखा, बुद्ध और महावीर को मैंने नही देखा ईसा, मूसा और मुहम्मद को मैंने नही देखा। शिवाजी और प्रताप को मैंने नही देखा, रामकृष्ण और विवेकानन्द को मैंने नही देखा, लाल-बाल-पाल को मैंने नही देखा, गोखले और रानडे को भी मैंने नही देखा।

अगर ये अमर है, तो मै मानता हू कि मैंने जिस मानव को देखा था, जिसमें मैंने मानवता के निर्मल और उज्ज्वल दर्शन किये थे, जिसकी याद में आसू की इन लडियो में पिरोकर श्रद्धा के ये फूल चढाये जा रहे है, वह भी अमरता का एक अनन्य पुजारी था और मरकर अमर होने की साध रखता था। निश्चय ही आज वह मरकर अमर हुआ है, और हमारे हृदय-मन्दिर में देव बनकर निवास करने लगा है। हमारे हृदय में उसका यह स्थान अक्षुण्ण रहे, हमारे हृदय का कोना-कोना उसके प्रोज्ज्वल प्रकाश से निरन्तर प्रदीप्त रहे, आज के दिन उसकी याद में यही तो हम सब चाह सकते है।

हमारे बीच एक जोत जलती थी और हम उसे देखते थे। उसके प्रकाश में अपने अंधेरे का नाश करके आश्वस्त होते थे। अब वह जोत हमसे अलग नही रही—हममें आ मिली है और हम—उसके चाहनेवाले, उसके देखने वाले—स्वय प्रकाशित हो उठे है। उसने हमें मजबूर किया है कि हम अपनी लौ में उसकी लौ को मिलाकर उसे शतसहस्र गुनी प्रभामयी बना दें।

मैं नतमस्तक हो उसको सौ-सौ बार प्रणाम करता हू और उसका जय-जयकार करता हू।

कोई पूछेगा—आखिर तुम्हारा वह मानव कौन था ?

मै कहूगा—दुनिया उसको जमनालाल कहती थी, गाधी का वह पाचवा बेटा था और भारत मा का सच्चा सपूत।

: ४६ :

उनके वे शब्द !

दामोदरदास मूदड़ा

उस दिन ठीक ५२ वर्ष पूरे करके जमनालालजी ने ५३वें वर्ष में प्रवेश किया था। तिथि के अनुसार पाच रोज पूर्व ही उनकी सालगिरह थी। तारीख व तिथि के बीच के इस पाच रोज के अन्तर का उन्होंने आत्म-चिन्तन व मनन में ही उपयोग किया। पाचो दिन पूर्ण मौन रखा। आहार में एक समय फल व शाम को दूसरी बार दूध लिया। पवनार नदी के किनारे उसी जमना-कुटीर में ये पाच रोज बीते, जहा पूज्य विनोबाजी ने भी पिछले दिनो अपना निवास-स्थान बना रखा था। विनोबाजी के चन्द साथियो के अतिरिक्त वहा उस समय एक कपिला नाम की गोमाता भी थी, जिसकी सेवा में जमनालालजी मातृ-सेवा का सुख अनुभव करते। पाचवें रोज सायकाल की प्रार्थना के बाद उन्होंने मौन छोडा और उस समय जो-जो लोग अपने निकट थे, उनके सम्मुख अपना हृदय खोलकर रख दिया।

सबसे पहले उन्होंने 'मौन' के ही सम्बन्ध में कहना शुरू किया

"पहली बार मैंने इस प्रकार करीब १२५ घटे मौन का सुख अनुभव किया। जेल में तथा बाहर मैंने १२ व १४ घटे का मौन तो कई बार रखा था, परन्तु इस प्रकार लम्बे मौन का यह अनुभव पहला ही है। यो तो मेरी श्रद्धा पहले से ही मौन पर थी, परन्तु अब वह अनेकविध बढ गई है। मेरे अनुभव से मैं यह कह सकता हूं कि मौन के कारण कोई काम रुकता तो है ही नहीं, थोडे समय में अधिक काम होता है और अधिक सुन्दर होता है। गैरजरूरी बातें न बोलते रहने से फिजूल समय भी बर्बाद नही होता।"

वे तो शायद गैरजरूरी विचार भी नही करना चाहते थे। पूज्य बापूजी ने अपने बयान में इसीलिए उनके इस गुण का उल्लेख करते हुए कहा है

कि अन्त में उन्होंने अपने विचारो पर भी इतना कब्जा कर लिया था कि वे अनावश्यक विचार भी दिल मे नही आने देना चाहते थे। इन दिनो उनकी विचारधारा व उनका जीवन कुछ इसी तरह अधिक वैराग्यशील होता दिखाई देता था। एक-एक क्षण का सदुपयोग करते हुए वे दिखाई देते थे। गोसेवा के काम की उनकी लगन, परिश्रमशीलता व तन्मयता को देखकर तो उनके साथी, सहयोगी, भक्त एव इर्द-गिर्दवाले सभी हैरान हो जाते। कितना विकास हो चुका था उनका इन दिनो ! किसी अनन्त की साधना—अखण्ड, अटूट साधना—करते हुए दिखाई देते। हर सास के साथ, हर क्षण, हर व्यक्ति से बात करते समय, उठते, बोलते, खाते-पीते, सोते, गर्जेकि पल-पल उनका अन्तर किसी ऐसी वस्तु की खोज में व्यस्त दिखाई देता, जिसका समझना सबके लिए असम्भव था।

और जिस सुख की खोज में वे अन्त तक रहे, उसीके लिए साधन जुटाते रहे। जो बातें इस साधन के लिए सहायक नही मालूम हुई, उन्हे प्रयत्न-पूर्वक त्यागते रहे और अन्त में जिसकी खोज करते थे, उसे पाकर रहे।

'मौन'-सबधी अपने अनुभव के उद्‌गारो के बाद उन्होंने फिर कहना शुरू किया—"एक व्यापारी के नाते मैं प्रतिवर्ष अपने जन्म-दिन के अवसर पर अपना पूरा हिसाब जाच लेता हू। अबतक की अपनी कमजोरियो में से मैं किन-किनको दूर कर सकता हू और अपनी मानसिक उन्नति के मार्ग में अब भी क्या-क्या रुकावटें हैं—इनका विचार करके, उनका इलाज ढूढने की आदत मैंने डाल रखी है। दो-तीन वर्ष पहले मुझे यह भय था कि शायद मैं अपनी कमजोरियो को अपने जीवन-काल में दूर न कर सकू। तब मैं विचार करता था कि फिर इस शरीर को पृथ्वी पर बोझ-रूप बनाये रखने से क्या लाभ है ?" स्व श्री छोटेलालजी की याद इस सिलसिले में उन्हे अक्सर आ जाया करती है। छोटेलालजी बीमार थे। बापू उन्हे देखने के लिए सेवाग्राम से आते। वे इसे बर्दाश्त न कर पाते, अपने-आपको बोझ-रूप मानते। इसलिए उन्होने कुए में गिरकर प्राण दिये। जमनालालजी के दिल पर इस घटना का काफी असर रहा। परन्तु अन्त में उन्हे मार्ग मिला—"मै कुछ

निराश-सा होगया था। परन्तु ईश्वर-कृपा से मुझे बल मिला। सामाजिक व राजनैतिक जीवन में बड़े-से-बड़े सम्मान पा चुका हूं, परन्तु उधर मेरी रुचि अब नहीं है। मैं तो सत्ता व राजनीति के चुनाव से दूर रहना चाहता हूं। सारी सृष्टि को माता के रूप में देखकर अपनी पुत्र-भावना का विकास करना चाहता हूं। यह मार्ग मुझे मेरी गोमाता ने दिखा दिया है।"

इसके बाद के उनके शब्द और भी मौलिक थे—"गैया कितनी ही छोटी क्यों न हो, चाहे उसे दुनिया में आकर एक वर्ष ही क्यों न हुआ हो, उसे देखकर हमारे दिल में मातृ-भाव ही जाग्रत होना है। इसीलिए गोमाता की सेवा का यह व्रत मैंने ले लिया है। प्रत्यक्षरूप से गोमाता की और अप्रत्यक्ष रूप से मातृजाति की सेवा करने का मैंने संकल्प किया है। अन्य प्रवृत्तियों की ओर अब मेरा आकर्षण ही नहीं रहा। हां, जिन-जिन मित्रों या संस्थाओं से मेरा सम्बन्ध अबतक रहा है, उनकी मैं जहां भी रहूं, वहां से यथाशक्य सहायता व सेवा करता रहूंगा। अब और कोई भाव मेरे दिल में नहीं आते। मुझे आज संतोष है।"

पुण्यात्मा की और क्या व्याख्या होनी है? अपने निजी आय-व्यय का ब्यौरा भी उन्होंने बतला दिया। कहा, "मेरी इच्छा है कि मेरे जीवन-काल में ही सारा धन सार्वजनिक कामों में लग जाय।" ये सब बातें उन्होंने अपने विदाई के दो माह पूर्व पवनार नदी के किनारे शीतल चन्द्र-प्रकाश में, नीरव बेला में, बड़ी सहज-सरलता-पूर्वक कह डाली थीं। वे शब्द अबतक हमारे कानों में ज्यों-के-त्यों गूंज रहे हैं।

जिस दिन उनकी आत्मा विश्वात्मा में लीन होगई, उसी दिन प्रातःकाल की बात है। वे अपने निवास-स्थान में कार्यकर्ताओं के साथ छोटे-बड़े सबके साथ, बातचीत कर रहे थे। उनका वात्सल्य सभीपर सदा समान रूप से बरसता था। काम की बातें खत्म करके उठते समय उन्होंने कहा—"मेरा खयाल है, मैंने अपने जीवन में किसीका दिल नहीं दुखाया।"

और चार घड़ी के बाद ही सारे देश को उस दुखदाई खबर ने [illegible] दिया।

: ४७ :

नेता भी, बुजुर्ग भी

जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'

स्वर्गीय श्री जमनालालजी बजाज के सपर्क का जो थोडा-सा अवसर मुझे मिला, उसमें मेरे हृदय पर उनके कुछ मानवीय गुणो का काफी गहरा प्रभाव पडा। मैंने अनुभव किया कि वे मनुष्य की जाच गहराई से करते थे। उनका सुलझा हुआ दिल और दिमाग शीघ्र ही निश्चय पर पहुच जाता था। एक बार जिसपर विश्वास करने का वह निश्चय कर लेते थे, उसके प्रति सदा आत्मीयता का व्यवहार करते थे। उनकी इस विश्वास-वृत्ति से उनके लोक-सग्रहकारी स्वभाव को बडी सहायता मिली थी। देश के दूर-दूर के, तथा विभिन्न स्थानो के विभिन्न व्यक्तियो को लाकर वर्धा में एकत्र करके उनकी सेवाओ का लाभ वहा की विभिन्न सस्थाओ को पहुचाने की तीव्र इच्छा से उन्होंने वर्धा को एक महत्वपूर्ण सास्कृतिक तीर्थ बना दिया था। अपने निश्छल विश्वास का फल उन्हे मीठा ही मिला। जहातक मुझे ज्ञात है, कुछ अपवादो को छोडकर उन्हे प्राय विश्वासपात्र कार्यकर्त्ता पाने का ही अवसर मिलता रहा। मनुष्य को पहचानने मे उन्हे बहुत कम धोखा हुआ।

महात्माजी पर उन्हे अपने प्राणो से भी अधिक प्रेम था। वह उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में काफी विकलता अनुभव किया करते थे। एक बार इस विकलता का अत्यन्त उग्र स्वरूप मैंने देखा। पूज्य बापूजी अपने २१ दिन के उपवास के बाद मौसम्बी का रस लेने ही लगे थे और अभी काफी दुर्बल ही थे कि देवदासजी का विवाह आ पहुचा। पर्णकुटी मे, जोकि वास्तव में एक बडा भवन है, लोगो की बडी भीड उस क्रातिकारी विवाह मे सम्मिलित होने को एकत्र होगई। भीड का एक जबरदस्त रेला बापू के चरणो को छूने की इच्छा से उनकी चारपाई की तरफ बढा। कमजोर बापू के लिए अध-श्रद्धा

का यह अत्याचार अत्यन्त भयकर सकट ले आया था। उसकी कल्पना से जमनालालजी की विकलता सीमा छोड बैठी। उन्हें बडे वेग से बीच में पड कर, अपने शरीर को खतरे में डालकर भीड को रोकना पडा। उस समय अपने प्यारे बापू के लिए अपने प्राण देने में भी उन्हें कोई सकोच नहीं था।

उनकी एक यात्रा की स्मृति भी मेरे हृदय पर गहरी अकित है। उनका शारीरिक स्वास्थ्य निर्बल था और मानसिक स्वास्थ्य भी बापूजी के लम्बे उपवास के निश्चय की खबर से भग्न हो रहा था। वह अलमोडा से पूना की तरफ बडी बेचैनी से यात्रा कर रहे थे। उनके और उनके कुटुम्बियो के साथ मैं भी था। उनके स्वास्थ्य के खयाल से उन्हे बिना बताये उनके लिए सैकण्ड क्लास का टिकट खरीद लिया गया और उनका सामान सैकण्ड क्लास में चढा दिया गया। इसपर उन्होने बडी नाराजगी प्रकट की थी और थर्ड क्लास में हम लोगो के साथ बैठकर ही यात्रा करना पसन्द किया था। सामान के पास बैठने के लिए जमनालालजी अपने साथियो में से क्रमशः एक-एक को अपना टिकिट देकर सैकण्ड क्लास में भेजते थे। हर व्यक्ति उनका साथ छूटने के खयाल से थर्ड क्लास से सैकण्ड क्लास की तरफ इस तरह जाता था, जैसे उसे कोई सजा दी जा रही हो। उनकी इस यात्रा में उनके त्याग और लोकप्रियता की एक झलक एक साथ दिखाई दी।

परिचय के प्रारम्भिक दिनो से लेकर उनके स्वर्गवास के कुछ वर्ष पहले तक, उनकी एक प्रिय सस्था की सेवा के सिलसिले में कुछ समय वर्धा रहा। उनके साथ मेरे इस सम्पर्क की कहानी उनके स्नेह और मेरे दुर्भाग्य के द्वद्व की करुण कहानी है। अस्वास्थ्य तथा कौटुम्बिक उलझनो के कारण मेरा वर्धा-निवास-काल टुकडो में बँट गया। उनके स्नेह ने अनेक बार मुझे वर्धा की ओर खीचा, पर हर बार मेरा दुर्भाग्य थोडे-थोडे समय के बाद मुझे ग्वालियर खीच लाया। इस कशमकश में भी मेरे हृदय, आत्मा और जीवन ने उस महापुरुष से जो प्रेरणा पाई, उसका महत्त्व मुझ-जैसे अकिचन के लिए अतुलनीय है।

: ४८ :

उनकी देन

सरस्वतीदेवी गाडोदिया

बात सभवत १९१९ की है। उस वर्ष काग्रेस का अधिवेशन दिल्ली में हुआ था। सभापति थे पडित मदनमोहन मालवीय। दिसम्बर का महीना था। खूब सर्दी पड रही थी। इस अवसर पर हमारे घर भोजन करने जमनालाल-जी दल-बल सहित तीन-चार बार आये। मैंने किवाडो के पीछे से छिपकर कई बार उनके दर्शन किये।

एक बार वे भोजन के लिए पधारे तो वही कातना आरम्भ कर दिया। उन दिनो वे मोटा-पतला, गाठ-गठीला, सूत कातते थे। तोडते भी बहुत थे। मैंने दूसरे कमरे में से थोडा-सा पर्दा उठाकर देखा। फिर नौकर को भेजकर चर्खा अन्दर मगवा लिया और पूनी मंगाकर इकसार तारवाला सूत कात कर उनके पास भेज दिया। उन्होंने आश्चर्य के साथ वह सूत देखा और बडी प्रशसा की।

• •   • •   • •

१९२३ में बापूजी ने उपवास किया। उस मौके पर श्री जमनालालजी कूचा नटवा में हम लोगो के यहा आकर लगभग ४० व्यक्तियो के साथ ठहरे। इन व्यक्तियो में कस्तूरबा गाधी, अनुसूइया बहन (अम्बालाल साराभाई की बहन), स्वामी आनन्द, शकरलाल बैंकर आदि-आदि थे।

जमनालालजी को मैंने कई बार यह कहते सुना कि सेठ लक्ष्मीनारायणजी तो मुझसे बडे हैं, फिर मैं भौजाई के नाते उनसे क्यो नही बोलती। लेकिन मैं सुनकर भी अनसुनी कर देती थी। एक दिन बोले, "आज ग्यारस (एका-दशी) है, बादाम का शीरा खुद सेठानी बनायगी तो खाऊगा, नहीं तो नहीं।" आखिर घरवालों के कहने पर मैंने खुद ही बादाम भिगोकर छीले और

हलवा तथा बर्फी बनाई। वे दो और सज्जनो को साथ लेकर आये थे। मैंने खाना परोस दिया।

उन्होने कहा—"मुझसे बोलोगी तो खाऊगा, नही तो बिना खाए ऊपर चला जाऊगा। बोलो, राजी हो न ?" इस प्रकार उनका आग्रह देखकर मैं बोलने के लिए राजी होगई। उसके बाद उन्होने जीम लिया और उसी दिन से बोलना भी चालू होगया।

१९२७ में जब गुरुकुल की शताब्दी मनाई गई तो वहा उन्होंने पर्दा तुडवाकर साथ भोजन कराया। बापूजी भी उस अवसर पर उपस्थित थे।

.. .. ..

जमनालालजी के ससर्ग से ही मुझे अमृतसर-कांग्रेस में जाने का अवसर और नेताओ से परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य मिला। १९३४ में बापू के बुलाने पर जब गाडोदियाजी वर्धा गए तो बापू और जमनालालजी दोनो ने ही पूछा कि सरस्वतीदेवी को क्यो नही लाये ? इसपर उन्होंने वर्धा से लौटकर मुझे सेक्रेटरी के साथ वहा भेज दिया। कई दिन तक मैं वहा रही।

१९३८ में मैंने मौलवी अब्दुल मजीद से प्राकृतिक चिकित्सा सीखी। बाद में बापू ने हमें तार देकर वर्धा बुलाया। हम वहा गए और दोनो ने मिलकर बापू का प्राकृतिक इलाज किया। मैं बराबर सेवाग्राम में रही और बापू की चिकित्सा मिट्टी-पानी से की जाती रही। बाद मे हम दिल्ली लौट आये।

जनता-जनार्दन की सेवारूपी चक्की में पिसते-पिसते भाईजी (जमनालालजी) थक गए थे। सन १९४१ के सितम्बर महीने में वे दिल्ली आये और कहने लगे कि अब मैं गोपुरी में ही रहने का निश्चय करनेवाला हू, इसलिए दिल्ली नही आऊगा। एक ज्योतिषी को भाईजी का हाथ दिखाया। उसने बताया कि सन '४२ मे उनको महायात्रा या विदेश-यात्रा करनी पडेगी। उस बार मैं उन्हें ट्रेन पर चढाने आई तो यह न समझ सकी कि भाईजी हमसे हमेशा के लिए विदा ले रहे हैं।

: ४६ :

साहसी और निर्भीक

पढरीनाथ अवुलकर

१९२२ में भडारा जिला राजकीय परिपद् निश्चित की गई थी। मजिस्ट्रेट ने शहर में १४४ दफा जारी कर दी। दूर-दूर से आये लोग किंकर्तव्य-विमूढ होगए। जमनालालजी ने सबको जोश दिलाते हुए शहर से कुछ मील दूर (स्टेशन के पास) परिपद् की और उसको सफल बनाकर दिखाया।

१९३४ में देश की शिथिलता को दूर करने के इरादे से उन्होने विदेशी वस्त्र-वहिष्कार-आन्दोलन शुरू किया। उसी सिलसिले में खामगाव पहुचने के पहले रास्ते में मैंने श्री सतपाचले गावकर और उनके सर्पदंश के अद्वितीय प्रयोगो का उनसे जिक्र किया था। खामगाव पहुचने पर जमनालालजी ने महाराज के बारे में पुछवाया। योगायोग से महाराज भी उस दिन वही थे। महाराज ने अपने पास के साप उन्हें दिखलाए। सापो के गुण-धर्म तथा जहरीलेपन का वर्णन करते-करते एक कोबरा नाग महाराज ले आये, जिसके दश से तुरत मृत्यु हो सकती थी। महाराज ने उसके जहरीले दात दिखाकर जमनालालजी से कहा, "बोलो, कटवाओगे?" एक पल का भी विलम्ब न करते हुए उन्होने अपना दाहिना हाथ सामने कर दिया। वह कोबरा था ही। बडे जोर से जमनालाल को काट खाया। जमनालालजी तनिक भी अस्वस्थ नही हुए। अलबत्ता थकान के कारण मलकापुर में रात को थोडा ज्वर हुआ। श्री जानकीदेवी कुछ घबराईं। हम भी थोडे घबराए। रात को ही खामगाव जाकर महाराज से कुछ अगारा (भस्म या रक्षा) सुबह ही मलकापुर लाई गई। जमनालालजी को हम लोगो की परेशानी-भरी हलचलो का पता लगा, तब वे साथियो की दुर्बलता और कायरता पर बहुत हँसे।

: ५० :

बहुगुणी

नरदेव शास्त्री

जिस वर्किंग कमेटी में अंग्रेजी के दिग्गज पडित हो वहा जमनालालजी अंग्रेजी के विज्ञ न होते हुए भी अपने चातुर्य से वर्किंग कमेटी के सदस्यो पर अपनी अमिट छाप छोडते थे। इससे स्पष्ट है कि वे नितान्त दक्ष पुरुष थे। जरा किसीने कुछ कहा कि प्रथम वाक्य को सुनते ही वे वक्ता के अगले वक्तव्य को भाप जाते थे, ऐसे विचक्षण पुरुष थे स्व० जमनालाल बजाज!

महात्मा गाधी-जैसे ससार के महापुरुष को अपने वश में लाना, उनकी महात्माजी के प्रति अगाध भक्ति का परिचायक है। भक्तो के वश में जब साक्षात् भगवान आ सकते हैं, आ जाते हैं, तब भक्त और शक्त जमनालालजी का महात्माजी को वश में करना कौन कठिन बात थी!

मेरा और स्व० जमनालालजी बजाज का परिचय सन् १९१९ से ही रहा है, जबकि मैं काग्रेस के कार्यक्षेत्र में प्रत्यक्ष रूप में उतरा था। सन् १९१९ से १९३१ तक मैं आल इडिया काग्रेस-कमेटी में रहा। अत उसके प्रत्येक अधिवेशन में उनसे किसी-न-किसी विषय पर बातचीत करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। प्रति वर्ष काग्रेस के महाधिवेशन में भी उनसे मिलने का मौका मिल जाता था। वे बोलते कम थे, क्रियात्मक कामो में चुप-चाप जुट जाते थे और उनके चुपचाप प्रारभ किये हुए कार्यों का पता उनके महाफलो से ही चलता था। काग्रेस का कौन-सा ऐसा काम रहता होगा, जिसमें उनका हाथ काम न करता होगा? ऐसा कौन-सा कार्य होगा, जिसमें वर्किंग कमेटी के सदस्य अथवा महात्मा गाधी उनसे परामर्श न लेते रहे होगे?

उन्होंने अपने जीवन द्वारा अपनेको केवल कुशल व्यापारी ही सिद्ध

नहीं किया, अपितु पात्रवर्षी पर्जन्य की तरह पात्र-वर्षी महादानी, कुशल सत्याग्रही, विचित्र दूरदर्शी भी सिद्ध किया।

• •　　　　• •　　　　• •

एक बार कलकत्ते में आसाम-बंगाल का हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन था। महात्मा गांधी इस सम्मेलन के अध्यक्ष थे और स्वागताध्यक्ष सुभाषबाबू थे। जब सब कार्रवाही हो चुकी तब सम्मेलन की सहायता के लिए अपील की गई। महात्माजी की अपील पर चारों ओर से धन बरसने लगा। पर इसको इकट्ठा कौन करता? महात्माजी ने जमनालालजी की ओर देखा। जमनालालजी ने खड़े होकर एकदम दस-बारह आदमियों के नाम बोल दिये कि भीड़ में जाकर धन संग्रह करें। मेरा नाम भी बोला गया। हम लोग आश्चर्य में पड़ गये कि इतनी शीघ्रता में उन्होंने हमारे नाम कैसे बोल दिये, मानो वे पहले से ही हमारी ताक में थे कि ऐसा मौका आया तो हम लोगों का नाम ले देंगे। अपूर्व दक्षता थी उनकी।

• •　　　　• •　　　　• •

रामगढ़-कांग्रेस के अवसर पर मेरी उनकी भेंट हुई थी। तब मैंने उनको शरीर से दुर्बल पाया। मैंने कहा, "सेठजी, क्या बात है, इतना दुर्बल तो मैंने आपको कभी नहीं देखा था?" एकदम हँसकर बोले, "शरीर का काम शरीर करता रहेगा, हम अपना काम करते रहेंगे। हमारे काम में कोई रुकावट नहीं है।"

प्रत्यक्ष है कि ऐसा उत्तर वही व्यक्ति दे सकता था, जो कि स्वशरीर में अध्यास न रखता हो।

• •　　　　• •

एक बार जमनालालजी देहरादून पधारे। आते ही बोले कि दिनभर के लिए एक मोटर ठहरा दो। हम एक मोटरवाले से बातचीत कर रहे थे। इस बातचीत को जमनालालजी ने सुन लिया। उन्होंने झट ताड़ लिया कि मैं अधिक पैसे दे दूंगा। तुरत बोले—"शास्त्रीजी, इन कामों को आप नहीं कर सकेंगे। हम ठीक कर लेते हैं।"

बात ठीक थी। मैं तो मोटरवाला जो भी मागता, दे देता। श्रीजमनालालजी ने आवे में ही सब काम ठीक कर लिया।

जयपुर के सत्याग्रह में उन्होंने निर्भयता का जो परिचय दिया, वह महात्मा गांधी के परम शिष्य जमनालालजी के योग्य ही था। वहा के सत्याग्रह के पहले तथा पीछे मुझे जयपुर-राज्य के कतिपय स्थानों में जाने का अवसर मिला था। लोग जमनालालजी को बडे गौरव के साथ 'जयपुर राज्य का गाधी' कहते थे।

• •

शतेषु जायते वीरः सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता दश सहस्रेषु त्यागी भवति वा न वा।

एक नीतिकार का वचन है कि ढूढने निकलो तो सैकडो मे एकाध शूरवीर पुरुष मिल ही जायगा, हजारो में एकाध पडित भी मिल जायगा, ढूढो तो दस सहस्र व्यक्तियो में एकाध अनुपम वक्ता भी मिल जायगा, पर ढूढने निकलो तो त्यागी पुरुष का मिलना कठिन है। स्व० जमनालालजी इसी चतुर्थ कोटि के पुरुष थे। उनका सग्रह भी त्याग के लिए ही था।

• • • • • •

यदि मुझसे कोई पूछे कि स्व० जमनालाल बजाज क्या थे तो एक ही वाक्य में कहूगा कि वे थे काग्रेस-आकाश-मडल के देदीप्यमान उज्ज्वल तारे। टूटते-टूटते भी वे देश को इतना अमित प्रकाश दे गये है कि उस प्रकाश से भविष्य में बहुत काम निकल सकेगा।

: ५१ :

विलक्षण पुरुष

ठाकुरदास बंग

एक बार काकाजी ने मुझे एक पत्र लिखने को कहा। पत्र बहुत बड़े व्यक्ति के नाम जाना था, सो मैंने लिफाफे का उपयोग किया। उनके पास जब गया तो उन्होंने कहा, "पोस्टकार्ड से काम चल जाता। एक पैसा बचता।" उन दिनो लिफाफे की कीमत चार पैसे और कार्ड की तीन पैसे थी। उन्होंने लिफाफा न भेजकर कार्ड लिखने को कहा। पत्र लिख गया तो वही जा सकता था, लेकिन उससे आगे के लिए शिक्षा कैसे मिलती ? सच यह है कि वह पैसे का अपव्यय सहन नही कर सकते थे। आज उन-जैसे व्यक्तियो का अभाव बहुत अखरता है।

एक बार एक धनी युवक ग्रेजुयेट काकाजी के पास रहने को आया। चार-छ महीने रहा। काकाजी ने उसे राष्ट्र-सेवा की दीक्षा देने का पूरा प्रयत्न किया, लेकिन वह युवक ठहर नही पाया। काकाजी बड़े दु ख के साथ मुझसे कहने लगे, "जो धनी है, जिसे पैसे कमाने की जरूरत नही है, वह भी देश-सेवा के अर्थ कमाने को छोडता नही। जो गरीब है, वह आवश्यकता के लिए कमाता है। वह भी देश-सेवा की ओर आता नही। तब देश-सेवा कौन करे ?"

ऐसा कहते समय उन्हे अत्यन्त दु ख हो रहा था, यह मै स्वय अनुभव कर रहा था। बड़े ही कातर स्वर से वे इन शब्दो को बोले थे।

एक बार साम्यवादी विचारधारावाले एक युवक को मै उनके पास ले गया। उन्होंने उससे कहा, "तुम देश-सेवा में लग जाओ। निर्वाह का प्रबध हो जायगा।"

मैंने कहा, "यह तो साम्यवादी विचार रखता है।"

उन्होंने सबको आश्चर्य-चकित करते हुए कहा, "इन बातों का मुझे डर नहीं है। वह देश-सेवा करने लग जाय तो खुद-ब-खुद उसे बापूजी की विचार-धारा का महत्व जच जायगा। हवा में बातें होती हैं तबतक ही 'वाद' चलते हैं। धरती पर पैर जमे कि अहिंसा, रचनात्मक कार्यक्रम आदि सब आ जायगे।" मैं उनकी देश-सेवा की लगन और व्यवहार-बुद्धि को देखकर दग रह गया।

एक बार काकाजी मुझसे पूछने लगे, "आज जो बुराइया भारत में दीख रही है, इसका कारण अग्रेजी राज है या और कुछ ?"

मैंने जोश में आकर कहा, "अग्रेजी राज।"

उन्होंने पूछा, "हममें कुछ चरित्रहीनता थी, इसलिए अग्रेजी राज आया या नही ?"

मैं कुछ कहूं कि उसके पहले ही उन्होंने कहा, "अग्रेजो के आने के पूर्व ही हममें काफी बुराइया थी। इसीलिए उनका राज यहा आया और जमा। केवल अग्रेजी राज को दोष देना न तो सत्य से मेल खावेगा और न इससे अपनी बुराइया ही दूर होगी।"

मुझे लगा, काकाजी कितना गहरा सोचते थे और सत्य के प्रति उनकी कितनी गहरी निष्ठा थी। अग्रेजी राज से लोहा लेनेवाला यह महापुरुष सत्य को कभी नही भूलता था।

: ५२ :

वापू के स्वास्थ्य के रखवाले

लीलावती आसर

सन् १९३४-३५ का प्रसग है। पू० वापूजी को वहुत ही व्यस्त रहना पडता था। इससे उन्हे रक्तचाप की बीमारी बढ गई। डाक्टर ने सलाह दी कि वे पूर्णतया शारीरिक और मानसिक रूपसे विश्राम ले। उन दिनो वापूजी मगनवाडी मे रहते थे। उनके आराम से रहने का भार काकाजी पर था। वे इस वात की पूरी ताकीद रखते थे कि आश्रम का कोई व्यक्ति उनसे न मिले। वाहरी लोगो की मुलाकात पर भी वे नियत्रण रखते थे। पत्र-व्यवहार की भी देख-रेख वे ही करते थे। यह सब होते हुए भी वापूजी की तबीयत ठीक नही होती थी। आखिर काकाजी वापूजी को महिला-आश्रम मे ले गए। वहा भी वे उनकी देखभाल अच्छी तरह करते थे। बा और महादेवभाई के सिवा किसीको भी वापूजी के पास जाने की छूट नही दी। वे खुद भी वापूजी से दूर रहते थे। जानकीदेवी को भी उनके पास नही जाने देते थे। शाम को प्रार्थना के बाद वापूजी के स्थान के दरवाजे पर खडे रहते और किसीको भी उनके पास न जाने देते। एक वार मै वहुत ऊव गई थी और वापू के पास जाने को उत्सुक थी। मेरा असन्तोष देखकर महादेवभाई ने मुझसे कहा, "मै शाम को उनके पास जाऊगा तव तुम्हें अपने साथ ले जाऊगा।" हम शाम को महिला-आश्रम गए। हमेशा की तरह काकाजी दरवाजे पर खडे थे। महादेवभाई ने मुझे अन्दर ले जाने की उनसे आज्ञा मागी। उन्होने कहा, "महादेव! अगर मै लीलावती को अन्दर जाने दू तो दूसरे किसीको कैसे रोक सकूगा?"

महादेवभाई वडे असमजस मे पड गए। उन्हें इस बात का पछतावा

हुआ कि उन्होंने मुझे अन्दर ले जाने का वचन दे रक्खा है। काकाजी और महादेवभाई का आपस में सगे भाइयों से भी ज्यादा प्रेम था। दोनों ही की बापू के प्रति समान भक्ति थी। इस निकट सम्बन्ध को लेकर ही महादेवभाई ने यह मान लिया था कि वे मेरेलिए काकाजी से बापू के पास जाने की छूट ले लेंगे और इसीलिए वे मुझे विश्वासपूर्वक साथ ले गए थे। काकाजी की दृढ़ता देखकर वे स्तम्भित रह गए और दुःखी भी हुए। उन्होंने कहा, "अच्छा, तो मैं लीलावती को वापस ले जाता हूं मैं भी बापू के पास नही जाता।"

उस दिन वे बापू के पास नही गए। दूसरे दिन सवेरे भी नही गए। काकाजी अकुला उठे, परन्तु वे इस बात को बापू तक नहीं जाने देना चाहते थे, क्योंकि वे बापू के स्वास्थ्य की रखवाली कर रहे थे और परेशानी और घबराहट की कोई भी बात उनसे नहीं कहना चाहते थे। उनका यह ध्येय था कि बापू को किसी भी तरह का मानसिक सन्ताप नहीं होना चाहिए। महादेवभाई की गैरहाजिरी का असर बापू पर होगा, यह जानकर उन्होंने महादेवभाई को यह चिट्ठी लिखी—"तुम लीलावती को लेकर पू॰ बापू के पास जा सकते हो।" और शाम को वे खुद मगनवाडी आयें। उनके साथ सरदार वल्लभभाई भी थे। उन्होंने महादेवभाई से कहा, "महादेव, क्या यह गुस्सा करने का समय है? बापू क्या सोच रहे होंगे, इसकी कल्पना है क्या? तुमने भले ही लीलावती को वचन दिया हो। उसे ले जाओ, मुझे इसमें कोई आपत्ति नही है।" इसके बाद सरदार ने मजाकिया उनसे कहा, "महादेव, अब तो मान गए न। हम दोनों तुम्हें मनाने आये हैं। अभी और कितना मनवाओगे?" उसके बाद दोनों हँस पडे।

मैंने कहा, 'महादेवभाई! भले ही बापू के पास जाय मुझे जाने की कोई खास जरूरत नहीं है और न मेरा कोई आग्रह है।" काकाजी मेरा कान पकड़कर बोले, "तेरी नाक बडी लम्बी है। चल, अब ज्यादा अकलमन्दी दिखाए बिना तांगे में बैठती है या नहीं? बापू के पास रोना बिल्कुल नहीं और न वहा जबान खोलना।" इस तरह काकाजी ने विनोद किया।

इसके बाद हम बापू के पास गए। बापू ने काकाजी से कहा, "आज तो कुछ उदार होगए हो। लीलावती की तकदीर खुल गई दीखती है।"

काकाजी और महादेवभाई हँस पडे। सरदार ने मजाक में कहा, "आपकी और बा की खिलाई हुई लडकी है न, और रोकर बात मनवाने की शिक्षा भी आपने दे रखी है।" इस तरह हँसी-मजाक की कितनी ही बातें हुईं।

हमने काकाजी के यहा भोजन किया और सारा दिन महादेव-भाई काकाजी के साथ नाराजगी का बदला चुकाने के लिए प्रेमपूर्वक बातचीत करते रहे।

काकाजी की मृत्यु का समाचार सुनकर महादेवभाई को भारी आघात पहुचा। सेवाग्राम टेलीफोन आया तो महादेवभाई घर में आते हुए आगन में ही चक्कर खाकर गिर पडे। वे कहा करते थे कि जमना-लालजी के बिना मै बापू की कल्पना नही कर सकता। उनकी वेदना उन दिनो के लेखो में फूट पडी।

वे दोनो बापूजी की आखो के समान थे। दोनो बापू के बिना जीवन धारणकर सकेंगे, ऐसा नही मालूम होता था। दोनो हमेशा यह इच्छा रखते थे कि वे बापू के जीतेजी उनमें समा जाय।

और जैसे ईश्वर ने उनकी प्रार्थना सुन ली हो, दोनो को कुछ ही महीने के अन्दर अपने पास बुला लिया। महादेवभाई और काकाजी दोनो का यह कहना था कि हम ससार के भारी-से-भारी सकट सह लेंगे, प्यारे-से-प्यारे मित्र, पुत्र का वियोग भी सह लेंगे, पर बापूजी को कभी कुछ हुआ तो कैसे सहन कर सकेंगे ? उनकी भावना और श्रद्धा इस प्रकार की थी। उन दोनो को बापूजी के पहले ही भगवान् ने उठा लिया और उनकी टेक रख ली।

: ५३ :

मानव के रूप में देवता

बद्रीनारायण सोढाणी

सन् १९३४ के अप्रैल या मई महीने की बात है। मैं नालवाडी से चलकर पूज्य बापूजी के साथ रहने की उनसे अनुमति लेने गया था और उनसे स्वीकृति लेकर वापस आश्रम से लौट रहा था। इतने में जमनालालजी, जो वहीं थे, मुझसे पूछ बैठे कि आप कहा से आये हैं और क्या करते हैं? उस समय तक मैं उनके नाम से परिचित था, पर व्यक्तिगत परिचय नहीं था। मेरे यह कहने पर कि मैं सीकर का रहनेवाला हू और आजकल पूज्य विनोबाजी के पास नालवाडी में रहता हू, उन्होंने मुझसे सीकर के और कई सार्वजनिक व्यक्तियों के बारे में पूछताछ की। उस रोज इतनी ही बात हुई और मैं नालवाडी चला गया। दूसरे या तीसरे दिन जमनालालजी ने राधाकृष्णजी को उलहना दिया कि इस तरह सीकर का एक व्यक्ति आश्रम में रहता है और तुमको पता तक नहीं! मैंने सोचा था कि मेरे-जैसे साधारण व्यक्ति उनके सामने कई आते होंगे, इसलिए अपने बारे में उनसे कुछ भी कहना उचित नहीं समझा।

पाच-सात दिन बाद कांग्रेस-कार्य-समिति की बैठक बजाजवाडी में होने-वाली थी। जमनालालजी ने उस समय मुझे अपने बगले पर बुलाया और मेरे पारिवारिक इतिहास की जानकारी ली। पिता जैसे पुत्र को रखता है, ठीक उसी प्रकार उन्होंने मुझे अपने पास रखा और धीरे-धीरे वे मुझसे एक प्रकार से प्राइवेट सेक्रेटरी का काम लेने लगे। उन दिनों हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन इन्दौर में होनेवाला था, जिसकी अध्यक्षता बापूजी ने इसी शर्त पर कबूल की थी कि सम्मेलन के सगठनकर्ता उन्हे एक लाख रुपये की थैली भेंट करेंगे। इस वादे की पूर्ति के लिए जमनालालजी इन्दौर गये तो मैं

भी उनके साथ था। करीब तीन महीने तक मैं उनके पास रहा और इस अर्से में वे मेरा बराबर बच्चों की तरह ध्यान रखते रहे। किसी कारणवश मुझे अपने व्यापार के सम्बन्ध में बर्मा जाना पड़ा। करीब दो साल तक मेरा उनसे पत्रों से ही मिलना होता रहा। सीकर-आन्दोलन में फिर उनका मार्गदर्शन मिला। यद्यपि वहा की पब्लिक कमेटी ने उनकी सलाह नही मानी, फिर भी वे कीमती सलाह बराबर देते रहे। उसके बाद जयपुर-प्रजा-मण्डल की स्थापना हुई और सीकर का काम उनके मार्गदर्शन में मैं देखता था। जब कभी वे सीकर आते, मेरे घर पर एक बार जरूर आते और मुझसे मारे परिवार की जानकारी लेते। जब कभी वे मुझे दिक्कत में देखते, तुरन्त मदद कर देते। इस प्रकार के व्यक्तिगत सम्बन्ध से उन्होंने मुझे खरीद-सा लिया था और मेरा सार्वजनिक जीवन भी उनकी प्रेरणा से ही शुरू हुआ।

सन् १९४२ के फरवरी मास की बात है। मैं और श्री लादूरामजी जोशी वर्धा गये और बजाजवाड़ी में उतरे। देखते ही उन्होंने उलहना दिया कि देर से क्यों आये। हम गये थे, उस दिन 'गो-सेवा-संघ की कॉफ्रेंस' हुई थी। इस उलहने का हमारे पास कोई जवाब नही था।

मैं अपना परम सौभाग्य मानता हू कि उस समय मैं वर्धा पहुच गया था। ११ फरवरी को मैं और जोशीजी बजाजवाडी में नाश्ता कर रहे थे। इतने में जमनालालजी आये और लादूरामजी को सम्बोधित करते हुए बोले, "आपका कुरता भी दूध पी रहा है।" बात यों हुई कि श्री लादूरामजी उनको देखते ही प्याले का ध्यान भूल गये और उनकी तरफ देखने से प्याले का दूध उनके कुरते पर गिर गया।

उसके बाद तो एक ऐसी घटना घटी, जिसको जिन्दगीभर नही भूल सकते। भरतपुर की तरफ के कुछ भाई वर्धा देखने गये थे। वे बीमार हो गये। किसी तरह इनकी जानकारी जमनालालजी को हुई तो वे स्वय वर्धा गये और जिस धर्मशाला में वे भाई ठहरे हुए थे, वहा जाकर उनकी दवा-दारू का प्रबन्ध किया। उनके साथ उनका किसी तरह का मेलजोल और सम्बन्ध नहीं था, पर वे तो मानव के रूप मे देवता थे। जहा कही

भी उनको कुछ पता लग जाता, वे तुरन्त सहायता के लिए चले जाते।

११ तारीख को प्रातःकाल सेठजी ने मुझे बुलाया और नोटिस दिया कि आपको बजाजवाडी से दूसरी जगह जाना है। उस दिन मार्शल ल्याग काई शेक आनेवाले थे। हम सहर्ष चले गये।

शाम को करीब ४-५ बजे का समय होगा। एक साईकिल-सवार घबराया हुआ आया, बोला—"जमनालालजी चले गये।" हमें विश्वास नहीं हुआ और ऐसा लगा कि शायद उनकी तबीयत कुछ खराब हो। उन दिनों वे नागपुर जेल से आये थे और उनकी तबीयत अच्छी नहीं थी।

हम तुरन्त बजाजवाडी की तरफ गये, पर हमारे पहुचने से पहले ही उनके प्राण-पखेरू उड चुके थे।

जमनालालजी को मैं सबकी तरह 'काकाजी' कहता ही नहीं था, बल्कि मानता भी था और जबसे वे गये हैं तबसे ऐसा लगता है कि एक सहारा चला गया। यद्यपि उनका स्वर्गवास हुए आज करीब १४-१५ वर्ष होगये हैं, फिर भी मुझे सूनापन-सा अनुभव होता है। वे सिर्फ राजनैतिक योद्धा ही नहीं थे, बल्कि विधायक दृष्टि से भी निर्माणकर्ता थे। मैं समझता हू, सार्वजनिक कार्यकर्ताओ मे जितने जमनालालजी घुले-मिले, उतना शायद ही और कोई घुला-मिला हो।

मैं उनकी निजी लिखा-पढी भी करता था। वे अपनी डाक को तीन भागो में रखते थे। एक में काम दिलानेवालो के पत्र होते थे, दूसरे में बीमारो के तथा तीसरे में विवाह-शादी के और कार्यकर्ताओ की कठिनाई के। इनके अलावा दूसरे विषय वे बहुत कम रखते थे।

: ५४ :

सेवा-मार्ग के प्रेरक

रामेश्वर अग्रवाल

जीवन-नैया को मझधार से किनारे लगाकर जीवन देनेवाली स्मृतिया मानव-जीवन मे बहुत वार नही आती। जीवन में कुछ ही घटनाए ऐसी होती हैं, जो अपनी अमिट छाप छोड जाती है। वर्षों बीत गये, युग गया, पर वह स्मृति आज भी कितनी ताजा है—जैसे कल की-सी बात हो!

सम्भवत १९२८ की बात है। रीगस खादी-आश्रम में सेठजी आये थे। कलकत्ते से व्यापारिक सिलसिले में मैं भी उधर पहुच गया था। अजमेर में मारवाडी अग्रवाल महासभा का अधिवेशन था। उनके गुण-गान सुनकर हृदय उनकी तरफ आकर्षित हो चुका था। तीसरे दर्जे के डिब्बे में साथ सफर करते हुए देखा कि कितनी सादगी इस व्यक्ति में है। इतना वडा आदमी होते हुए भी बाजरे की रोटी का गुड के साथ सुबह का नाश्ता ट्रेन में हो रहा है। श्री मूलचन्दजी अग्रवाल ने परिचय करवाया तो सेठजी मुस्कराते हुए बोले—"आपके-जैसे युवको की खादी के काम के लिए बहुत जरूरत है, पर आप तो पैसा कमाने में लगे हो!"

पता नही, उस महान् आत्मा के शब्दो में क्या जादू था! कलकत्ता जाने पर उनके ये शब्द मेरे कानो में बराबर गूजते रहे। श्री महावीरप्रसादजी पोद्दार के सत्सग से मैं कलकत्ते से निकल सका। पर मेरी क्या बिसात? आज जिधर देखो, एक ही आवाज आ रही है। श्री देशपाडेजी कहते है—"मुझे राजस्थान में वे ही लाये।" श्री मदनलालजी खेतान कहते है—"मुझे भी बिहार-चर्खा-सघ में से वे ही इधर लाये।" कौन जानता है कि उन्होंने कितने व्यक्तियो को सेवा-मार्ग में लगाकर उनको नया जीवन दिया?

: ५५ :

सादगी के प्रतीक

रुक्मिणीदेवी बजाज

साबरमती-आश्रम में जब कोई विशिष्ट व्यक्ति आते थे तो उनकी देख-रेख का भार अक्सर पिताजी (स्वर्गीय मगनलालजी गांधी) पर ही रहता था। इसलिए प्राय. सभी मेहमानो से हम लोगो का परिचय हो जाया करता था। इसी तरह जमनालालजी से भी बचपन में ही जान-पहचान होगई थी। पिताजी अकसर उनके गुणो का बखान हम लोगो के सामने किया करते थे। पिताजी की और उनकी मित्रता दिनोदिन बढती गई। हम लोग भी 'काका' कहकर उनको सम्बोधित करने लगे तथा उनको बुजुर्ग की तरह मानने लगे।

गोहाटी-काग्रेस के पहले वे काफी दिनो तक सपरिवार आश्रम में ही रहे। उस समय उनके पूरे परिवार के साथ निकट सम्पर्क में आने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ। गोहाटी-काग्रेस में जाने के लिए पिताजी तथा जमनालालजी साथ ही साबरमती से चले। वर्धा होकर जाने का उनका प्रोग्राम बना। मेरी तबीयत उन दिनो अच्छी नही रहती थी, इसलिए जमनालालजी ने मुझे अपने साथ वर्धा ले जाने की इच्छा प्रकट की। पिताजी की स्वीकृति पाकर मैं भी वर्धा आगई।

वर्धा में मैं जमनालालजी के साथ ही ठहरी। वहा मैं पुन बीमार पड़ी। डाक्टरो ने अपेंडिसाइटिस का निदान किया। इसलिए गोहाटी-काग्रेस न ले जाकर मुझे साबरमती वापस भेज दिया गया, जहा करीब तीन महीने बाद मेरा आपरेशन हुआ। उन दिनो जमनालालजी सासवन में सपरिवार आबहवा बदलने के लिए गये हुए थे। किसी कार्यवश साबरमती आये और यह देखकर कि मुझे जलवायु बदलने की जरूरत है, लौटते

समय मुझे भी अपने साथ ही सासवन लेते गये ।

सासवन में उन दिनों आमों की बहार थी। वहा मुझे आमो को समालने और सवारने का काम दिया गया। हम लोग रोज समुद्र-तट पर सुबह नहाने तथा शाम को टहलने जाया करते थे। वर्षा-ऋतु शुरू होने के पहले ही समुद्र में वर्षा आने के लक्षण दिखाई पड जाते हैं। एक दिन समुद्र मे खूब जोर का तूफान आया। जमनालालजी ने सब बच्चो के यह आश्वासन देने पर कि हम लोग समुद्र में दूर नही जावेंगे तथा पास से ही नहाकर वापस लौट आयगे मजूरी दी। पानी मे जाते ही हम सब अपना वादा भूल गये और एक दूसरे का हाथ पकडे आगे बढे। दुर्भाग्यवश मेरा हाथ और साथियो से छूट गया और मैं डूबने लगी, किंतु और लोगों ने मुझे बचा लिया। जमना-लालजी की इच्छा के विरुद्ध आगे चली गई थी, इसलिए उनके सामने जाने की हिम्मत न पडी। बगल के दरवाजे से अन्दर जाकर, स्वच्छ पानी से नहा-कर बिस्तर पर लेट गई। पेट में समुद्र का खारा पानी चला गया था, इसलिए काफी घबराहट हो रही थी। काकाजी को पता लगते ही वे मेरे पास आये। भूल के लिए हल्की-सी डाट हँसते-हँसते ही दी और जबतक मेरी घबराहट दूर नहीं हुई तबतक वे और जानकीदेवीजी मेरे पास ही बैठे रहे। लगता था कि मेरे पास मेरे माता-पिता ही बैठे हुए हैं।

सासवन मे जिस मकान में हम लोग रहते थे उसके बाग में फलों के बहुत तरह के पेड थे। एक दिन बाग के मालिक एक पका हुआ कटहल ले आये। काकाजी ने हम लोगों से कहा कि चलो, कटहल खावें। किन्तु उनके सिवा यह फल किसी को पसन्द नहीं था, इसलिए कोई भी जाना नही चाहता था। जमनालालजी माने नही। कहने लगे, यह बहुत फायदे की चीज है। ईश्वर ने कोई भी वस्तु निरर्थक नही बनाई है। खैर, हम सबको थोडा-थोडा देकर स्वय उन्होंने भी हमारे साथ ही बडे प्रेम से वह कटहल खाया। जमनालालजी की यह विशेषता थी कि जहा भी वे जाते थे, उन्हे यह जरा भी पसन्द न था कि उन्हें अन्यत्र होनेवाले महगे फल खिलाये जाय। उनकी इस भावना मे सादगी के अलावा प्रकृति का प्रेम भी झलकता था।

: ५६ :

हरिजन-सेवा

पूनमचन्द बाठिया

जबसे कांग्रेस ने महात्मा गांधीजी के अस्पृश्यता-निवारण-प्रस्ताव को स्वीकार किया तबसे जमनालालजी इस तरफ थोड़ा ध्यान देने लगे। उस समय के वातावरण के अनुरूप उन्होंने हरिजन-बस्तियों में प्रचारक रख दिये और हरिजन-छात्रों को वजीफा भी देना शुरू कर दिया था। इन कार्य में जितना भी खर्च होता था, वह सेठजी अपने पास से किया करते थे। मगर इस तरह की सेवा करने से उनका दिल नहीं भरता था और वह हर समय यही सोचा करते थे कि कोई बड़ा और ठोस काम इस दिशा में किया जाय। अन्त में उन्हें एक मार्ग सूझ गया। वह यह कि हरिजनों को सार्वजनिक कुओं पर पानी भरने की छूट होनी चाहिए और मंदिरों में उन्हें दर्शन करने को जाने की इजाजत मिलनी चाहिए। यह बात जब उनके ध्यान में आई तो उन्होंने सबसे पहले अपने घर से ही सुधार करने का निश्चय किया। पर इस मार्ग में उनके सामने कई अड़चनें थीं। इनके पूर्वजों के बनवाये हुए श्री लक्ष्मीनारायण के भव्य मन्दिर की व्यवस्था ट्रस्टियों के हाथ में थी और एक धर्मशाला की भी व्यवस्था ट्रस्टियों के हाथ में थी। इसलिए कोई भी काम बिना ट्रस्टियों की इजाजत के करना अवैध था। दूसरे सेठजी मत-स्वतंत्रता को शुरू से ही मानते आये थे, इसलिए उनके लिए तो यह और भी कठिन बात थी। उन्होंने मन्दिर के तथा धर्मशाला के ट्रस्टियों को समझाना शुरू किया और उन्हें बतलाया कि इस समय देश को हरिजनों के साथ न्याय करने की जरूरत है। इसलिए अपना मन्दिर, धर्मशाला और कुए हरिजनों के लिए खुल जाने चाहिए, जिससे देश के काम में अधिक जागृति उत्पन्न हो। पर ट्रस्टी लोग इस तरह कहां माननेवाले थे। सेठजी ने

धैर्य न छोड़ा। सतत प्रयत्न करते रहे और उन्हें युक्ति से समय-समय पर समझाते रहे। अन्त में धर्मशाला के ट्रस्टी इस बात पर राजी होगये कि धर्म-शाला के कुए हरिजनों को पानी भरने के लिए खोल दिये जाय। इस निर्णय के अनुसार वर्धा की बच्छराज धर्मशाला के कुए सन् १९२७ में खोल दिये गए। इस तरह यह कार्य देश मे पहला ही था। जब इस कुए का उपयोग हरि-जन करने लगे तब सेठजी ने अपनी मालिकी के अन्य कुए, जो बगीचो, गावो और खेतो में थे, खोल दिये। इस काम में थोडी-थोडी अडचने जनता और कर्मचारियो द्वारा आईं, पर उससे कोई डरने-जैसी बात पैदा नही हुई।

जब सेठजी इस काम में सफल होगये तब वे मन्दिर हरिजनो के लिए जल्दी खोल देना चाहते थे। इसका वह प्रयत्न करने लगे। पर काम जितना सरल दीखा उतना ही वह कठिन था, क्योकि मन्दिर के ट्रस्टी कट्टर सनातनी थे और उनका विचार था कि इस तरह की कल्पना तक करने मे पाप लग जाता है। इस तरह के ट्रस्टियो को प्रेम से समझाना सेठजी-जैसे आदमी का का ही काम था। उन्होंने कहा कि देश का वायुमडल अभी हरिजनो के पक्ष में है और उनके साथ जो अन्याय हुआ है उसके निराकरण का भी यही समय है। अगर हमने समय की पुकार के साथ काम नही किया तो अन्त मे पश्चा-त्ताप करना ही शेष रह जायगा। पर यह बात ट्रस्टियो के गले एकदम किस तरह उतर सकती थी! सेठजी ने उन्हें वर्षो तक नीति और युक्ति से समझाया। अन्ततोगत्वा वे लोग इस बात को मान गये कि मन्दिर खुलना तो चाहिए, पर उन्होने कहा कि अभी समय नही है, दूसरो को करने दो, फिर देखा जायगा। सेठजी का आग्रह था कि अगर आप इसको ठीक समझते है तो इस काम को सबसे पहले करने के लिए आप आगे आवें। ट्रस्टी कहते थे कि अभी हिम्मत नही होती। सेठजी का प्रयत्न चालू रहा। एक बार तो ट्रस्टियो ने यहातक कह दिया कि अगर आप चाहे तो हम लोग ट्रस्टीशिप से त्यागपत्र दे दें, आप नए ट्रस्टी बनाकर यह काम कर सकते है। सेठजी ने कहा कि अगर इसी तरह कार्य करना होता तो आजतक आप लोगो को समझाने मे न लगा रहता। मेरी इच्छा है कि आप सब ट्रस्टी मिलकर इजाजत दें तब

मन्दिर खोला जाय,क्योकि यह काम एक व्यक्ति का नही है। इसमें सबके सहयोग की जरूरत है। देश का वातावरण हरिजनो के पक्ष में दिन-दिन मजबूत होता जा रहा था। सेठजी ने कुए खुलवाने के आन्दोलन में काफी काम किया। वर्धा जिले के कई गावो में उनके प्रयत्न से कुए खुल गये।

इसी अर्से में सेठजी ने श्री हरिभाऊ उपाध्याय के साथ रेवाडी-आश्रम में मेहतरो के यहापर भोजन किया। इस बात की खबर सारे देश में बिजली की तरह फैल गई। मारवाडी-समाज में तो एक तरह उल्कापात-सा होगया। जहा देखो, मारवाडी-समाज में यही एक चर्चा थी कि सेठजी ने भगियो के यहा भोजन करके हमारी नाक कटवा दी, धर्म को डुबो दिया, आदि आदि।

सेठजी के प्रयत्नो से मन्दिर के ट्रस्टियो के दिल पिघल गये और उन्होने अनुमति दे दी। मन्दिर की ट्रस्ट-कमेटी ने वर्धा का लक्ष्मी-नारायण-मन्दिर हरिजनो के लिए खुला करने का प्रस्ताव पास किया और उसकी एक तिथि भी निश्चित की। समाचार-पत्रो द्वारा यह खबर सारे देश में फैल गई।

इधर जगह-जगह के सनातनी ऐसा न करने के लिए प्रस्ताव पास करके सेठजी के पास भेजने लगे। अन्त में एक बडा भारी शिष्ट-मडल वर्धा के सनातनी भाई मन्दिर खुलने के दो दिन पहले सेठजी के पास लेकर आये। इस शिष्ट-मडल में करीब डेढ-दो-सौ बडे-बडे आदमी थे। इनसे जो उनका वार्तालाप हुआ, वह बडा मनोरजक था। उसकी थोडी-सी झाकी यहापर देना अनावश्यक न होगा।

सदस्य—शिष्टमंडल के हम सदस्य आपके पास इसलिए आये है कि आप अपना मन्दिर हरिजनो के लिए न खोले।

सेठजी—क्यो?

सदस्य—इसलिए कि धर्म डूब जायगा।

सेठजी—मुझे मन्दिर न खोलने से धर्म डूब जाने का डर है।

सदस्य—खैर, आप पाच-चार साल के लिए इस काम को न करें।

सेठजी—तो क्या, फिर आप पाच साल के बाद मुझे इस तरह करने में

पूरी मदद करेंगे ?

सदस्य—मदद तो नहीं कर सकते है, पर हा, हम यह चाहते हैं कि अभी मन्दिर नहीं खुलना चाहिए।

सेठजी—आप शिष्टमंडल लेकर और मुझे अपनी बात समझाने के लिए आये हैं। इसलिए आपने जो कहा, वह मैं मानने के लिए तैयार हू, फिर आपको क्या अड़चन है ?

सदस्य—सेठजी, हम बहस में तो आपसे जीत नहीं सकते है। इसलिए हम यही कहते है कि आप हमारी बात मानें, क्योंकि आप हमारे नेता हैं।

सेठजी—अगर आप मुझे नेता मानते हैं और आप चाहे वह काम मैं करू, तो फिर मैं यह भी चाहता हू कि आप भी मेरी एक बात मानें तो फिर मैं आपकी बात मानू।

सदस्य—आप हमसे क्या चाहते है ?

सेठजी—आप यहापर जो लोग आये है, वे अगर जीवन-भर खादी पहनने की प्रतिज्ञा करें तो मैं पाच साल तक मन्दिर हरिजनो के लिए नही खोलूगा।

सदस्य—यह बात तो हमसे नही हो सकती। आप कोई दूसरी बात कहें तो हम करेंगे।

सेठजी—हरिजनों के लिए मन्दिर खुलना चाहिए, यह बात तो आप भी स्वीकार करते है। पर आप चाहते हैं कि अभी कुछ समय तक ठहर जाना चाहिए। मान लीजिए कि मैं एक दूसरा मन्दिर वर्धा में बनवा दू, जिसमें आधी रकम आप लोग दें और आधी मैं दू। वह मन्दिर अगर हरिजनो के लिए खोल दिया जाय, तो फिर कोई हर्ज है क्या ? क्या आप लोग इस काम मे अपने नेता की मदद करेंगे ?

इसपर सब लोगों ने चुप्पी साध ली।

सेठजी—आप मेरी एक भी बात मानना नही चाहते और मै आपकी बात मान लू, जिसे मैं समझता हू कि नही करना चाहिए।

सदस्य—हम तो आशा लेकर आये थे। आप नही मानते तो हम जाते हैं।

इस तरह वे लोग वापस चले गये। कुछ लोग फिर भी समझाने के लिए ठहर गये, पर उनकी बात का कोई असर न हुआ।

जब मन्दिर के ट्रस्टियों ने मन्दिर हरिजनो के लिए खोलने का निश्चय कर लिया, तब जमनालालजी की जिम्मेदारी पहले से भी अधिक बढ गई, क्योंकि अब आगे जो कठिनाइयो का ताता बधनेवाला था, उसके लिए उन्हे पहले से ही तैयार हो जाना जरूरी था। इसलिए उन्होने अपने खास व्यक्तियो से चर्चा शुरू कर दी और सावधान रहने को भी कह दिया।

मन्दिर खुलने के एक दिन पहले वर्धा मे सनातनियो की एक विराट सभा हुई। बाहर के कई बडे-बडे नेतागण आये और मन्दिर किसी भी हालत मे न खुलने पावे, इसका उपदेश जनता को देते रहे। एक भाषणकर्त्ता ने तो यहा-तक कह दिया कि कल मै मन्दिर के सामने जाकर सत्याग्रह करूगा।

इधर जमनालालजी रात-भर आराम से सो नहीं पाये। नई जोखम का बार-बार खयाल आता था। कल न जाने क्या-क्या घटनाए हो जायगी, इसकी किसीको भी कल्पना न थी। जमनालालजी को विश्वास था कि वह अच्छा काम कर रहे हैं। उसमें सफलता अवश्य मिलेगी। इस तरह रात खतम हुई। सुबह ६-७ बजे के करीब जमनालालजी व अन्य कई मित्र गाधी-चौक में आकर जमा होने लगे। काग्रेस के कार्यकर्त्ता भी काफी तादाद मे आगये। उधर सनातनी लोग भी मन्दिर से करीब ५० गज दूर जमा हो रहे थे। तरह-तरह की गप्पो का बाजार गर्म था। पुलिसवालो के पास यह खबर थी कि आज मार-पीट होगी, सभवत खूनखराबी भी होजाय। इस तरह की अफवाहो से पुलिस वाले बेचैन होगये थे। अत में पुलिस सब-इन्स्पेक्टर जमनालालजी के पास आया और अलग ले जाकर बोला कि दगा हो जाने का डर है। अगर आप कहे तो यहापर (मदिर के आसपास) कुछ पुलिसवालो को तैनात करद। जमनालालजी ने हँसकर कहा कि मुझे तो दगा होने की कोई आशा नहीं है। दूसरे, हम दगा करके कोई काम करना भी नहीं चाहेंगे। आपकी मदद की मुझे कोई जरूरत नहीं है। आप अगर चाहे तो अपने नियमो के अनुसार अपने थाने मे तैयारी करके रहे और जब आपको जरूरत मालूम पडे तब आ-

सकते है। पर इस काम के लिए मुझे पुलिस की कतई जरूरत नही है। यह वात सुनकर सब इन्स्पैक्टर चला गया।

निश्चित समय पर याने सुवह के ८ बजे हरिजनो की एक टोली भजन करती हुई श्री पराजपे की अध्यक्षता मे आई और मदिर में प्रवेश किया, फिर आहिस्ता-आहिस्ता हरिजनो की और कई भजन-मडलिया आती गई और वे मन्दिर में बैठकर भजन करने लगी। उधर सनातनी लोग न तो सत्याग्रह ही करने आये और न विरोध करने। उल्टे वह सडक साफ करनेवाले मेहतर-मेहतरानियो को पकड-पकडकर मन्दिर में भिजवाने लगे। यह काम तो उन्होने द्वेषवश किया था, पर जमनालालजी के लिए तो वह सहायक होगया। इस तरह उस दिन १२ बजे तक करीब तीन-चार हजार हरिजनो ने भगवान के दर्शनो का लाभ लिया।

इस तरह बिना किसी अडचन के जमनालालजी का यह 'यज्ञ' समाप्त हुआ। कई हरिजनो ने भगवान के दर्शन करने के वाद आ-आकर जमना-लालजी के कार्य की प्रशसा की और धन्यवाद दिया।

जमनालालजी की रातभर की चिन्ता प्रसन्नता में बदल गई। चेहरे पर सदैव की तरह खुशी झलकने लगी।

इधर यह हो रहा था, उधर मन्दिर के पुजारी, रसोइया, कथा-वाचक, नौकर आदि गायब होगये। कह दिया कि अब हम यहापर काम नही करेगे। ऐन वक्त पर इस तरह सब काम करनेवालो का गायब हो जाना मामूली वात नहीं थी। सारा काम मन्दिर का मिनटो में अड जाता, पर जमनालालजी इस वात को जानते थे। उन्होने पहले से ही राष्ट्रीय विचार रखनेवाले आदमियों से वात कर रखी थी। उन लोगो के जाते ही इन आदमियो ने काम शुरू कर दिया।

शाम को गाधी-चौक में एक बहुत वडी सभा हुई, जिसमे विनोवाजी का वडा हृदयस्पर्शी भाषण हुआ और जमनालालजी की हिम्मत तथा दृढ निश्चय की सराहना की गई।

समाचार-सस्थाओ ने यह समाचार सारे देश में बिजली के वेग की तरह

फैला दिया। चारों ओर से सेठजी के पास इस कार्य के लिए धन्यवाद के पत्र और तार आने लगे, जिसमें पंडित मदनमोहन मालवीय का पत्र उल्लेखनीय है तथा काशी के कई विद्वान् पंडितों ने संयुक्त पत्र सेठजी को भेजा, जिसमें लिखा था कि आपका यह कार्य शास्त्रोक्त है।

सेठजी के इस कार्य की कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने भी प्रशंसा की। तब कांग्रेस ने भी एक कमेटी की स्थापना, जिसका यह काम था कि दूसरे मन्दिर भी हरिजनों के लिए खुलवाने का प्रयत्न किया जाय। इस कार्य के लिए महात्मा गांधी ने स्वामी आनन्द को खास तौर पर चुना।

जब यह काम जमनालालजी के प्रयत्न से पूरा हुआ तो उनके दिल में आया कि मन्दिरों के ट्रस्टियों में हरिजनों को ट्रस्टी के पद पर क्यों न लिया जाय? इस विचार-सरणी के आधार पर सेठजी ने मन्दिर के बोर्ड आव ट्रस्टीज में एक हरिजन को ट्रस्टी बनाया।

यह काम हो जाने पर हरिजनों के अधिक नजदीक आने के लिए अपने यहां उन्हें नौकर रखा तथा उनके हाथ से भोजन आदि करना शुरू किया।

इन सब कामों के बाद ही महात्माजी ने हरिजन-आन्दोलन शुरू किया तथा अपने पत्र 'नवजीवन' का नाम 'हरिजन' रखा। 'हरिजन' नामकरण भी बाद में ही हुआ।

इस प्रकार जमनालालजी ने सबसे पहले इन कार्यों को किया। इन कार्यों को करने में उन्हें कष्ट, चिन्ता आदि अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, पर कोई भी शक्ति उन्हें अपने निश्चय से न डिगा सकी।

इन सब कामों को करते हुए भी जमनालालजी ने व्यक्तिगत विचार-स्वतंत्रता को पूरा महत्त्व दिया तथा जिन लोगों का इन कामों से मतभेद रहा, उन्हें अपने विचारों के अनुसार काम करने की स्वतन्त्रता दी। कभी भी उन्होंने उनके विचारों में किसी भी प्रकार का विघ्न या दबाव डालना नहीं चाहा। इसमें उनके रिश्तेदार, नौकर-चाकर, मित्र आदि सब शामिल थे। मगर उन्होंने किसी का भी साथ सहज नहीं छोड़ा और पूर्ववत् उनके साथ व्यवहार किया। इस तरह का होना उस समय कठिन था, पर वह यही कहते थे कि जब इनको सत्य के दर्शन हो जायगे तो ये खुद ही इस बात में विश्वास करने लगेंगे।

: ५७ :

जयपुर की याद उन्हें सदा रही

दामोदरदास मूदडा

जमनालालजी की सेवाए अनेक-विध थी। रियासतो के प्रश्न पर वे गम्भीरतापूर्वक सोचते और उनकी सलाह वर्किंग कमेटी के लिए निर्णायक मानी जाती। किसी एक रियासत में प्रत्यक्ष कार्य करके रियासती कार्य-कर्त्ताओ के सामने उदाहरण रखने की उनकी स्वाभाविक इच्छा थी। जयपुर-राज्य-निवासी होने के कारण जयपुर को एक आदर्श रियासत बनाने की भी उनकी भावना रही। इस भावना ने उन्हे जयपुर की ओर अधिकाधिक आकर्षित किया। ऐसे भी बहुत पहले से उन्होने रियासती मामलो मे दिल-चस्पी लेना प्रारभ किया था और उनका प्रभाव भी बहुत पडता था। बिजोलिया-आन्दोलन के समय वे स्वय महाराजा बीकानेर से मिले, उदयपुर के प्रधान मत्री के नाम उनसे पत्र लिया और जो समझौता करवाया उसकी तो स्वय महाराणा साहेब एव सर सुखदेवप्रसादजी ने भी प्रशसा की थी। हैदराबाद के लिए उन्होने जो कुछ किया और बहुत ज्यादा किया, वह तो बहुत कम लोग जानते है। इसी तरह अन्य रियासतो के साथ भी उनका काफी सबध आया।

जयपुर राज्य प्रजा-मडल की स्थापना वैसे तो १९३१ में हो चुकी थी, परन्तु १९३६ में वनस्थली-बालिका-विद्यालय के उत्सव के समय इसका पुन-र्गठन हुआ। उस समय वनस्थली में जो बातचीत हुई उसमें जमनालाल-जी का प्रमुख स्थान था। इसके बाद प्रजा-मडल का सगठन बढता गया। ८ मई १९३८ को इसका पहला सालाना जलसा किया गया।

जमनालालजी प्रजा-मडल के सूत्रधार बने ही थे कि उनकी न्याय-बुद्धि, समय-सूचकता और त्याग की कसौटी का समय आगया। सीकर में राव

राजा के पुत्र कुवर हरदयालसिंह के विलायत जाने के मसले को लेकर जयपुर दरबार और राव राजा के बीच जो झगडा पैदा हुआ उसके कारण सीकर के लोगो के दिल का जयपुर दरबार के प्रति पुराना दबा हुआ असतोष एकाएक भडक उठा। दोनो ओर से खून बहाने का काफी सामान इकट्ठा होगया। ऐसी परिस्थिति में श्री जमनालालजी ने अपनी जान को खतरे में डालकर सीकर में शाति स्थापित न की होती तो सीकर-काण्ड की दुखदाई घटना न मालूम कितना भयकर रूप धारण कर लेती। सीकर की जनता ने जमना-लालजी का एकाएक साथ दिया हो, ऐसी भी बात नही है। एक बार तो उन्हे वहा से निराश होकर ही लौटना पडा। इनकी अहिंसा की बात मानने से सीकर के लोगो ने साफ इन्कार कर दिया और वह भी इसलिए कि उस समय हथियार रख देने में ही अधिक बहादुरी और त्याग की आवश्यकता थी। उन्होने सीकर की प्रजा के सामने सीकर के शुभ-चिन्तक के नाते "अपना कलेजा खोल कर" ता १३-५-३८ को जो ऐतिहासिक अपील प्रकाशित की थी, उसके ये शब्द कितने महत्वपूर्ण है—"सीकर की प्रजा मेरा साथ देगी तो मुझे अवश्य ही अधिक-से-अधिक सफलता मिलेगी। इसमें किसी तरह का धोखा होगा यह समझने की बिल्कुल जरूरत नही है। अगर धोखा होगा तो मेरे साथ तथा प्रजा-मडल के साथ होगा। मेरे या प्रजा-मडल के साथ किये हुए धोखे का जवाब मैं और प्रजामडल सीकर की जनता की तरफ से देने की कोशिश करेंगे। और इस कोशिश में मुझे और मेरे साथियो को बडी-से-बडी मुसीबतो का सामना करना पडेगा तो उसके लिए हम जनता के सेवक अपना अहोभाग्य समझेंगे। उस हालत में मैं खुद जनता को शान्तिमय सत्याग्रह का आन्दोलन जारी करने की सलाह दूगा और उस लडाई के सिपाहियो में मैं सबसे पहले अपना नाम लिखवाने का आपके साथ वादा करता हू।"

सीकर के मामले में जयपुर के साथ उनका जो समझौता हुआ था उसपर जयपुर ने अमल नही किया। जमनालालजी के शब्दो मे "वह एक पहले दर्जे का विश्वासघात ही था, जो जयपुर ने उनके तथा सीकर की प्रजा के साथ

किया था।" लेकिन आम तौर पर जनता में जमनालालजी और जयपुर राज प्रजा-मडल के प्रति विश्वास की भावना बढती ही गई। सीकर में होनेवाले एक महान् हत्या-काण्ड को रोकने का श्रेय जमनालालजी को ही था, इसमें दो मत नहीं हो सकते। जयपुर के वे अधिकारी, जो इस मामले में अपना स्वार्थ सिद्ध नही कर सके और इसलिए निराश और प्रजा-मडल से नाराज होगये थे, वे अब जमनालालजी और प्रजा-मडल की बढती हुई प्रतिष्ठा को कम करने के उपाय सोचने लगे। इधर पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट की नीति भी रियासतो के मामले में काफी अनुदार बनती गई। इस समय ब्रिटिश भारत में काग्रेसी मन्त्रि-मडल काम कर रहे थे। फेडरेशन का मसला सामने था। अग्रेजी हुकूमत रियासतो में जमा हुआ अपना हाथी का पैर हटाना नहीं चाहती थी और इधर आम तौर पर सभी रियासतों में प्रजा का आन्दोलन बढता जा रहा था। फिर जयपुर को तो बापूजी का आशीर्वाद जमनालालजी का नेतृत्व और हीरालालजी शास्त्री-जैसे ऊचे दर्जे के कार्य-कर्ता की सेवाए प्राप्त हुई थी। इस त्रिवेणी ने जयपुर राज्यभर में लोक-जाग्रति के अकुर को इस कामयाबी के साथ सीचा कि उससे प्रकट होनेवाले फल की कल्पना से जयपुर के प्रधान मत्री सर बीचम मानो घबरा उठे। उन्होंने यह तय किया कि अब जमानालालजी को जयपुर आने ही न दिया जाय। फलत ता० २९-१२-३८ को जयपुर जाते हुए सवाई माधोपुर स्टेशन पर जयपुर-सरकार ने जमनालालजी के जयपुर-प्रवेश पर पाबदी लगाई। जमनालालजी इस समय अकाल-सेवा और प्रजा-मडल की साधारण सभा के लिए जयपुर जा रहे थे। अकाल-सेवा का कार्य इस समय वास्तव में अत्यन्त महत्वपूर्ण था। प्रजा-मडल ने यह भी घोषित कर दिया था कि वर्तमान नाजुक परिस्थिति में वे अकाल-सेवा का ही कार्य करनेवाले हैं, लेकिन जयपुर-सरकार नहीं चाहती थी कि इस तरह प्रजा-मडल का सबध जनता से बढे और उन्होंने यह भी तय कर लिया था कि प्रजा-मडल के बढते सगठन को हर तरह से रोका जाय। जमनालालजी पर लगी पाबन्दी इस दिशा में उनका पहला कदम था।

अगर जमनालालजी चाहते तो इस हुकम को ठुकराकर उसी समय जयपुर जा सकते थे। देशभर में उनकी बहादुरी की तारीफ भी होती, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। जल्दबाजी को वे हिंसा और कमजोरी समझते थे। सत्याग्रह के सिद्धान्त के अनुसार यह भी जरूरी था कि प्रतिपक्षी को विचार करने के लिए पूरा समय दिया जाय। फलत वे जयपुर न जाते हुए बारडोली गये। जयपुर के प्रधान मन्त्री के साथ, पूज्य महात्माजी एव जमनालालजी का पत्र-व्यवहार चला। पूरे दो महीने की कोशिश के बाद जब जमनालालजी ने देखा कि जयपुर-सरकार के दरबार में सुनवाई होने की कोई सभावना नहीं है तब पूर्व निश्चयानुसार ७ फरवरी १९३९ को उन्होंने जयपुर-स्टेशन मे प्रवेश कर दिया।

इसके बाद का सारा इतिहास कम रोमाचकारी नहीं है। जमनालालजी ने दो बार जयपुर में प्रवेश करने की कोशिश की और दोनो बार अधिकारी ने उनके साथ अमानुषी व्यवहार किया। सैकडो मील उन्हे रात-दिन मोटरो में घुमाया। उनकी इच्छा के विरुद्ध एक से अधिक लोगो के द्वारा उन्हे जबरन खटिया से उठवाकर मोटर में सुलवाया और जयपुर से बाहर रखने की नाकामयाब कोशिशें की। लेकिन आखिर अधिकारियो को हारना पड़ा।

११ फरवरी को जमनालालजी जयपुर से करीब ९० मील दूर पर बिल्कुल एकान्त स्थान में ले जाकर रख दिये गए। उनके साथ उनके एक कर्मचारी के सिवा और किसी भी व्यक्ति को रहने की इजाजत नहीं दी गई।

इधर जयपुर में प० हीरालाल शास्त्री, चिरजीलालजी मिश्र, कपूरचदजी पाटनी, हरिश्चन्द्रजी शास्त्री आदि सभी प्रमुख कार्यकर्ताओ की भी गिरफ्तारिया हुई। सत्याग्रह-आन्दोलन भी पूरे जोर के साथ शुरू हुआ। जयपुर के अतिरिक्त झुनझुनू, सिंघानो, मुकुन्दगढ, सीकर, रीगस आदि स्थानों में भी सत्याग्रह जोर से चला। हजारों गिरफ्तारिया हुई, तीन सौ से अधिक लोग जेल में बन्द कर दिये गए।

ठिकानेदारों[1] ने किसानों पर लगान-वसूली की आड में जबरदस्त जुल्म ढाना शुरू कर दिया। जो किसान-नेता एवं कार्यकर्ता प्रजामंडल के कार्यक्रम के साथ सहानुभूति रखते थे उन्हें चुन-चुनकर गिरफ्तार किया गया और बुरी तरह सताया गया। ठिकानेदारों और जयपुर-दरबार में ऐसे तो अक्सर मतभेद रहा करता था, परन्तु आन्दोलन के खिलाफ राज्यकर्ताओं की यह सारी शक्तियां इस समय संगठित होकर प्रजामंडल की ताकत को तोड़ने में जुट गई थीं। यही प्रजा-मंडल की कसौटी का समय था।

किसी आन्दोलन की सफलता उसके प्रकट परिणामों से ही आंकी जाती है। जयपुर-आन्दोलन के परिणामों का जिक्र तो मैं आगे करूंगा, लेकिन उसकी नैतिक सफलता की कुछ बातें यहां लिख देना आवश्यक समझता हूं :

(१) अधिकारियों की ओर से अनेकविध उत्तेजना और उग्र प्रहार किये जाने के बावजूद जनता आखिर तक अहिंसक और शांत रही।

(२) आन्दोलन में न सिर्फ हिन्दू-मुसलमान आदि सबकी सहानुभूति रही थी, बल्कि सभी तबकों के प्रतिष्ठित लोगों ने, कार्यकर्ता, वकील, व्यापारी, डाक्टर आदि सभी ने हिस्सा लिया व कुर्बानियां कीं।

(३) राजपूताने में राजपूत राजा के खिलाफ राजपूतों की सहानुभूति प्राप्त करना उतना ही असंभव है, जितना अंग्रेजों से खिलाफ अंग्रेजों की। लेकिन जयपुर के राजा के राजपूत होते हुए भी इस आन्दोलन में अनेक प्रतिष्ठित राजपूतों ने प्रत्यक्ष हिस्सा लेना स्वीकार किया और यदि महात्माजी द्वारा आन्दोलन बन्द न कर दिया जाता तो ठाकुर कुशालसिंह तथा उनके अनेक साथी राजपूत भी जेल में बन्दी जीवन बिताते हुए नजर आते।

ये कुछ ऐसी महत्वपूर्ण बातें हैं, जिनसे आन्दोलन की नैतिक सफलता का नाप लिया जा सकता है। इसके सिवा एक और महत्वपूर्ण घटना की ओर ध्यान आकर्षित करना उचित होगा। 'सिनान जाट पंचायत' ने, जिसके हज़-

1 जयपुर में बड़ी-बड़ी जागीरें जिन ठाकुरों के सुपुर्द रहती हैं, उन्हें ठिकानेदार कहते हैं।

तन्त्ररूप से अपना राजनैतिक सगठन बना रखा था और केवल इस आन्दोलन की हदतक ही जिसने प्रजामडल का साथ देना स्वीकार किया था, नेता सरदार हरलालसिंह आदि भी जमनालालजी के नेतृत्व से इतने प्रभावित हुए कि आगे चलकर उन्होने अपना पृथक् सगठन रखना आवश्यक नहीं समझा और अपने-आपको प्रजामडल में सम्मिलित कर दिया।

२१ मार्च '३९ को महात्माजी ने आन्दोलन स्थगित करवा दिया। जिन नागरिक अधिकारो की प्राप्ति के लिए आन्दोलन शुरू किया गया था उनके लिए अवतक का त्याग महात्माजी पर्याप्त समझते थे।

रचनात्मक कार्यक्रम का महत्व जयपुर के लोगो को जमनालालजी ने वहुत पहले से समझाया था। उनके प्रयत्नो से १२ वर्ष पहले वहा चरखा-सघ की नीव डाली गई और पिछले दिनो रचनात्मक कार्यक्रम के कारण ही जनता में सगठन और वल का निर्माण हो सका।

जयपुर-सरकार की नजरवदी के दिनो में जमनालालजी ने जेल में एक आदर्श सत्याग्रही का-सा जीवन विताया। खाने, पीने, रहने आदि सभी वातो में उनकी सादगी तो उनकी अपनी ही थी। घुटनो में जव दर्द होने लगा, बीमारी कावू के वाहर समझी जाने लगी तो डाक्टरो ने यूरोप जाने का वहुत आग्रह किया, पर जमनालालजी ने अपने एक पत्र द्वारा नम्रता, किन्तु दृढतापूर्वक सूचित कर दिया कि "स्वास्थ्य सुधार के लिए विदेश जाने की अपेक्षा मैं अपने मुल्क में मर जाना अधिक पसन्द करूगा।"

जेल से भी उन्होंने अपनी रचनात्मक प्रवृत्ति जारी रखी। शिकार-कानून की भीषणता उन्होंने वहा खूब महसूस की। जयपुर में इस कानून की वदौलत सैकडो गाव उजड गये थे। लोगो की जान हरदम खतरे में रहती थी। लेकिन राजा-महाराजाओ और अग्रेज मेहमानो के लिए सुरक्षित रखे गये इन शेर और हिरनो को कोई हाथ नही लगा सकता था, भले ही सारी खेती खतम होजाय और गाव सूना होजाय। स्वय जहा जमनालालजी रहते थे, वहीं फाटक पर तथा भीतर शेर दो-तीन वार आगया था। उनके इर्द-गिर्द के खेतो में रहनेवाले किसानो के यहा से रोज किसी-न-

किसी जानवर के खोये जाने की खबर मिलती थी। जमनालालजी ने जेल के भीतर से इस आन्दोलन को खूब बल दिया और यह सब किया राजवालों की जानकारी से। महात्माजी के हरिजन-आन्दोलन के साथ इसकी तुलना की जाय तो अत्युक्ति नही होगी। जेल से बाहर आने पर इन्होने इस कानून में सतोषजनक परिवर्तन कराने में सफलता प्राप्त की।

जमनालालजी के साथी अपनी सजाए पूरी करके रिहा हुए ही थे कि ९ अगस्त १९३९ याने करीब ६ माह की नजरबन्दी के बाद जयपुर-सरकार ने जमनालालजी को भी रिहा कर दिया।

बाहर आने पर महाराजा सा के साथ कई मुलाकातें करने का अवसर जमनालालजी को मिला। अग्रेज प्रधान मत्री सर बीचम तो पहले ही कार्य-मुक्त हो चुके थे। उनके बाद मि राट आये, लेकिन बाद में तो सारा काम-काज स्वय महाराजा सा ही देखते लगे। मुलाकातो के दरम्यान महाराजा सा पर जमनालालजी के व्यक्तित्व का प्रभाव पडे बिना न रहा। जमनालालजी के निकट परिचय में आकर यदि उन्होने यह महसूस किया हो कि जमनालालजी को जेल में रखकर जयपुर के अधिकारियो ने एक बडी भारी भूल की, तो कोई अचरज की बात नही। जमनालालजी ने भी अपने सहज औदार्य के अनुसार अपने साथ के दुर्व्यवहारो की किसीको याद तक न दिलवाई और अपने बयान में यह आशा प्रकट की कि जयपुर में नवीन युग का श्रीगणेश हुआ है। अपने भ्रमण में भी स्थान-स्थान पर उन्होंने महाराजा सा की सहृदयता और जनहित की भावना की भूरि-भूरि प्रशसा की। लोक-हित की दृष्टि से महाराज सा ने सभाबन्दी का कानून रद्द कर दिया, अखबारो पर से भी पाबदिया उठा ली, सीकर के मामले में पूरी सहानुभूति के साथ विचार करने का वचन दिया और पब्लिक सेफ्टीरेगुलेशन में ऐसा सशोधन करने का आश्वासन दिया कि प्रजामडल या उस-जैसी अन्य सस्थाओ की रजिस्ट्री करवाने की आवश्यकता ही न रहे। भारतीय प्रधान मत्री लाने के सबध में भी जनता की ओर से

वीरों का आन्दोलन शुरू हुआ।

जयपुर-सत्याग्रह-आन्दोलन की सफलता का यह था दूसरा रूप, जिसे सत्याग्रह की भाषा में हृदय-परिवर्तन कहा जा सकता है। जयपुर के अंग्रेज तथा अन्य बाहरी अधिकारियों के कारण जो परिस्थिति बिगड़ गई थी वह महाराज सा. के हाथों बात-की-बात में सुलझ गई।

समझौते के बाद जयपुर में जो शासन-तंत्र स्थापित हुआ था वह कुछ लोगों को पसन्द न आया, क्योंकि इसका असर इर्दगिर्द की अन्य रियासतों की प्रजा के हक में अच्छा होनेवाला था। जयपुर की मिसाल दूसरे स्थानों पर दी जाने लगी और वहां के राजकर्त्ताओं से भी जयपुर महाराज की-सी अपेक्षा की जाने लगी। इसलिए जयपुर के नए प्रधान मंत्री राजा ज्ञाननाथजी का अमल कुछ ऐसा ही सिद्ध होने लगा, जिससे महाराजा सा. और जमनालालजी के प्रयत्नों से किया-कराया कार्य नष्ट होता दिखाई देने लगा। लेकिन जमनालालजी ने बड़ी खूबी के साथ परिस्थिति को सम्भाल लिया और संघर्ष की पुनरावृत्ति न होने दी।

जयपुर को आदर्श रियासत बनाने का उनका स्वप्न था। जयपुर की याद उन्हें हमेशा बनी रही। ब्रिटिश भारत के इस सत्याग्रह-आन्दोलन में उन्हें फिर जेल जाना पड़ा, लेकिन जेल में से भी उन्होंने जयपुर की स्थिति सुलझाने की पूरी कोशिश की।

जयपुर उनका चिर-ऋणी रहेगा।

: ५८ :

अद्भुत लोक-संग्रही

अनंतगोपाल शेवडे

स्व जमनालालजी से मेरा प्रथम परिचय सन् १९३२-३३ में हुआ, जब मैं बी ए में पढता था। 'कर्मवीर' के सम्पादक प माखनलाल चतुर्वेदी के साथ मैं वर्धा गया था और उन्होंने मेरा परिचय जमनालालजी से कराया था। जमनालालजी ने मुझे ऊपर से नीचे तक देखा जैसे वे मुझे अपने पैमाने मे नाप लेना चाहते हो। मेरे खद्दर के कपडे देखकर शायद उन्हे सतोष हुआ। थोडी देर ठहरकर बोले—

"पढाई के बाद क्या करने का विचार है?"

"पत्रकारिता।"—मैंने उत्तर दिया।

"तब तो कुछ उपयोग होगा।"—उन्होंने कहा।

उनका अर्थ स्पष्ट था। 'उपयोग होगा' यानी देश के लिए या समाज के लिए। उनकी दृष्टि हमेशा सार्वजनिक हित की ओर ही रहती थी।

जमनालालजी का एक सबसे बडा गुण, जिसकी मुझपर अमिट छाप पडी है, उनकी लोक-सग्राहक वृत्ति थी। गाधीजी के सपर्क से ही शायद उन्होंने यह बात सीखी थी। उनकी यह धारणा थी कि अच्छे, लगनशील, चरित्रवान् और योग्य कार्यकर्त्ताओ के बिना सार्वजनिक कार्य सफल नहीं हो सकता। उनकी पैनी दृष्टि हमेशा आदमियो को खोजा करती। जो व्यक्ति उन्हे होनहार दीखता, या अन्य किसी कारण से जच जाता, वे उसे वर्धा बुला लेते और किसी-न-किसी सस्था में लगा देते। वर्धा मे गाधीजी के रहते हुए इतनी बडी और अधिक सस्थाओ का निर्माण हुआ, उसका यही कारण है।

आजकल आदर्शवादी युवक पथ-प्रदर्शन के लिए तरसते रहते हैं, पर उन्हे बहुत कम अवसर मिल पाते हैं। स्व जमनालालजी ने ऐसे युवको को

कभी निराश नहीं किया। होनहार विद्यार्थियों की सहायता की, पढ़ा-लिखाकर तैयार किया और फिर किसी-न-किसी सार्वजनिक कार्य में लगा दिया।

मैंने कई बार अनुभव किया है कि आज अब जमनालालजी-जैसे व्यक्ति होते तो हमें नेताओं की दूसरी कतार तैयार करने में कितनी मदद मिलती।

सन् ३६-३७ में मैं अपने बन्धु के साथ 'इण्डिपेंडेंट' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक निकाला करता था। उसकी नीति प्रखर राष्ट्रीय थी और उस जमाने में मध्यप्रान्त में कांग्रेस का समर्थन करनेवाला वही एकमात्र अंग्रेजी पत्र था। श्री राघवेन्द्र राव कांग्रेस छोड़कर अंग्रेजी शासन में चले गये थे। शासन में उनका खूब बोलबाला था। राष्ट्रीय पत्रों में उनपर हमेशा कड़ी टीका-टिप्पणी होती थी। 'इण्डिपेंडेंट' में तो विशेष रूप से सख्त रहा करती थी। बस, इसी गरमा-गरमी में श्री राघवेन्द्र राव की सरकार ने एक लेख के कारण दो हजार की जमानत 'इण्डिपेंडेंट' से मांग ली। एक छोटे-से साधनहीन साप्ताहिक पत्र के लिए यह एक बड़ा प्रहार था। दस दिन के भीतर रुपया जमा करना था, वरना प्रेस में ताला पड़ जाता। उसी बीच मैं जमनालालजी के पास सहायता के लिए गया। साथ में दादा धर्माधिकारी भी थे। उन्होंने २००) की सहायता दी। मुझे कुछ अधिक की आशा थी, इसलिए कुछ निराशा तो हुई, फिर भी उनकी सक्रिय सहानुभूति पाकर मुझे बल मिला। मैंने उनसे कहा कि यह रुपया जमानत दाखिल करने में जायगा। यदि सरकार ने जमानत जब्त कर ली तो आपका रुपया लौटा दूंगा।

इसके बाद मामला शान्त हो गया था। पर [illegible] पुराना [illegible] पड़ा था। [illegible]

मध्यप्रान्त ने १९३७ के चुनाव में कांग्रेस और [illegible] उसका प्रभाव मंत्रिमंडल बना। 'इण्डिपेंडेंट' की जमानत वापस हो गई। [illegible] मैंने रुपये [illegible] वापस [illegible]। बाद में [illegible] हुआ कि [illegible] में [illegible] थी, [illegible] था। [illegible]

: ५९ :

गो-सेवक

रिषभदास राका

जबसे श्री जमनालालजी ने गो-सेवा का काम हाथ मे लिया, तबसे मृत्यु होने तक वे इसी बात का चिन्तन करते रहे कि गो-सेवा अधिक-से-अधिक कैसे हो। उनकी यह निश्चित राय थी कि गाय, जो आज एक बोझ के समान होगई है, उसे उपयोगी बनाये बिना उसका रक्षण नही हो सकता। आज जिस तरह गाय को निकम्मी हालत में रखकर उसको बचाने के लिए करोडो पया पिंजरापोलो में तथा गोरक्षा सस्थाओ मे खर्च होता है, उससे गाय की वास्तविक रक्षा नही हो सकती। वे गो-माता का नाम लेकर लोगो की भावनाओ को उत्तेजित कर गो-रक्षा के नाम पर चाहे जैसे प्रचार करना ही गो-सेवा का काम नही मानते थे। वे तो कहते थे—क्या आपने गाय का गोबर उठाकर सफाई का काम किया है? क्या आपने गाय की नियमित मालिश की है? क्या आप यह जानते है कि गाय को कितनी और कैसी खुराक देनी चाहिए? क्या आपको गाय की बीमारी का ज्ञान है? क्या आप उनके दूध-घी के सबंध में जानकारी रखते है? यदि आपने गोपालन का काम नही किया है या उस काम का अनुभव नही लिया है, तो आपसे गो-सेवा नही हो सकेगी। केवल व्याख्यान देकर प्रचार करने से लोग उत्साहित होकर जैसा-तैसा काम शुरू कर देंगे और सार्वजनिक धन खर्च होते हुए भी गोरक्षा न होकर धीरे-धीरे लोगो का उत्साह कम होते-होते एक दिन काम बन्द हो जायगा। बिना जानकार गो-सेवक के गो-सेवा में सफलता नही मिल सकती। इसलिए वे हमेशा गो-सेवा का काम करनेवालो को पहले गो-पालन-शास्त्र की जानकारी हासिल करने तथा प्रत्यक्ष काम द्वारा अनुभव प्राप्त करने के लिए कहते थे। उनके पास जितने भी कार्यकर्ता आये, उन्हे उन्होंने पहले गोरस-विद्यालय में

ही भिजवाया और कुछ लोगो को प्रत्यक्ष काम में लगाया।

पिंजरापोलो तथा गोरक्षिणी सस्थाओ द्वारा गोरक्षा का जो कार्य होता है, उसमें सुधार करने में बहुत बडा काम होगा, ऐसा उनका मत था। इस कार्य की कठिनाई को वे जानते थे। आजलकल जो गोरक्षिणी सस्थाए चल रही है, वे ज्यादातर पुराने खयालात के लोगों द्वारा ही चलाई जा रही है। उनकी गोरक्षा-सबधी मान्यताए रूढ होगई है। ऐसे लोगो के विचारो में परिवर्तन कराना कोई आसान काम नही है। लेकिन साथ ही उनकी यह भी मान्यता थी कि अच्छे सेवक तैयार हो जाने पर उस काम में कठिनाई नही पडेगी।

वर्तमान पिंजरापोलो तथा गोरक्षिणी सस्थाओ की कार्य-पद्धति को जाने व उनकी क्या तकलीफें है, यह समझे बिना केवल अपने विचारो को उनपर लादना वे पसद नही करते थे, अत वर्धा की गोरक्षिणी सस्था का सचालन करने का निश्चय करके वे उस सस्था के अध्यक्ष बने और इस काम का अनुभव मैं भी लू, इसलिए मुझे भी उस काम को करने के लिए कहा। मैं वह काम देखने लगा।

यों तो वर्धा का गोरक्षण-कार्य, आजकल जिस तरह से पिंजरापोल चलते है, उससे बहुत ही अच्छी स्थिति में था। इस सस्था में करीब ४०० गायें और बछडे व बछिया भी थी, जिनकी सेवा का काम हाथ में लेने पर, भैंसें तथा पडिया बेच दी गई। हर साल करीब ५००० रु० का दूध बेचा जाता था और जानवरों की हालत बहुत अच्छी थी। जब जमनालालजी ने इस सस्था का सचालन हाथ में लिया तो उसमें और भी सुधार होने लगा। उन्होंने इस सस्था में जो सुधार किये, और करने की सोच रहे थे, वे यह है—

१ स्वच्छतापूर्वक गायों के थन गीले कपडे से पोंछकर साफ कपडे के बर्तन में दूध निकाला जाना,

२ दूध निकलने पर बन्दमुंह के बर्तन में छानकर ग्राहकों को भेजना,

३ हरएक गाय का दूध नापकर उसकी नोंध रखना,

४. गायों को खुराक दूध के हिसाब से देना,

५ चारा मशीन से काटकर देना,

६ गायो तथा बछडो को धुलवाना और उनकी ओर तथा खासकर सफाई की ओर विशेष ध्यान देना,

७ हिसाब व्यवस्थित रखना और आडीटर से आडिट करवा लेना,

८ बचे हुए दूध का घी बनवाना,

९ गाव के व्यापारियो के अतिरिक्त दूसरे लोगो को इस कार्य में लगवाना,

१० केवल गाये ही गोरक्षण मे रखना।

उन्होने दो-तीन महीने की अवधि में ये सारी बातें वर्धा में करवाई थी। केवल वर्धा में ही यह काम करवाके सतोप नही माना। वे बैलगाडी में बैठकर गोरक्षणवाले गाव मे भी गये थे, जो वर्धा से ६ मील था। उसके पहले हम लोगो को भेजा था। इस बार भी हम साथ थे। उन्होने खेती के काम के जानकार लोगो को भी साथ लिया था। वहा वे दोपहर को पहुचे और रात को वहा रहे, खेती देखी, सभी बातें बारीकी से देखकर जगल मे पहाडो पर घूमे, गायें देखी, पानी की व्यवस्था देखी, साथ में जो विशेपज्ञ आये थे, उनके साथ चर्चा की और रिपोर्ट मागी। रिपोर्ट आने पर उन्होने जो-जो सुधार करने का विचार किया था, वे ये हैं—

१ सूखे जानवरो के अतिरिक्त कम दूध देनेवाले जानवरो को वहा रखा जाय और घी-उत्पत्ति का कार्य किया जाय, जिससे गायो तथा बछडो को खुराक मिले और वे अच्छे रहे।

२ हरा चारा हमेशा मिले, इसलिए कुए खुदवाकर हरे चारे की खेती शुरू की जाय।

३ खेती खासकर चारे की ही बढाना। कपास आदि की उपज कम की जाय।

४ खेती और जमीन और भी ज्यादा खरीदकर बाहर के सूखे जानवर भी उचित खर्च लेकर रखे जाय।

५ गाव में धार्मिक और शुद्ध वातावरण रहे, इसके लिए एक धार्मिक

आदमी रखा जाय।

६ गाव में जो कार्यकर्त्ता रहते है, उनके बच्चो को शिक्षा तथा उनकी औरतो को उद्योग मिले, ऐसे उद्योग शुरू करवाये जाय।

इसके सिवा वर्धा के लिए उन्होंने ये बातें सोची थी—

१ अभी जो मकान है, उनके आस-पास जानवरो को घूमने तथा चरने के लिए जगह नही है। इसलिए जमीन खरीदना और हरे चारे की खेती करना। यदि वहा जमीन न मिल सके तो दूसरी जगह सस्था को ले जाना, जहा हरे चारे की खेती हो सके।

२ चारा बिना काटा डालने से जो फिजूल खर्च होता है, वह बन्द कराने के लिए तथा गाव के उपयोग के लिए पावर की मशीन लगाना।

३ अच्छा साड रखकर उसका उपयोग गाव की गायो के लिए करवाना।

४ चारे-दाने का स्टाक करने योग्य भाव से तथा मुनाफा लेकर गोपालको को देना।

५ गोपालको को उनके दूध की बिक्री में सहायता पहुचाना और शुद्ध घी की बिक्री का प्रबन्ध करना।

६ बीमार, लूले, लगडे जानवरो की सेवा के लिए जानवरो की बीमारियो का जानकार आदमी रखकर दवाखाना चलाना।

इन सब बातो को सविस्तर मैंने इसलिए लिखा है कि हमें उनकी कार्य-पद्धति की जानकारी हो। वे जिस काम को हाथ में लेते थे, उसकी गहराई में जाकर कैसा काम करते थे, उसकी जानकारी कार्यकर्त्ताओं को मिले, जिससे वे भी उसी तरह से काम करना सीखें।

वे चाहते थे कि पिंजरापोल, गोरक्षण-सस्थाए लूले-लगडे बीमार और बूढे जानवरो को पालने तथा शुद्ध दूध-घी के काम के अतिरिक्त निम्न-लिखित कार्य भी करें। जो कार्यक्रम उन्होंने सोचा था और गो-सेवा-सघ के सम्मेलन ने मजूर किया था, वह इस प्रकार है—

पिंजरापोलो और धर्मार्थ गोशालाओं का असली उद्देश्य बीमार, बूढे

और अपाहिज पशुओं को आश्रय देकर उन्हें कत्ल और कष्टमय जीवन से बचाना है। इस सम्मेलन की राय में इस उद्देश्य का यथार्थ पालन होने के लिए पिंजरापोलों की व्यवस्था और कार्यक्रम में नीचे लिखे सुधार और विस्तार होना जरूरी है—

१ हर संस्था में पशुओं का इलाज, परवरिश और दूसरी वैज्ञानिक व्यवस्था हो और इन सहूलियतों का लाभ आस-पास की जनता को भी मिले।

२ संस्था में आनेवाले अपंग और घटिया नस्ल के मवेशियों की वंश-वृद्धि बिल्कुल रोकी जाय और मजबूत और अच्छी नस्ल की गायों के लिए अच्छी खुराक, देखभाल, वंश-सुधार की इस तरह से व्यवस्था की जाय कि ज्यादा दूध देनेवाली गायें और ज्यादा काम देनेवाले बैल तैयार हों।

३ हर संस्था में अच्छे सांड रखे जायं और उनका लाभ जनता को मिले।

४ हर संस्था के पास यथासंभव विशाल चरागाहों की व्यवस्था हो, जहां आसपास की जनता की सूखी गायों और बछड़ों को भी रियायती खर्च देकर रखा जा सके। इन चरागाहों पर अच्छे सांड भी रखे जायं।

५ हर संस्था के पास हरा घास-चारा काफी मात्रा में पैदा करने और उसे साइलेज वगैरा के रूप में संग्रह करने की व्यवस्था हो।

६ पिंजरापोलों के मकान सफाई और तन्दुरुस्ती का खयाल रखकर बनाये जायं और वहां कुएं, पानी की खेती वगैरा की रचना वैज्ञानिक ढंग से और निश्चित नमूने पर हो।

७ हर संस्था में एक पशु-विशारद होना चाहिए, जिसकी देख-रेख में संस्था चलाई जाय। उस विशारद को पशु-पालन, उसके लिए होनेवाली खेती और पशु-चिकित्सा का ज्ञान होना चाहिए।

यदि हमारी गोरक्षण संस्थाएं उनकी कल्पना के अनुसार काम करने लग जायं तो आज जिन लोगों को गोरक्षिणी संस्थाएं एक बोझ मालूम होती हैं, वे वैसी न रहकर उपयोगी बनेंगी और सचमुच ही गाय का रक्षण कर समाज एवं देश की उन्नति करेंगी।

: ६० :

कीचड़ में कमल

पूर्णचन्द्र जैन

सेठ जमनालालजी बजाज जब जयपुर राज्य प्रजामडल के प्रथम वार्षिक अधिवेशन के सभापति के रूप में जयपुर आये तो मेरी धुन यह रही कि इन्हें पहचानू और देखू कि सेठो के बारे में मेरी जो धारण है, वह उनके मामले में सही है या गलत। यह तो मैं जानता था कि सेठजी वर्षो से राष्ट्रीय क्षेत्र मे कार्य कर रहे है और काग्रेस की कार्य-समिति के एक सदस्य—कोपाध्यक्ष रहते आये है, पर किसी सस्था—अच्छी-से-अच्छी सस्था—मे पद मिल जाने को मैं पदासीन व्यक्ति का कोई विशेष गुण नही मानता। सार्वजनिक सस्थाओ में जहा पदो की विशेषता और अनेकता है वहा उन पदो को हथियाने के साधनो की अनेकता भी साफ दिखाई देती है।

मैं अपने मैले मन से देखने लगा कि जमनालालजी सचमुच सेठ अर्थात् पूजीपति है या कि श्रेष्ठी अर्थात् एक अच्छे व्यक्ति। प्रजामडल की कार्यकारिणी कमेटी और अधिवेशन की विषय-निर्वाचिनी समिति की बैठको में तथा अधिवेशन के समय एक महाशय द्वारा सेठजी के प्रति प्रकट किये गए रोष और असभ्यतापूर्ण प्रदर्शन तथा उसके फलस्वरूप कुछ व्यक्तियो की उत्तेजनापूर्ण प्रक्रिया आदि के समय सेठजी की वास्तविकता सामने आई और मेरी आखें खुली। देखा कि जमनालालजी बडी-बडी मसनदो के सहारे या मोटे गद्दो पर लुढक जानेवाले सेठजी, या धन के बल से नेतागीरी को खरीद लेनेवाले पूजीपति या पद के जोश मे उलझ जानेवाले नेता नही है। बहुत कम पढे-लिखे होने पर भी उनकी दृष्टि पैनी थी, प्रस्तावो के मसविदों में मार्के के सुझाव-सशोधन वे लाते थे। वैधानिक पेचीदगियो मे भी उनका

दिमाग तु ला हुआ रहता था। वाणी और क्रिया का संयम तथा विवेकपूर्ण प्रयोग, उनकी आन्तरिक स्थिरता, निर्मलता, सहृदयता और सहनशीलता को प्रकट करता था। प्रतिपक्षी या सामने का व्यक्ति, या उनका ही कोई साथी विवाद में पड़ने पर अनर्गल बोलता या क्रोधित हो पड़ता तब भी उनकी मुद्रा शान्त रहती थी और जबान में यही थोड़े और सहज-सरल शब्द निकलते थे।

उन्हें आदमी उनके नित्य के जीवन की और कामों में खूब देखने के—निकट सम्पर्क में आने के—काफी अवसर मिले। वास्तविक जीवन यही है, जो अपने प्रवाह से सम्पर्क में आनेवालों का मैल छुड़ाता जावे। उनके सच्चरित्र जीवन, शुद्ध हृदय और शान्त स्वभाव ने सभीको प्रभावित किया होगा।

धन की प्रचुरता में भी उन्होंने अपना जीवन कष्ट-सहिष्णु, संयमी, निष्ठावान्, त्यागी, परिश्रमी, और जाति, वर्ण धर्मादि के भेद-भाव से ऊपर बना लिया था। धन संग्रह हो गया। यह अपने-आपमें बुरी बात नहीं। उसका उपयोग स्व-वासनाओं की तृप्ति और निज की सुख-संतुष्टि में होता है तो वह पाप है, जो राष्ट्र, समाज और धर्म, तीनों के लिए घातक है। संग्रह की हुई पूंजी का त्याग हो—यह अच्छा है। पर उससे भी श्रेष्ठ उसका सदुपयोग होना है। कई एक मारवाड़ी सेठ धन का त्याग करते हैं पर वह त्याग कुछ तो स्वार्थ-पूर्ण होता है और कुछ विवेकशून्य। जमनालालजी ने अपनी पूंजी का—बाह्य धन-सम्पत्ति तथा मन और शरीर की पूंजी का—उपयोग करना खूब अच्छी तरह जान लिया था। तभी तो संसार का एक श्रेष्ठतम पुरुष उनके पास खिंचा हुआ चला गया और सेवाग्राम एक तीर्थ बन गया।

•

जमनालालजी सब तरह से सूक्ष्मदर्शी थे। व्यक्ति को पहचान लेना और उसे साथ में ले सेवकों की मंडली को बढ़ा लेना वे खूब अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने अपने हृदय की विशालता और उत्साह के इंजेक्शन से व्यक्तियों को अपनाया, साथ लिया और बढ़ाया। कई प्रांतों और कई एक क्षेत्रों में उन

की याद हमेशा बनी रहेगी, क्योंकि उनमें जीवन फूकनेवाले कार्यकर्ता किसी-न-किसी रूप उनसे बल पाते रहे। उनकी संवेदना, मानवता सबसे बड़ी वस्तु थी। इसीलिए उनके निधन पर उनके थोड़े या बहुत संपर्क में आये हुए सभी लोगों ने महसूस किया कि उनके घर का बुजुर्ग, भाई या सम्बन्धी उठ गया है। सत्य, अहिंसा और ठोस सेवा में उनका पक्का विश्वास था और यही वे अपने विशाल परिवार से चाहते थे। आखिरी दिनों में गो-सेवा-जैसे कार्य की जिम्मेदारी उन्होंने ली, उससे उनकी रचनात्मक कार्यों के प्रति रहनेवाली रुचि और निष्ठा का एक और परिचय मिलता है।

•• •• ••

यह विरोधी-सी बात मालूम देगी कि जमनालालजी की इस सेवा-कातरता, सादगी तथा ग्रामोद्योगों की उन्नति की दृढ भावना के बावजूद उनकी मिलें व फर्में चलती थीं और धन-राशि गुणित हो रही थी। इसका स्पष्ट और सच्चा समाधान महात्मा गांधी के शब्दों में यह मानता हूं—"अगर वह अपनी संपत्ति के आदर्श ट्रस्टी नहीं बन पाये तो इसमें दोष उनका नहीं था। मैंने जानबूझकर उनको रोका। मैं नहीं चाहता था कि वे उत्साह में आकर ऐसा कोई काम कर लें, जिसके लिए बाद में शांत मन से सोचने पर उन्हें पछताना पड़े।" किसी सेठ का व्यापार चलना खराब बात नहीं है, यदि वह शोषण पर और अनेक को कुचलकर कुछ को बनाने की दुर्नीति पर न चल रहा हो और जिस क्रम से व्यापार-व्यवसाय की सफलता के फलस्वरूप धन बढ़ता हो, उससे अधिक वेग से उस धन का सदुपयोग होता जा रहा हो। सेठ जमनालालजी इसीलिए भारतीय सेठों के बीच इने-गिने सेठों की भांति विशिष्ट स्थान रखनेवाले थे और कीचड़ में एक अद्वितीय कमल-रूप से खिले थे।

: ६१ :

छाया चित्र

जवाहिरलाल जैन

उज्ज्वल गौर वर्ण, छह फुट से भी ऊचा कद, भरा हुआ शरीर, आत्मिक तथा शारीरिक स्वस्थता से आलोकित मुखमण्डल, बालसुलभता तथा सौम्यता—यह चित्र मेरी आखो के सामने आया, जब मैंने पहले-पहल सेठ जमनालालजी से भेंट की।

शायद सन् १९३३ का उत्तरार्द्ध था। सेठजी सीकर आये हुए थे। सीकर से कुछ मील पर ही काशी का वास नामक ग्राम है, जहा उन्होंने जन्म लिया था। सीकर में सेठजी का निवास-स्थान 'कमरें' के नाम से मशहूर है।

मैं 'कमरें' पहुचा। यह कोई एक कमरा नही, बल्कि पचासो मकानो से युक्त एक विस्तृत अहाता है। सेठजी बीच के बडे हाल में बैठे हुए थे। मैं वही गया। पहली बार मैंने उनमें स्नेह और निराडबरता की जो झाकी देखी, वह आज भी वैसी ही बनी है। पहली बार मिलते ही मेरा बाहरीपन खत्म होगया। मैं अपने-आपको उनका आत्मीय समझने लगा।

पहली ही भेंट में मैंने जमनालालजी की लोकप्रियता का रहस्य समझ लिया। उस समय सेठजी के साथ उनका परिवार तो था ही, साथ में कुछ काग्रेसी कार्यकर्त्रिया—खासकर बम्बई की कुछ देशभक्त बहनें भी थी, जो शायद मरुभूमि देखने के लिए आई थी।

केसरिया साडी पहने नवीनतम शिक्षाप्राप्त उन देशभक्त बहनो से सेठजी के पिता-पुत्री-सुलभ विनोद तथा तर्क और उनके मधुर निश्छल तथा स्वतत्र हास्य से आलोकित वातावरण मे मैंने प्रवेश किया। अभी सेठजी विनोद में सलग्न थे कि सीकर के दो-तीन प्रतिष्ठित व्यापारी आगये। सेठजी उठे और प्रेम-पूर्वक कुशल-क्षेम के बाद अत्यन्त गम्भीरता-पूर्वक

व्यापार-व्यवसाय-सम्बन्धी बातें करने लगें। उस समय सेठजी को कोई देखता तो यही कहता कि इस व्यक्ति ने सारे जीवन मे व्यापार को ही अपना आराध्य देव बनाया है और कभी कोई दूसरा काम ही नही किया। व्यापार-सबधी नीतियो तथा प्रगतियो का गहरा अध्ययन, वस्तु-स्थिति की यथार्थता का ज्ञान तथा बातचीत के प्रत्येक विषय पर अपने अनुभव पर आधारित दृढता और स्पष्टता से पेश की गई राय, इस बात को बतलाती थी कि यह व्यक्ति जहा पहुचेगा, वहीं आदरणीय स्थान प्राप्त कर लेगा।

व्यापारियो के जाते ही सेठजी के प्राइवेट सेक्रेटरी कुछ चिट्ठी-पत्री लाये। जयपुर-सरकार से कुछ महत्वपूर्ण बात चल रही थी। सेठजी ने चिट्ठिया सुनी। उनके उत्तर लिखवाये। कुछके ड्राफ्ट बनाने के लिए उनके नोट्स बतलाये। जो ड्राफ्ट उन्होंने बनाये थे, वे सुने, उनमे परिवर्तन तथा परिवर्द्धन किया। आध-पौन घटे में यह सब खतम करके फिर कमरे में आये।

अभी आकर बैठे ही थे कि सीकर के कुछ कार्यकर्त्ता आगये। उनसे बातचीत होने लगी। सेठजी ने हरेक से कुशल-क्षेम, उनके बाल-बच्चो, भाई-बहनो, माता-पिता आदि के विषय मे विस्तृत प्रश्न किये। जन्म, मृत्यु, विवाह आदि के विषय मे आवश्यक जानकारी के बाद सबके प्रति खुशी, सहानुभूति अथवा शोक प्रदर्शित कर अपनी आत्मीयता तथा स्नेह का परिचय दिया। उनकी स्मरण-शक्ति ऐसी तेज थी कि हरेक परिचित व्यक्ति की उससे अन्तिम बार मिलने से अबतक की सभी घटनाए पूछते और उसके सुख-दुख मे भाग लेते। इस प्रकार वे प्रत्येक मिलनेवाले के हृदय में विशिष्ट स्थान बना लेते थे।

इसी तरह तीन बजे से छ बजे तक एक के बाद एक आने-जानेवालो का तांता-सा बधा रहा, लेकिन सबके साथ वही सौजन्य, वही अपनापन, वही प्रेम और वही सहानुभूति। इसमे तीव्र स्मरण-शक्ति बहुत सहायक होती थी। दूसरा बडा गुण जो सेठजी को आकर्षण तथा श्रद्धा का केन्द्र बना देता था, उनकी स्वस्थ साधारण बुद्धि थी, जो साधारण कही जाने पर भी मनुष्यो में बहुत कम पाई जाती है। इसीके कारण वे

तत्काल ही वात की तह तक पहुच जाते थे और चाहे लोगों पर उनकी विद्वत्ता का सिक्का न वैठे, किन्तु उनकी बुद्धिमत्ता, उनकी तीव्र बुद्धि, उनकी सहृदयता की छाप, दूसरे व्यक्ति पर पडे विना नही रहती थी।

सेठजी से मिलने आनेवाले लोगो मे ऐसे भी थे, जो उनकी सुधार-प्रियता तथा नवीन विचारो के विरोधी थे। वे सेठजी को उलहना देने आते थे। उनमेंसे कई तो सेठजी की बराबर उम्र होने के कारण या वडे होने के कारण उन्हें खरी-खोटी सुनाने का अधिकार रखते थे और उस अधिकार का उपयोग भी करते थे। सेठजी हँसते-हँसते उनकी वातो का उत्तर देते थे और विनोद अथवा तर्क के द्वारा उन्हें शात रखने का प्रयत्न करते थे। कोई-कोई क्रोध के वशीभूत होकर यदि शिष्टता की सीमा उल्लघित करता तो वे कह देते थे— "भई, तुम्हे क्रोध आ रहा है। अभी वात नही करेंगे। शात हो जाओ।" वे उसके लिए ठडा जल मगाते तथा और भी खातिर करते।

इतने विभिन्न प्रकृति के लोगो से माथा-पच्ची करने पर भी उनके चेहरे पर वही शाति, वातचीत मे वही सरलता, वही विनोद तथा वही निश्छल हास्य। जरा भी अलसाहट का नाम नही, परेशानी तो पास भी न फटकी थी। न आनेवालो की अविचारिता पर टीका-टिप्पणी थी, न अपने वडप्पन का भार और न अपने वैभव का प्रदर्शन। यह तो मानो उनका दैनिक कार्य-क्रम था। इतनी व्यस्तता के बीच भी वे रसोइये से यह कहना नही भूले— भोजन शाम को ६॥ वजे वन जाना चाहिए। जैनजी सूर्यास्त के पहले भोजन करेंगे। यह छोटी-सी वात थी, किन्तु वास्तविक वडप्पन की परिचायक थी।

यह चित्र आज से नौ वर्ष पूर्व मेरे हृदय-पटल पर खिचा था। उसके वाद अनेक वार मिलने का अवसर प्राप्त हुआ, किन्तु जितना गहन अध्ययन मैंने उनका किया, पूर्वोक्त चित्र के रग उतने ही गहरे होते गये और हृदय-पटल पर उनकी वैयक्तिक महत्ता की जो छापथी, वह भी लगातार गहरी होती गई।

आज तो उनके पार्थिव शरीर के अभाव मे उस चित्र के सारे रग निखर कर प्रकाशमय होगये हैं और मेरे हृदय की कालिमा के वीच वह आलोकित चित्र द्विगुण प्रभा से चमकने लगा है।

: ६२ :

स्वदेश-प्रेम का एक दृष्टान्त

श्रीनाथसिंह

जबसे महात्मा गाधी वर्धा में रहने लगे थे, राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं और स्वदेश भक्तों का वहा जमघट लगा रहता था। इनसब लोगो का आतिथ्य करने और खिलाने-पिलाने का भार अधिकतर जमनालालजी पर ही पडता था। अतिथियो के ठहरने के लिए जमनालालजी ने एक बगला बनवाया। अतिथियो को किसी प्रकार की असुविधा न हो, इसका पूरा ध्यान रक्खा जाता।

इस महमानघर में कई बार ठहरने और उनके रसोईघर की पकी अच्छी-अच्छी चीजों का स्वाद लेने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। सबसे ज्यादा मजा उस दिन आया जब जमनालालजी के भतीजे श्री राधाकृष्ण बजाज की वर्षगाठ थी। वह घटना चिरस्मरणीय रहेगी।

उस दिन खाने के लिए बैठा तो मैंने देखा कि श्री राजेन्द्रप्रसाद, श्री पुरुषोत्तमदास टडन और अन्य पूज्य पुरुषों के साथ जमनालालजी की वृद्धा माता भी भोजन करने के लिए उसी पक्ति में बैठी थी। जमनालालजी, उनकी पत्नी श्री जानकीदेवी बजाज, और उनके लडको को तो मैंने मेहमानो के साथ खाते और खिलाते देखा था, पर जमनालालजी की माता को सबके साथ बैठकर खाते हुए देखने का यह पहला ही अवसर था। जमनालालजी ने पूछने पर बताया कि आज हमारे यहा राधाकृष्ण बजाज की वर्षगाठ है, इसलिए यह कोशिश की गई है कि घर के सब लोग एक साथ बैठकर खाना खाय। उन्होंने मेहमानो को सबोधित करते हुए खास तौर से कहा, "आज आप लोगो के लिए एक बहुत ही बढिया चीज तैयार कराई गई है। यह ऐसे ही अवसरो पर बनती है।"

खानेवाले उत्सुक हो उठे कि देखें, क्या आता है। बडी प्रतीक्षा के बाद वह चीज आई। मोटे आटे का वह देहाती ढग का हलवा था। सम्भवत उसमें पानी और गुड के सिवा और कुछ न था। जब वह सबके सामने रख दिया गया तो राजेन्द्रबाबू ने थोडा-सा मुह में डालकर पूछा—"यह है क्या ?"

जमनालालजी के एक लडके ने कहा—"यह लापसी है।"

एक दूसरे सज्जन ने प्रश्न किया—"लापसी या लपसी ?"

इसपर श्रीमती जानकीदेवी बजाज ने मुस्कराते हुए कहा—"इसको आप लापसी या लपसी दोनो कह सकते हैं, परन्तु हम लोग इसे 'लापसी' कहते हैं। यह हमारे देश का खास भोजन है और विशेष अवसरो पर बनाया जाता है। बहुत प्रेम से बनाते और खाते है। इसमें खर्च भी बहुत कम होता है। जो लोग घी डाल सकते है, वे थोडा-सा घी डालकर आटे को भून लेते है। जो घी नही डाल सकते हैं, वे योही आटे, गुड और पानी में बनाकर अपना काम चलाते है।"

उस समय जो लोग भोजन कर रहे थे, वे जमनालालजी के स्वदेश-प्रेम की प्रशसा किये बिना न रह सके।

: ६३ :

अन्तिम संस्मरण

लादूराम जोशी

सन् १९४२ की ११ फरवरी को शेखावाटी के हम कई लोग सेठजी के अतिथि-गृह में ठहरे हुए थे। चिडावा के श्री मातादीन भगेरिया, श्री बदरीनारायण सोढाणी और मैं एक ही कमरे में थे। सुबह करीब सात बजे का समय था। सेठजी अतिथि-गृह मे आये। उस समय हम लोग नाश्ता कर रहे थे। उन्होंने मेरी तरफ इशारा करते हुए हँसकर कहा, "आपके साथ-साथ आपका कुत्ता भी दूध पी रहा है।" आगे बात का सिलसिला शुरू करते हुए सेठजी ने कहा, "कल चाग काई शेक अपने स्टाफ के साथ बापू से मिलने के लिए आ रहे हैं। अत तुम लोग गोपुरी की टेकडी पर मेरी कुटिया के नीचे के बँगले मे चले चलो।" यह कहकर वे दूसरे कार्यों के लिए चले गये।

भोजन के बाद हम तीनो साथी गोपुरी चले आये। करीब दो बजे श्री राधाकृष्ण बजाज को खोजते हुए एक आदमी वहा आया। उस समय हम लोग गो-सेवा-सघ के कार्यालय में बैठे बातचीत कर रहे थे। उस आदमी ने कहा कि सेठजी की तबीयत खराब है। हम लोगो के चिन्ता प्रकट करने पर चौधरी-जी ने कहा कि आजकल कार्याधिक्य के कारण वे थके हुए-से रहते हैं। कोई चिन्ता की बात नहीं है। लेकिन न जाने क्यो, मेरे मन में एक अज्ञात आशका-सी हुई और मैं बाहर आकर इधर-उधर टहलने लगा। करीब आधे घटे के बाद सेठजी का ड्राइवर हरि मोटर लिये वहा पहुच गया। उसकी उदास और खिन्न सूरत की ओर देखकर मैंने पूछा—"सेठजी की तबीयत कैसी है" ? हरि के आसुओं ने मेरे प्रश्न का उत्तर दिया। उसके हिचकिया बँध गई और वह सोफे पर गिर पडा। हम तुरन्त सेठजी के निवास-स्थान पर

पहुचे। एक लम्बी चौकी पर सेठजी का शव अवस्थित था। बापूजी सिरहाने बैठे थे और समीप ही बैठी जानकीदेवी को समझा रहे थे। वर्धा की विभिन्न सस्थाओ के कार्यकर्त्ता, महिला-आश्रम की बहने, नीचे वर्धा के सहस्रो स्त्री-पुरुष इस आकस्मिक दु खद समाचार की चर्चा कर रहे थे। सबके हृदयो मे वेदना थी और चेहरो पर सताप की छाया छाई हुई थी। ऐसा मालूम होता था कि उनकी अमूल्य वस्तु उनके पास से बरबस छीनी जा रही है। इस असख्य जन-समूह के बीच सेठजी का शव गोपुरी लाया गया और उनकी कुटिया के सम्मुख चिता पर रख दिया गया। शाम के करीब सात बजे धू-धू करके चिता जल उठी। उनकी अमर आत्मा इस नश्वर देह को छोडकर गोलोक को प्रया कर गई। हजारो स्त्री-पुरुष बिल्कुल शाति के साथ इस दृश्य को देख रहे थे। उस समय विनोबाजी ने एक बात कही, "सेठजी की आत्मा आजतक अपनी देह की सीमा मे सीमित थी, किन्तु आज इस सीमित देह से निकलकर हम सबोमे व्याप्त होगई है। यह मेरे लिए हर्ष का विषय है, शोक का नही।"

मै सोच रहा था कि जो मानव सुबह सात बजे हम लोगो से हँस-हँसकर बाते कर रहा था, वह इस शाम को ७ बजे न जाने हम लोगो से कितनी दूरी पर चला गया है। इस अज्ञेय मीमासा की तह तक कौन पहुच सकता है ? क्या इसीलिए ससार को अनित्य और दु खकारी कहते है ? इस जन्म-मरण की अज्ञेयता को किसने समझा है ? जिसके जन्म से या रहने से हजारो-लाखो आदमी प्रसन्न रहते हैं, उसके चले जाने से क्यो इतने सतप्त हो जाते है ?

इसका उत्तर सेठजी का समूचा जीवन स्वय देता है।

: ६४ :

कुछ स्मरणीय प्रसंग

अज्ञात

सन् १९२८ में मंदी आई और '३१ में तो उसने अपना प्रभाव बहुत बढा लिया। सबसे खराब थी किसानों की स्थिति। एक तो फसल कम हुई, फिर भाव एकदम गिरते गये। कर्ज चुकाना तो दूर, जीवन-निर्वाह ही कठिन था।

सेठ जमनालालजी बजाज का लेन-देन का भी काम था। कर्ज-वसूली की आशा न रहने पर उन्होंने अपने मुनीमों को जमीन-जायदाद लेकर आपस में फैसले करने को कह दिया था। उस समय श्री पूनमचन्दजी बाठिया को यह कार्य सौंपा गया।

बाठियाजी जमनालालजी के हित की दृष्टि से अपना कर्तव्य समझकर यह कार्य करने लगे। इसमें किसानों में असतोष होना या उनकी शिकायतें रहना स्वाभाविक था। फलत: कई बार उन्हें कडाई से भी काम लेना पड़ा।

अपने पास शिकायतें पहुचने पर जमनालालजी ने बाठियाजी को बुलाकर कहा, "तुम किसानों से बहुत सख्ती से पेश आते हो। यह ठीक नहीं है। इस काम से मुझे सतोष नहीं है।"

दूसरो के सुख-दुख का उन्हें इतना ध्यान रहता था। भले ही अपना नुकसान हो जाय, किसी दूसरे के प्रति कडाई उन्हें पसद न थी।

. .. ..

सन् १९२१ के लगभग की बात है। एक सेठजी ने सट्टे में करीब ८० लाख रुपया कमाया। उस समय जमनालालजी बजाज 'तिलक स्वराज्य फड' जमा कर रहे थे। वे उक्त सेठजी के यहा भी पहुचे। पहले तो सेठजी ने काफी आनाकानी की, फिर कहा कि रुपया भिजवा दिया जायगा

लेकिन जमनालालजी वास्तविकता को ताड गये। बोले, "नही, रुपये अभी देने होगे और मैं लेकर ही उठूगा। मै देख रहा हू कि आप इतनी बडी रकम और कमाई को पचा नही सकेंगे—वह आपके यहा रह नही सकती। इसलिए आपसे शुभ कार्यों में जितना भी लिया जा सके, लेना आवश्यक है। यही आपका पैसा कहलायगा।"

आखिर उनसे दो-तीन फडो के लिए जमनालालजी दो-ढाई लाख रुपयो के चैक लेकर ही माने। लेकिन चैक लेकर भी वे वहा से नही सरके। उसी समय उनके मुनीम को वैक में भेजा और कहा कि चैको के स्वीकृत हो जाने पर ही मैं यहा से जाऊगा।

थोडे दिनो बाद मालूम हुआ कि उक्त सेठजी ने सब रुपया सट्टे मे खो दिया। वे पैसे-पैसे को मुहताज होगए। जमनालालजी ने उन्हें खर्च चलाने के लिए पाच हजार रुपया ऋण-स्वरूप दिया।

एक बार जब जमनालालजी ने अपने मित्रो, सबधियो आदि को दिये गए कर्ज की रकमें बट्टेखाते लिखानी शुरू की तो उसमें ये ५ हजार रुपये भी थे।

• •

जमनालालजी बजाज के दादा श्री बच्छराजजी अपने पहले परिवार से अलग होकर वर्धा आये थे। अपने पुरुषार्थ से उन्होने धन कमाया, लेकिन पूर्व कुटुम्बियो ने जमनालालजी पर बटवारे के लिए मुकदमा कर दिया। वे गरीब थे और चाहते थे कि इनकी कमाई मे से कुछ मिल जाय। यह मुकदमा कई वर्षो तक चलता रहा।

जमनालालजी ने इस काम के लिए वकीलो और मुनीमो की एक समिति कायम कर दी थी। एक दिन की बैठक में समिति के सदस्यो को ऐसा लगा कि अमुक वर्ष की वही अपने विरुद्ध पडती है और विरोधी पक्ष उसे पेश करने के लिए जोर दे रहा है, इसलिए उसे दबा दिया जाय। एक मुनीम ने वही दबा दी।

जमनालालजी को जब मालूम हुआ कि उस वही को अदालत में पेश करने की मांग की जा रही है और अपने यहा भी इसको लेकर काना-फूसी हो रही है तो उन्होंने मुनीम को बुलाकर पूछा। पहले तो मुनीम ने इकार कर दिया। लेकिन जब उन्होंने मल्ली से पूछा और सौगद दिलाई तब उसने कहा, "जी, वह वही इसलिए छिपाई गई है कि उससे अपना नुक्सान होने की आशका है।"

जमनालालजी ने कहा, "हम हारे या जीतें, पर असत्य व्यवहार बिल्कुल नहीं होना चाहिए।"

और वही अपने पास मगवाली।

वही समय पर अदालत में पेश की गई।

अचरज कि जिस वही से हारने का डर था, उसीसे मुकदमा जमनालाल जी के पक्ष में मजबूत होगया।

: ६५ :

दुर्लभ जीवन

सतीशचन्द्र दास गुप्त

जमनालालजी का जीवन विशेष ध्येय के लिए समर्पित था। समर्पण जितना ही अधिक होता है उसका स्वरूप उतना ही अधिक पवित्र होता है और उतना ही समय और परिस्थिति पर उसका प्रभाव अधिक पड़ता है। और यह समर्पण का भाव जमनालालजी के जीवन और प्रवृत्तियो में उत्तरोत्तर विकास पाता रहा।

वह प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। व्यापारिक क्षेत्रमें वह तेजी से चोटी पर पहुच गये और देश के विख्यात व्यक्ति बन गये और फिर गाधीजी के प्रभाव में उनकी समस्त प्रतिभा राष्ट्र-हित की ओर उन्मुख होगई और उन अनेक पारमार्थिक सस्थाओं के रूप में प्रकट हुई, जिनको उन्होने जन्म दिया या पोषण किया।

जमनालालजी का-सा जीवन दुर्लभ होता है। आज के युग में तो वह पराकाष्ठा है। भारतीय इतिहास का वर्तमान युग उनसे पवित्र और गौरवान्वित हुआ।

: ६६ :

नैतिक भावना के व्यक्ति

एक पत्रकार

कुछ ही महीने पहले जब मै जमनालालजी से मिला था तो वे उस बीमारी से अच्छे हो रहे थे, जिसके कारण वे जेल से छूटे थे। उस समय हम दोनो मे से किसीको भी यह नही मालूम था कि वही हम दोनो की आखिरी मुलाकात है।

वे एक प्रिय, मूल्यवान और सम्माननीय मित्र थे। हमारी मित्रता सन् १९३० में नासिक-जेल में हुई, जब हम 'ए' श्रेणी के कैदियों का सामूहिक जीवन व्यतीत करते—साथ रहते, साथ पढते, साथ प्रार्थना करते थे। उनमें लोगों का विश्वास अर्जित करने का श्रेष्ठ गुण था और मै शीघ्र ही उनकी व्यक्तिगत घनिष्ठता के जादू से आकर्षित होगया। हमने कितनी ही समस्याओं पर चर्चा की—अपने व्यक्तिगत जीवन, देश के भविष्य, गाधीजी के व्यक्तित्व और प्रभाव, हिन्दी, भगवद्गीता आदि-आदि पर। उस समय से उनके और मेरे—दोनो परिवार भी परस्पर मित्र बन गये।

जमनालालजी में व्यापारिक बुद्धि-वैभव था। अगर उनपर गाधीजी का जादू न चल जाता तो वे सामान्य अर्थ में देश के प्रमुख व्यापारी बन जाते। पर सच पूछो तो वे प्रमुख व्यापारी थे भी। गाधीजी के साम्राज्य मे उन्होने व्यापारिक सगठन-शक्ति का उपयोग चरखा-सघ, हिंदी-प्रचार और अन्य देश-व्यापी रचनात्मक कार्यो के लिए किया।

बहुतो को पता नही है कि जमनालालजी, केवल सगठनकर्ता ही नही बल्कि एक राजनीतिज्ञ भी थे। उनका राजनैतिक निर्णय ठोस होता था। वे राजनैतिक सगठनो की सृष्टि और उनका नियत्रण कर सकते थे। मध्य-प्रदेश के सार्वजनिक जीवन में उन्हे अक्सर ऐसा कर्तव्य प्राप्त हो जाता था

कि जैसा पहले न देखा गया और न महसूस किया गया। उन्होंने जयपुर-प्रजा-मंडल की कार्य-शीलताओं का नेतृत्व किया। कांग्रेस हाई कमांड की कार्रवाइयों में वे ऐसे दृष्टिकोण लाने में सफल हुए, जो मजे हुए राजनीतिज्ञों के लिए भी आश्चर्य का विषय था।

उनमें संगठन की जो असाधारण क्षमता थी उसके द्वारा उन्होंने अपने सम्पर्क में आनेवालों का सुन्दर संगठन किया। उन्होंने होनहार लोगों को चुना। उन्हें अनुकूल काम दिये। जिन लोगों का जिधर रुख था, उन्हें उसीमें जमा दिया।

वे हिन्दू-शास्त्रों में वर्णित ढंग के अमीर थे। उनके पास धन था तो इसलिए कि वे सत्पात्रों और सत्कार्यों के लिए दें। १९३० में जब हम विचार-विनिमय करते थे तो मालूम हुआ कि उनके दान उस समय तक ही लाखों तक पहुंच चुके थे। जिस किसीको किसी अच्छे काम के लिए रुपयों की जरूरत होती, वह जमनालालजी से या उनके द्वारा पा जाता था। फिर भी वे दान लेनेवालों की सत्पात्रता की परीक्षा करने में बहुत सावधान रहते थे। अपात्रों को एक पाई भी नहीं देते थे—पर सत्पात्र को देने मे तो वे सीमा का उल्लंघन कर जाते थे। वे एक अपरिग्रही की भावना से दान कर देते थे।

व्यापारिक परम्परा की आदतों के होते हुए भी वे एक बड़े आदर्शवादी और नैतिक भावना के आदमी भी। जेल-जीवन की कठोर स्थिति में भी, जबकि हममें से श्रेष्ठ लोगों को भी जेल के नियम तोड़ने का लोभ हो जाता था वे उनका पालन स्वयं तो सावधानी के साथ करते ही थे, दूसरों से भी कराते थे। राजनैतिक मामलों में वे उनके नैतिक पहलू को नहीं भूलते थे और शायद गांधीजी और उनके बीच बंधन की दृढ़ता का सबसे बड़ा कारण यही था।

गांधीजी के व्यक्तित्व में चमत्कारपूर्ण बात यह थी कि वे लोगों से आत्म-समर्पण करा लेते थे, अन्यथा ऐसे लोग पूर्णतः सांसारिक ही बने रहते। जमनालालजी का आत्म-समर्पण बिल्कुल परिपूर्ण था। जमनालालजी की गांधीजी के प्रति जो भक्ति थी उसे देखते हुए उस प्रेरक व्यक्ति 'गांधीजी' के शक्तिशाली आकर्षण का पता लगता था।

: ६७ :

चन्द दिनों के साथी

दातारसिंह

श्री जमनालालजी से पहले-महल मेरी तब मुलाकात हुई जब महात्माजी ने मुझे १९४० में वर्धा में गो-सेवा-सघ की उद्घाटन-सभा मे भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया था। सघ के नियमोपनियमो पर बहस करने मे हमें लगभग एक सप्ताह का समय लगाना पडा। चूकि जमनालालजी ही इस सस्था के सर्वेसर्वा थे, मैंने अधिक समय उनके साथ बिताया। मैं बजाजवाडी में ठहरा था। वहा से हम महात्माजी से बातचीत करने सेवाग्राम जाया करते थे और महात्माजी बजाजवाडी आया करते थे। जब महात्माजी ने देखा कि हम उस काम में रम गये तो उन्होने कहा कि अब आगे के लिए तुम दोनो भाई-भाई होगे और सघ के लिए मिलकर काम करोगे। इसलिए हमने इस सगठन को विकसित करने की योजना बनाई और उसके लिए देश के विभिन्न भागो में जाने का कार्यक्रम बनाया, लेकिन दुर्भाग्यवश माण्टगोमरी से घर पहुचने के पहले ही मुझे अखबारो द्वारा जमनालालजी के निधन का समाचार पाकर गहरा धक्का लगा।

उनका व्यक्तित्व, सचाई, कठिन कार्य-साधना और कार्य के प्रति लगन ने मुझे इतना आकर्षित किया कि उन थोडे ही दिनो के साथ से मैंने यह महसूस किया कि हम लम्बे समय से मित्र हैं और उनकी मृत्यु मुझे उतनी ही दु:खद लगी, जैसे मेरा अपना ही निकट-सम्बन्धी मर गया हो।

: ६८ :

संस्मृति

अकबर रजबअली पटेल

मैं जब अपने काकाजी के बारे में कुछ भी लिखना चाहता हू तो अनेक घटनाए मेरे दिमाग में चक्कर लगाने लगती हैं। मैं जमनालालजी को इसी नाम से सम्बोधित करता था। एक बालक के रूप में मैं काकाजी को अपने मैदान में टहलते देखता था और हमेशा सोचता था कि काकाजी कितने लम्बे कद के थे और इससे मैं खुद लम्बा बन जाता था। वे जब कभी बम्बई में होते तो हमारे यहा आया करते थे। उनसे मेरे पिताजी का पहला परिचय सन् १९२१ में एक ऐसे व्यक्ति के द्वारा हुआ जो मेरे पिताजी तथा काकाजी दोनो ही का दोस्त था। काकाजी की बातचीत में दभ का नाम नही था और उनकी बातें खरेरूप में सीधे दिल पर असर करती थी, जो कि अन्य व्यापारियो की डीगभरी बातो के समान नही होती थी। पहले-पहल काकाजी की बाते सुनकर कोई भी उन्हें रूखा समझने की भूल कर सकता था, परन्तु उसे शीघ्र ही मालूम हो जाता था कि वे रूखे नही, सत प्रकृति के थे। वे आपके अन्तरतम को जानते थे और आपके उस अन्तरतम को बाहर लाना चाहते थे। इस तरह हम-जैसे नवयुवको के लिए वे पिता-तुल्य थे और बडो के लिए सच्चे भाई के रूप में।

मैं कभी-कभी उनसे वाग्युद्ध कर बैठता था और हमारी बहस का विषय बनती थी अहिंसा। वे बडे ही चुस्त अहिंसक थे और मैं सदा उनसे इस विषय में मतभेद रखता था। एक दिन मैंने उनसे हँसते हुए कहा—"इन्सान तो आखिर जानवर ही है।" उन्होने फौरन जवाब दिया—"नही, कुछ जानवर तो इन्सान से भी बेहतर है।" और तब मैंने अपनी बात में सशोधन करते हुए कहा—"इन्सान तो जानवर से भी बदतर है।"

उन्होंने अहिंसा का सहारा इसलिए लिया था कि उनका विश्वास था कि वह मानवीय प्रगति के लिए अनिवार्य है। अगर आप रचना करना चाहते हैं तो आपको अच्छाई की रक्षा करनी होगी, बुराई अपनी मौत मर जायगी—बुराई को मारने में लगकर अपने हाथ को गन्दा क्यो किया जाय और खतरा क्यो मोल लिया जाय, जिससे बुरे रोगाणुओं के इन्जेक्शनो का कोई अश आपके शरीर में रहकर विकार पैदा करे।

मैंने काकाजी को असली रूप में तब पहचाना जब हमारे पिताजी की मृत्यु होगई। हम सब घबडा उठे थे और उनकी लम्बी बीमारी से हम सब परेशान होकर थक गये थे। ऐसे समय पर काकाजी हमारे काम आये और हमारे मामलो को दुरुस्त किया। कोई भी व्यक्ति ऐसे नि स्वार्थ भाव से कोई काम क्यों करता ? परन्तु मानवता का यह महान् नायक प्राणियो की सेवा के लिए ही पैदा हुआ था। वे जब कभी बम्बई आते हमारे पास आते और हमारी सभी चिन्ताए दूर कर जाते।

हम माथेरान में थे उस समय हमें काकाजी के दु खद अवसान का समाचार मिला। सुनकर हम बिल्कुल स्तब्ध रह गये। यह मौत ऐसी आकस्मिक थी। वे बहुत बुड्ढे तो थे नही। एक महीना पहले ही मैं उनसे वर्धा मिल आया था और जब मैंने पूछा कि उनका उस एकाकी झोपडी में रहने का आशय क्या है और वे मोटरकार तथा रेल-गाडी की यात्रा त्याग-कर ऐसा तपस्यामय जीवन क्यो बिता रहे हैं। तो उसका जवाब उन्होंने यह दिया कि दो महीने बाद जब उनकी तपस्या की अवधि समाप्त हो जायगी तो वे उसका उत्तर मुझे देंगे। उनकी उस बात पर विचार करता हू तो मुझे लगता है कि वे अपने भगवान् द्वारा उस लोक में बुला लिये जाने का कोई इशारा प्राप्त कर चुके थे, इसीलिए उन्होंने अपना दिल सादा और परिपूर्ण बना लिया था। हा, बालक के रूप में उन्हें देखकर मैं उनके समान लम्बा होना चाहता था। जब अन्तिम बार उनसे मिला तो मैं उनसे भी आगे बढ गया, मेरे हृदय के नायक जीवन की दौड में गिर गये थे। उनकी आत्मा को अनित्य शान्ति प्राप्त हो!

: ६९ :

एक हृदयस्पर्शी प्रसंग

महेन्द्रप्रताप साही

गुप्तदान किसी अनधिकारी को प्राप्त हो, इस विचार से जमनालालजी कभी सहमत न थे। अनधिकारी से उनका तात्पर्य किसी ऐसे व्यक्ति से था, जो दान पाकर उसका दुरुपयोग करे, अर्थात् दीन-आरत न होते हुए भी आर्थिक सहायता पाकर उसकी अधर्म की ओर प्रवृत्ति उत्तेजित हो, ऐसे दान का महत्व उनकी दृष्टि में न था। साथ ही, यदि अनेक धार्मिक कार्यों में बुद्धि से सहायता ली जाती है तो गुप्तदान में उसका प्रयोग-प्रयास परमावश्यक है।

ऊपर लिखे सिद्धांत का जीता-जागता उदाहरण एक बार मुझे जमनालालजी के संपर्क में प्राप्त हुआ, जिसने मेरे हृदय पर बड़ा प्रभाव डाला। उस घटना की स्मृति सदैव बनी रहती है।

लगभग १६ वर्ष पहले की बात है। जमनालालजी प्रसिद्ध चिकित्सक श्री दीनशा मेहता के आरोग्य-केन्द्र में स्वास्थ्य-साधन कर रहे थे। उन दिनों वह प्रातःकाल नियमानुसार वायु-सेवन करने तथा साधारण व्यायाम के हेतु रोज टहलने आया करते थे। स्वभावतः उनका अतिथि रह-कर मैं भी उनके साथ हो लिया करता था।

एक दिन जमनालालजी नगर में घूम रहे थे। अचानक एक मैला-कुचैला व्यक्ति सामने आगया और करुण शब्दों में अपनी विपत्ति का कुछ परिचय देकर आर्थिक सहायता की याचना करने लगा। जमनालालजी के पास एक छोटा-सा बटुआ था, जिसमें, संयोगवश, उस समय केवल एक इकन्नी थी। चलते-चलते अधिक ध्यान न दे सकने के कारण उन्होंने जल्दी से वह इकन्नी निकालकर उस व्यक्ति को दे दी, परन्तु याचक को यह स्वीकार

व हुआ और उसने निर्भीकता से उत्तर दिया कि यह सहायता उसके लिए पर्याप्त न होगी। इसपर जमनालालजी ने फिरकर मेरी ओर देखा, "क्या आपके पास टूटे पैसे होगे ?" मैंने झट से अपना बटुवा खोला और एक चवन्नी निकालकर दे दी, परन्तु याचक ने इस बार भी धृष्टता और हठ का परिचय देते हुए वह चवन्नी लौटा दी।

अब मै बडे सकोच में पड गया। सोचने लगा कि याचक का दुराग्रह सेठ-जी को अवश्य ही रुष्ट कर देगा और यह सेठजी की सहिष्णुता की परीक्षा होगी। परन्तु सेठजी ऐसी कितनी ही परीक्षाओं में पहले ही सफलता से उत्तीर्ण हो चुके थे। यह तो केवल मेरेलिए ही एक नई-सी बात थी।

सेठजी ने एक क्षण विचार किया और बोले—"क्यो भाई, क्या बात है ? तुम अपना दु ख तो बताओ।" वह बोला, "श्रीमान्‌जी, मैं दसवा दर्जा पास हू, लेकिन मुझे नौकरी नही मिलती, क्योकि मुझे एक भयानक गुप्त रोग है। मेरे छ बच्चे हैं और उनके निर्वाह का कोई साधन नहीं।" इसपर सेठजी फिर ठहरे और थोड़ी देर रुककर बोले, "ठीक है। अच्छा, आओ मेरे साथ मोटर पर बैठो। चलो, किस मुहल्ले में रहते हो ?" उस व्यक्ति ने एक दूर मोहल्ले का नाम बताया और मोटर पर बैठ गया। साथ में सेठजी तथा उनकी धर्मपत्नी, मैं और ड्राइवर बैठे। थोडी देर चलने के पश्चात् हम लोग एक सकरी गन्दी गली के द्वार पर पहुचे, जहा से मोटर आगे न जा सकती थी। जमनालालजी तत्काल मोटर से उतरे और उस व्यक्ति को लेकर आगे बढे। कुछ समय पश्चात् उस व्यक्ति के साथ लौटे और जानकीदेवीजी को सबोधित करते हुए बोले—"इस आदमी के दु खी होने का सबूत पा चुका हूं। इसे दस रुपये का एक नोट निकालकर दे दो।"

याचक को विदाकर शात होकर मोटर पर बैठ गये और मौन रहकर घर लौट आये। इस घटना की चर्चा उनके मुह पर कभी नहीं आई।

: ७० :

साहस और चतुरता के प्रतीक

बनारसीलाल बजाज

आज से ३८ वर्ष पहले कलकत्ते की बात है। मैं स्कूल से लौटकर घर में ऊपर जा ही रहा था कि पिताजी ने मुझे अपने पास बुलाया और पास बैठे एक सज्जन को प्रणाम करने के लिए कहा। मै उनके चरण छूने को झुका ही था कि आगन्तुक ने मुझे अपनी गोद में खीच लिया और बड़े प्रेम से मुझसे कई प्रश्न पूछे। किसी प्रकार उनके प्रश्नो का सक्षेप में 'हां' या 'ना' में उत्तर देकर पीछा छुडाकर ऊपर भागा, क्योंकि भूख बहुत जोर की लगी थी। जलपान करने के बाद ही मेरे मन में आगन्तुक को फिर से देखने की इच्छा जागृत हुई। मन में सोचने लगा कि यह कौन आदमी है, जिसने दादी की तरह इतना प्रेम दिखलाया। नीचे आकर देखा कि वे प्रेमालु सज्जन चले गये हैं। पिताजी से पूछने पर उनके नाम के अलावा यह पता लगा कि वे नागपुर की तरफ के रहनेवाले है, बजाज-परिवार के बड़े धनी-मानी तथा सुधारक व्यक्ति हैं और काग्रेस-अधिवेशन मे भाग लेने कलकत्ता आये है। यह अधिवेशन हमारे निवास-स्थान के पास ही हो रहा था। काग्रेस क्या चीज है, यह पता न था, परन्तु 'बकिमबाबू का 'आनन्द मठ' तथा अन्य बगला-साहित्य पढने से मन में भावना जरूर जागृत होगई थी कि अग्रेजो को भारत से निकाल देना चाहिए। पिताजी बग-भग आन्दोलन के समय से ही केवल स्वदेशी वस्तु घर में लाते थे। अत स्वदेशी और विलायती का भी थोडा ज्ञान उस समय हो चुका था।

मेरा जमनालालजी से फिर मिलने का आग्रह देखकर पिताजी उसी रात मुझे उनके निवास-स्थान पर ले गये। उन्होंने मुझे देखते ही पहले की तरह पुन. अपनी गोद में बिठा लिया और बड़े प्रेम से बातें करने लगे। आगे जाकर वह प्रेम बराबर बढ़ता ही गया। आज ३८ वर्ष बाद भी उसकी स्मृति

मेरे मानस-पटल पर ज्यो-की-त्यो अकित है।

जमनालालजी के सपर्क मे आनेवाला प्रत्येक व्यक्ति यही अनुभव करता था कि उनका मै ही सबसे अधिक प्यारा हू। उनके मन मे अपने और पराये का कोई भेद न था। गृहस्थ-जीवन में रहकर इस प्रकार का भेद न रखना कोई साधारण बात नही है। यह उन-जैसे साधक के लिए ही सभव था। जिसको वे एक बार अपना लेते थे, उसके सुख मे अपनेको सुखी और दुख में अपने दुखी अनुभव करते थे।

राजाओ के दरबार में अच्छे-बुरे सभी तरह के लोग आश्रय पाते है, किन्तु सेनापति अपने साथ चुने हुए केवल साहसी व्यक्तियों को ही रखता है। उसी प्रकार पूज्य बापू के दरबार में शोषित और शोषक, अच्छे और बुरे सभी पनपते थे, किन्तु कर्मठ सेनानी जमनालालजी के क्षेत्र में वे ही लोग रह पाते थे जो कि सेवाभाव में रत थे। मनुष्यो को परखने की उनमें बडी क्षमता थी और इसी कारण केवल कर्मठ व्यक्ति ही उनके पास रह पाते थे। एक हजार की वस्तु खरीदते समय मनुष्य उतनी सतर्कता नही बरतता, जितनी कि एक पैसे की हडिया लेते समय, क्योंकि जरा भी असावधानी होने से हजार की चीज में दस-पाच प्रतिशत का नुकसान हो सकता है, किन्तु यदि हडिया फूटी निकल जावे तो उसमें शत-प्रतिशत का नुकसान है। इस बात का जमनालालजी को बहुत ध्यान था, और इसीलिए वे अपना चुनाव, ठोक-पीटकर करते थे। पूज्य बापू के रचनात्मक विचारो को कार्य रूप मे परिणत करने का मुख्य भार जमनालालजी पर ही था। इस कार्य के लिए उन्होने कई ईमानदार रचनात्मक कार्यकर्त्ता तैयार किये।

दयालु जमनालालजी दूसरो के दु ख से द्रवित होकर मुक्त-हस्त से मदद करने में कमी नही चूकते थे। बम्बई की बात है। उस समय कालबादेवी में उनकी गद्दी थी। दोपहर को एक महाराष्ट्रीय सज्जन उनके पास आये और बडे ही करुणाजनक शब्दो में अपनी स्त्री की शोचनीय हालत का बयान सुनाने लगे। वे भी शायद वर्धा के ही रहनेवाले थे और पू जमनालालजी के कर्जदार थे। कर्जदार भी ऐसे कि रुपया तो पचा ही गये, उल्टे उनको बदनाम भी

करते थे। उक्त सज्जन की पत्नी का आपरेशन तुरन्त करवाना जरूरी था और उनके पास इतन पैसे न थे कि वे इसकी व्यवस्था कर सकते। जमनालालजी ने बडे ध्यान से सब हाल सुना तथा कुशल व्यापारी की तरह आपरेशन के खर्च का हिसाब लगाकर अपने मुनीमजी को बुलाकर कहा कि इनको इतने रुपये दे दो। मुनीमजी सन्न होगये, क्योंकि वे जानते थे कि उक्त सज्जन के नाम पर पहले के ही रुपये बाकी पडे है। उन्हें चुपचाप खडे देखकर जमनालालजी ने पुन कहा, "जाओ, इनको तुरन्त रुपये दे दो।" इससे बढकर स्वार्थ-रहित गुप्तदान का कोई दूसरा उदाहरण मिल सकता है ?

जमनालालजी का सारा जीवन ही अतिथि-सेवा से ओतप्रोत था। शायद ही किसी गरीब या अमीर के यहा अतिथियो का इतना जमघट लगता हो। यदि लगता भी हो तो आप वहापर भेद-भाव अवश्य पावेंगे। गरीब-अमीर अतिथि के लिए अलग-अलग भोजन-सामग्री बनती होगी और गृह-स्वामी की तो बात ही क्या ? किन्तु पूज्य जमनालालजी की अतिथिशाला में कोई भेदभाव नही था। भोजन सब एक-सा बनता था। घी और दूध की मात्रा सबके लिए समान थी। यदि किसी समय किसीने जमनालालजी की रोटी में घी अधिक डाल दिया तो फिर उनका मानसिक कष्ट देखते बनता था।

जमनालालजी का नाम देश-विदेश में कितना था, इसका एक उदाहरण यहा देता हू। द्वितीय महायुद्ध के दौरान में मेरे पिताजी स्वर्गीय रामेश्वरलालजी बजाज इग्लैण्ड से जब भारत आ रहे थे, अटलाटिक महासागर में उनका जहाज जर्मन लडाकू जहाज द्वारा डुबो दिया गया। फिर वे कैद करके फ्रास के बोर्ड-स्थित कैम्प में भेज दिये गए। वहा करीब दस हजार युद्ध-बदी थे। हालत बहुत शोचनीय थी। भारतीय कैदी थे तो थोडे-से ही, किन्तु जो थे, वे अपढ और उजड्ड नाविक। उनके बीच में रहना पिताजी के लिए असभव होगया। बहुत कोशिश करने के बाद उनको कैम्प के कमान्डेन्ट से मुलाकात करने की आज्ञा मिली। कमाडेंट ने पूज्य पिताजी को देखते ही पहचान लिया। वह पहले लन्दन के जर्मन दूतावास में काम करता था। १९३०

के असहयोग-आन्दोलन के समय हमलोग बरसाना-नमक-सत्याग्रह, सीमाप्रांत गोलीकांड की पटेल-रिपोर्ट आदि बहुत-सा अंग्रेजी साहित्य बनारस के बने लकडी के खिलौनो के साथ पैक करके लन्दन भेजा करते थे। वह साहित्य पूज्य पिताजी वहा पार्लमेंट के उग्रदल के सदस्यो में तथा कतिपय विदेशी दूतावासो में वितरित किया करते थे। कमांडेंट ने पिताजी को पहचानकर उनकी शिकायतो पर सहानुभूति के साथ विचार किया। उनके बारे में उसने बर्लिन के उच्च अधिकारियो के पास अपनी रिपोर्ट भेजी, जिसके फलस्वरूप थोडे दिनो बाद ही पिताजी बर्लिन कैम्प में भेज दिये गये, जहा केवल ऊचे दर्जे के कैदी ही रक्खे जाते थे। सयोग की बात कि बर्लिन कैम्प का जो कमांडेंट था, वह द्वितीय महायुद्ध के पहले पत्रकार की हैसियत से भारत आ चुका था। नवागन्तुक कैदियो में बजाज नाम देखकर उसे कौतूहल हुआ और उसने पिताजी को अपने पास बुलाया। उसने पूछा कि भारत में क्या कोई 'बजाज' राजनैतिक नेता है? पिताजी ने जमनालालजी का नाम बताया और कहा कि हम लोग एक ही परिवार के हैं। उसने कहा कि मैं भारत-भ्रमण के समय मि बजाज का मेहमान रहकर उनका नमक खा चुका हू। भारतीय परम्परा के अनुसार आप मुझे अपना मित्र समझें। वोर्डा के कमांडेंट की रिपोर्ट तो अच्छी थी ही। फिर बर्लिन-जेल के इस कमांडेंट ने भी उसके साथ ही अपनी रिपोर्ट लगाकर उच्च अधिकारियो के पास भेज दी, जिसका फल यह हुआ कि थोडे ही दिनो बाद पिताजी रिहा कर दिये गए। यह बात सन् १९४१ की है, जबकि युद्ध बहुत जोरो से चल रहा था। वे जर्मनी में चाहे जहा जा सकते थे और वहा से बाहर जाने की भी अनुमति उन्हे मिल गई। युद्ध के समय शत्रु देश के बन्दी को स्वतन्त्र नागरिक के रूप में रहने देना तथा अपने देश को लौटने देना एक असाधारण घटना थी। पिताजी को ऐसा लगा मानो उनका पुनर्जन्म होगया हो। यह जमनालालजी की अतिथि-सेवा का ही फल था।

जमनालालजी में साहस और चतुराई कूट-कूटकर भरी थी। उन्होने विज्ञानाचार्य सर जगदीशचन्द्र बोस को दार्जिलिंग में साइस इन्स्टीट्यूट की

स्थापना के लिए काफी बड़ी रकम दान में दी। जमीन देखने के लिए सर बोस ने सन् १९१९ में जमनालालजी को दार्जिलिंग बुलाया। मैं भी कलकत्ते से उनके साथ होगया। उनके व्यापारिक ज्ञान का छोटा किन्तु अच्छा उदाहरण मुझे देखने को मिला। सर बोस ने जो जमीन खरीदी थी वह एक पहाड़ के ढाल पर थी। जमीन समकोण किन्तु पेड़ो से आच्छादित थी। ढलाव के कारण जमीन के क्षेत्रफल का अन्दाज लगाना कठिन था। जमनालालजी तथा सर बोस आपस में बातें कर रहे थे। मुझे जमनालालजी ने हँसी-हँसी में कहा—"बनारसी, जाओ पूरी जमीन के चारों तरफ चक्कर काट आओ, और देखना, दौडते-दौडते अपने कदमो को गिनते भी जाना।" कदमो की गिनती से उन्होंने जमीन के क्षेत्रफल का अन्दाज लगा लिया।

बापू की चरखा-योजना को कार्य-रूप में लाने का सारा भार स्वर्गीय मगनलाल गाधी पर था, किन्तु खादी की उत्पत्ति तथा प्रचार का सारा भार जमनालालजी ने अपने कंधो पर उठाकर पूरी लगन और मेहनत के साथ उसे मजबूत पावो पर खडा किया। काश्मीर-यात्रा में जब हम लोग श्रीनगर से पहलगाम जाते समय मार्तण्ड-मन्दिर देखने गये, तो पडो ने हमें चारो ओर से घेर लिया। उनसे पिंड छुडाना कठिन देखकर जमनालालजी ने कहा कि आप लोगो में यदि कोई खादी पहननेवाला हो तो सामने आइए। हम उसीको अपना नाम और गाव बतावेंगे। यह सुनकर कुछ देर बाद ही ६०-७० वर्ष के एक वृद्ध शुद्ध मोटी खादी पहने हुए आपहुचे। प्रश्नोत्तर के बाद जब जमनालालजी को इस बात का पूर्ण सतोष हो गया कि ये वृद्ध महोदय केवल खादी और वह भी अपने घर की बनी खादी पहनते है तो बहुत खुश हुए। पंडे से बही लेकर अपना परिचय उसमें लिखा तथा मुझसे कहा कि तुम भी लिख दो, क्योकि अपने बजाज-परिवार का पडा होने की यही व्यक्ति योग्यता रखता है। जिस प्रकार भगवान बुद्ध की गाथा से उनके प्रमुख शिष्य सारिपुत्र तथा महामोगलायन को अलग नही किया जा सकता, उसी प्रकार युगपुरुष बापू के साथ उनके प्रमुख शिष्य जमनालालजी भी अमर होगये।

: ७१ :

दो स्मरणीय प्रसंग

गोरखनदास जाजोदिया

मेहमानो के लिए जमनालाल बडी चिन्ता करते थे। एक बार की बात है। शाम की रसोई में दूध नही परोसा गया। श्री राजेन्द्रबाबू के सेक्रेटरी मथुराप्रसादजी ने अमरस नहीं लिया और दूध भी नही मिला। उन्होंने मांगा नही। रात को उन्होंने सेठजी से इसकी चर्चा की।

सुबह जब मैं आया तो सेठजी बेचैन-से लगे। उन्होंने मुझसे कहा—"रात को मथुराप्रसादजी को दूध क्यो नही मिला ?"

मैंने कहा, "मैं दादीजी (जमनालालजी की मा) से पूछता हू। परोसगारी वे ही करवा रही थी।"

पूछने पर मालूम हुआ कि अमरस होने के कारण दूध किसीको भी नही परोसा गया।

इससे सेठजी को कष्ट हुआ और उन्होंने मेहमानो के लिए उनकी सभी आवश्यकताओं की पूछ-ताछ करने की कडी हिदायत कर दी।

चीन की यात्रा के बाद प जवाहरलालजी कुछ चैक आदि लाये थे, जो खजान्ची के नाते सेठजी के पास आये। उनकी पहुच अग्रेजी में टाइप हुई तो साथ में पत्र भी अग्रेजी में ही टाइप कर दिया गया। इस पत्र के नीचे सेठजी ने लिखा कि पत्र अग्रेजी मे लिखा गया, इसलिए माफ करें।

इसपर मैंने कहा, "मुझे दूसरा पत्र हिन्दी मे लिखने को कह देते। इतनी-सी भूल के लिए इतनी बडी सजा तो मेरेलिए ज्यादा हो जायगी।"

इसपर उन्होंने हँसकर कहा, "मेरा आशय यह नही था। अगर तुम ऐसा लिखने को सजा समझते हो तो दूसरा लिख दो—सजा माफ हो जायगी।"

: ७२ :

उनका सत्कार्य

मूलचद सदाराम गिदोरिया

जमनालालजी के प्रति सारा राष्ट्र आभारी और कृतज्ञतापूर्ण श्रद्धाजलि अर्पित कर चुका है, पर छोटा-सा नगर धूलिया उनका अतिशय कृतज्ञ है, क्योकि उसकी जलपूर्ति-योजना को सफल बनाने का श्रेय उन्हीको है।

जमनालालजी साल में एक-दो बार धूलिया आते थे और यहा के निवासियो का जल-कष्ट प्रत्यक्ष देख चुके थे। जब १९३७ में इन पक्तियो के लेखक को धूलिया म्यूनिसिपैलिटी के चुनाव में सफलता मिली तो उसने पानी की पूर्ति के लिए योजना बनाई और सारी बातें जमनालालजी के समक्ष रखी।

उन्होने कहा, "अब काग्रेस मिनिस्ट्री है। एक शिष्ट-मण्डल लेकर मुख्यमत्री श्री बालासाहब खेर के पास जाओ तो मजूरी मिल जायगी।" इसके अनुसार योजना सरकार द्वारा स्वीकार तो होगई, लेकिन बिना रुपयो के कार्यरूप में कैसे परिणत होती? म्यूनिसिपैलिटी के डिबेंचर बिके नही। समस्या खडी हुई कि अब किया क्या जाय।

हम लोग फिर जमनालालजी से मिले। उन्होने म्यूनिसिपैलिटी की रिपोर्ट और बजट की कापिया मगाकर उसकी आर्थिक हालत देखी। फिर उन्होने कमलनयनजी को भेजकर सत्तर हजार के डिबेंचर खरीद लिये। फिर तो मित्रो ने भी लगभग पच्चीस हजार रुपयो के खरीद लिये और एक साथ पिच्चानवें हजार के डिबेंचर बिक जाने से पानी की मुसीबत तुरन्त हल होगई और खूब पानी मिलने लगा। आज आबादी बढ जाने पर भी जल-पूर्ति हो रही है।

जमनालालजी के स्वर्गवास के बाद धूलिया म्यूनिसिपैलिटी ने उसकी सेवा के प्रतीक रूप उनके नाम पर अपने शहर के मुख्य मार्ग का नामकरण 'जमनालाल बजाज-मार्ग' कर दिया।

: ७३ :

विश्वसनीय मित्र

छोटेलाल वर्मा

स्वर्गीय सेठ जमनालालजी से मेरा परिचय बहुत पुराना था। विशेष परिचय तब हुआ जब मैं सन् १९३२ से सन १९३७ तक वर्धा जिला डिप्टी-कमिश्नर के पद पर नियुक्त था।

जमनालालजी सच्चे देश-भक्त, सत्यवादी, मिलनसार तथा सरल स्वभाववाले थे। उनके वर्धा-निवासी होने के नाते, मुझे सरकारी कामो में बहुत कम झझटो का सामना करना पडता था। उन दिनो कुछ हिन्दुस्तानी अफसरो की, ब्रिटिश सरकार से वाहवाही लेने के उद्देश्य से, यह नीति थी कि काग्रेस पर झूठे आरोप लगाकर काग्रेसियो को दबावें। मैंने जमनालालजी से स्पष्ट शब्दो में कह दिया कि मुझे ऐसी झूठी नेकनामी नही चाहिए। यदि वे अथवा अन्य काग्रेसी सज्जन कानून तोडेगे तो उनके विरुद्ध उचित कार्रवाही की जायगी, अन्यथा नही। इसका फल यह हुआ कि यदि किसी काग्रेसी न कोई अनुचित कार्य किया तो उसकी उन्होंने खुले प्रकार से निंदा की। इसी प्रकार यदि किसी सरकारी अफसर से कोई गलती बन पडी तो उसके विरुद्ध उन्होंने अपनी आवाज ऊची की।

एक बार की बात है। ब्रिटिश-सरकार के एक अग्रेज बन्दोबस्त-कमिश्नर, जो मध्य-प्रदेश में नियुक्त थे, चादा जिले के दौरे से लौटकर नागपुर जानेवाली गाडी के आने तक वर्धा में ठहरे। उनको अचानक जमना-लालजी से मुलाकात होगई। उन्होन कहा, "सेठजी, यह बताइए कि पहले आप अग्रेज-सरकार के मित्र थे। अब क्यो सरकार-विरोधी काग्रेस में सम्मिलित होगए ?"

उन्होंने निडर होकर उत्तर दिया, "यह आप लोगो की ही कृपा का

फल है।" उन्होंने आगे बताया कि किस प्रकार एक पुलिस कप्तान ने उनके साथ बहुत असभ्यता का बर्ताव किया था। फिर बोले, "जबतक विदेशी सरकार हमारे सिर पर है, देशवासियों के साथ उससे सद्व्यवहार की आशा करना झूठ है।"

साहब बहादुर निरुत्तर थे।

मैं सदैव सेठजी को आदर तथा प्रेम की दृष्टि से देखता था। मैं यह भली-भांति समझता था कि इस परस्पर प्रेम का वे कभी दुरुपयोग न करेंगे, बल्कि वे समय आने पर मेरा साथ देंगे। एक साल वर्धा नदी में बाढ़ आने से नदी के किनारे की फसलें बह गईं और कुछ तट-निवासी बेघरबार के होगए। मेरे सामने कठिन समस्या उपस्थित हुई कि उन बेचारों को आर्थिक सहायता किस प्रकार पहुंचाई जाय। रास्तों में कीचड़ होने के कारण मातहत अफ्सर दौरे पर जाने में आनाकानी करते थे। जिले के कुछ भागों में तो मैंने नदी में नाव में बैठकर दौरा किया, परन्तु बहुत-से ऐसे स्थान थे, जहा नाव पर सवार होकर जाना असम्भव था। मैंने अपनी कठिनाई जमनालालजी को सुनाई। उन्होंने तुरन्त कुछ उत्साही कांग्रेसी सज्जनों को मेरे सामने उपस्थित किया, जिन्होंने आपत्तिग्रस्त क्षेत्रों का दौरा करके मेरा दिया हुआ रुपया बांटा और लौटकर मुझे पाई-पाई का हिसाब दे दिया।

सन् १९३४-३५ में डाक्टर राघवेन्द्र राव हींगनघाट पधारनेवाले थे। वहा के कुछ युवक कांग्रेसियों ने उनका काली झंडियों से स्वागत करना चाहा। जमनालालजी को यह बात पसन्द न आई। उन्होंने कहा कि विरोधियों का इस प्रकार अपमान करना ठीक नहीं। फल यह हुआ कि उन्होंने सब झंडिया पहले से ही जब्त करवा दी और कहा कि जो डिप्टी कमिश्नर हमारे साथ सभ्यता का व्यवहार करता है, उसकी बदनामी नहीं होने देनी चाहिए।

वे महात्मा गांधी के सिद्धांतों के सच्चे अनुयायी थे।

स्वराज्य की जब आवाज गूंजी और देश-भक्त धड़ाधड़ जेलखानों में

ठूसे जाने लगे तो जमनालालजी को भी कई बार जेल की यात्रा करनी पडी। कहा घर का सुखी जीवन और कहा जेल का कठोर जीवन! उनकी जीवन-यात्रा इतनी जल्दी समाप्त न होती, यदि जेल जाने की नौवत न आई होती। देशानुरागी होने के नाते उन्होंने अपनी जिन्दगी की कोई परवा न की। त्याग उनकी रग-रग में भरा था।

सन् १९३४-३५ में खान अब्दुल गफ्फारखा के विरुद्ध, जो उस समय वर्धा में थे, एक बिना जमानती वारट गिरफ्तारी चीफ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट, बम्बई की अदालत से मेरे सामने पेश हुआ। मैंने ब्रिटिश पुलिस कप्तान जिला को आदेश दिया कि खानसाहब को हथकडी न पहनाई जावे। खानसाहब की गिरफ्तारी के समय वे महात्मा गाधी के पास बैठे थे। जब वे महात्माजी के सामने उपस्थित हुए तो महात्माजी ने हँसते हुए कहा, "क्या मुझे पकडने आये हो?" कप्तान ने कहा, "जी नही, खानसाहब को गिरफ्तार करना है। महात्माजी ने कहा, "खानसाहब ये बैठे है, ले जाओ।" कप्तान ने कहा, "यदि आपको खानसाहब से अकेले मे बातचीत करनी हो तो मै अलग हो जाता हू।" कोई पन्द्रह-बीस मिनट तक बातचीत के पश्चात् महात्माजी ने खानसाहब को पुलिस के सुपुर्द कर दिया। तत्पश्चात् मेरे आदेशानुसार खानसाहब लगभग छ बजे सायकाल मेरे बगले पर लाये गए। खानसाहब की गिरफ्तारी का समाचार पाकर जमनालाल-जी मेरे बगले पर पहुचे और मुझसे खानसाहब को अपने साथ ले जाने की इजाजत मागी, क्योंकि उन दिनो खानसाहब का कुटुम्ब भी वर्धा में था। जो पुलिस इन्स्पेक्टर बम्बई से वारट लेकर आया था, उसने खानसाहब को गिरफ्तारी के पश्चात् जमनालालजी के साथ भेजे जाने में आपत्ति उठाई। मैं जमनालालजी की आज्ञा का उल्लघन कैसे कर सकता था? मैंने केवल साथ जाने की इजाजत ही नही दी, बल्कि खानसाहब को अपने यहा रात्रि का भोजन कराने की भी अनुमति दे दी।

जमनालालजी का मुझपर पूर्ण विश्वास था। जब उन्होंने नागपुर-बैंक की स्थापना की तो मुझे भी बैंक का डाइरेक्टर नियुक्त किया।

: ७४ :

उनके जीवन का व्यावसायिक पहलू

चिरंजीलाल जाजोदिया

१९७० वि में बच्छराज जमनालाल नाम से बम्बई-दुकान का उद्घाटन मेरे सामने हुआ था। मैं पहले उसमें रोकडिये के रूप में और बाद में मुनीम की हैसियत से काम करता रहा।

जमनालालजी ने दुकान खुलने पर सबसे पहले मुझसे ही कहा कि दुकान का सारा कारोबार सचाई और ईमानदारी से होना चाहिए, जिससे आपकी और हमारी दोनो की ही परलोक सुधरे। उन्होंने यह भी कहा कि ईमानदारी के कारण अगर कुछ दिन काम हो या नुकसान भी लगे तो कोई चिन्ता नही।

दुकान पर सचाई और ईमानदारी से काम होने के कारण पेढी की साख बढ गई। नमूने के अनुसार ही सौदे का माल दिया जाता था और माल के नामजूर होने की कभी नौबत ही नही आई। रुई की गाठें बाधते समय इस बात का ध्यान रखा जाता था कि माल की किस्म एक-सी हो।

जितना माल खरीदा जाता उतने ही की बिक्री होती थी—सट्टा नही होता था। हर साल लगभग ४०,००० गाठ का काम-काज होता था। बम्बई के बाजार में साख और विश्वास इतना जमा कि कम-से-कम ब्याज पर रकम मिल सकती थी, लेकिन बाजार से रकम कम ही ली जाती थी। बैंको के दलाल पीछे लगे रहते थे, लेकिन उनसे काम लेने की जरूरत बहुत कम पडती थी। गाठ खोलने पर जिस गाठ मे जो रुई ली जाती, उसके खरीदार को ही वापस दे दी जाती थी, हालाकि बाजार का दस्तूर यह था कि वह रख ली जाय क्योंकि साल में उससे पाच-सात हजार रुपये बन जाते थे। जमनालालजी ने

कहा कि वह नमूना जिसके माल मे से निकाला गया हो, उसका मुनाफा उसे ही मिले, जो उसे खरीदे।

इनकमटैक्स में हिसाब दिखाने गये और आफीसर न जव इस प्रकार की सहायता की रकमें देखी तो उन्होंने विना किसी विशेष हिसाव के मान लिया कि हिसाव ठीक है। उसने कहा कि जो आदमी ऐसी सहायता करता है और आढ़तियो तक की नमूने की रुई का पैसा वापस करता है, वह फिर टैक्स क्यो बचावेगा ?

सेठजी का टाटा-कम्पनी में आना-जाना था। टाटा इ डी सासून मिल के शेयर १०) के निकाले। उस समय उन्होने ५-५ हजार शेयर कुछ लोगो को दिये। इसकी सूचना जमनालालजी को भी भेजी कि आपको भी ५ हजार शेयर दिये जाते है, लेकिन जिस समय सूचना मिली शेयर का वाजार-भाव १४) का था। सेठजी ने लिखवा दिया कि मै अनुचित लाभ नही लेना चाहता। वाद मे सासून के शेयर ॥।≈) होगये। इस प्रकार सेठजी की वात रही और नुकसान से भी बच गये। इस वात का असर डाइरेक्टरो पर पड़ा। फिर टाटा ने न्यू इडिया इश्योरेंस कम्पनी लि कायम की। सेठजी को भी डाइरेक्टर बनाया। उन्होंने २५००० शेयर अडरराइट किये, जिससे काफी रकम नफे की रही। डाइरेक्टर्स मीटिंग की फीस ५०) थी। सेठजी ने इसे ज्यादा समझा और २५) करवा दी।

'तिलक स्वराज फड' में एक करोड इकट्ठा हुआ। इसके खजाची सेठजी थे। रसीदो पर सही उनकी व मेरी होती थी। इस काम के लिए एक आदमी १२५) मासिक का रखा। ५०-६० रु० पोस्टेज आदि में लगते थे। २५०००) तक पास में रखने की अनुमति थी, फिर भी वे ५०००) ही रखते थे। यदि कोई रकम शाम को भी आती तो इस दिन का भी वे व्याज देते थे। सेठजी ने जिस निष्ठा और नेकनीयती से तिलक-स्वराज्य-फड के रुपयो की रक्षा और प्रवन्ध किया, वह एक अनुकरणीय आदर्श है।

जमनालाल केशवदेव के नाम की दूकान चलती थी, जिसमे हीरालाल रामगोपाल साझीदार थे। केशवदेव रामगोपालजी के लडके का नाम था।

बम्बई में मारवाड़ी विद्यालय खोलने के काम में जमनालालजी न प्रमुख हिस्सा लिया था और चन्दे में ११,००० रुपये दिये थे। यह समाचार फतह-पुर रामगोपालजी के पास पहुचा। समाचार मिलते ही रामगोपालजी बम्बई आये। जमनालालजी से झगडा किया कि ये रुपये क्यो लिखवाये। जमनालालजी ने कहा कि यह अच्छा काम था, इसलिए ये रुपये अच्छे काम में ही लगे है। लेकिन वे न माने। तब जमनालालजी ने कहा कि ये रुपये मेरे नाम लिख दो। फिर भी सतोष नही हुआ और जिद करते रहे कि तुम फर्म से अलग हो जाओ। दूकान का सारा हिसाब नक्की करो। वर्धा से सब मुनीमो को बुलाया गया। आकडा तैयार किया गया। रुई की करीब ६,००० गाठें थी। रामगोपालजी ने कहा कि इन्हे इसी समय बेच दो। रामगोपालजी की तरफ से लच्छीरामजी और जमनालालजी की तरफ से बालूभाई मशरूवाला को पच बनाया गया था। रुई की गाठे नीलाम में जमनालालजी ने ले ली। फिर वर्धा आये। प्रेस और मकान में से कौनसी-चीजें कौन लें, यह सवाल आने पर जमनालालजी ने कहा—आपको जचे वह चीज आप रखें। प्रेस की मशीन पुरानी थी, इसलिए रामगोपालजी को लोगो न सलाह दी कि आप मकान और दूसरी जायदाद ले लें और प्रेस जमना-लालजी को दे दें। रामगोपालजी के मन में यह भी बात थी कि प्रेस चलाने में जमनालालजी को रुपयो की अडचन पडेगी और वे तकलीफ में आवेंगे। लेकिन जमनालालजी ने प्रेस ले लिया। वे हर तरह से सामनेवाले को सतोष देना चाहते थे। पर जब उन्होंने प्रेस ले लिया तो कुछ लोग कहने लगे कि कमाई की चीज तो उनके चली गई। इससे रामगोपालजी को पछतावा हुआ। जमनालालजी को यह बात मालूम होते ही वे उनके पास गये और बोले कि आप चाहें तो प्रेस ले सकते है। पर रामगोपालजी ने इसका उल्टा ही अर्थ लगाया। वे समझे कि इनके पास प्रेस चलाने के लिए पैसा नहीं है, इसलिए वापस लेने की बात कहते है। इस विचार से प्रेस वापस नही लिया।

यद्यपि सारी व्यवस्था नए सिरे से करने में सेठजी को बडी कठिनाई का

सामना करना पडा, क्योंकि जल्दी ही लडाई शुरू होगई। लोगो में डर फैल गया। घबराहट में रुई के दाम एकदम घट गये। रुई की गाठो के लिए जिनका पैसा लिया था,वे तकाजे करने लगे। इतने पर भी वे घबराये नही, बल्कि धीरज रक्खा और रुपयों की भी व्यवस्था कर ली। लेकिन कुछ ही दिनो बाद उन्हें रुई की गाठो मे काफी मुनाफा हुआ। प्रेस की भी कीमत चढ गई। उनकी दिनोदिन प्रगति होती चली। इधर रामगोपालजी का काम बिगडता गया। जमनालालजी ने उन्हे हर तरह से सहायता दी। सबध बनाये रखा और उनके खान्दानवालो के साथ आदर का व्यवहार किया।

गाधीजी से सेठजी का सपर्क हुआ तो उनसे पूछा कि आपका निजी खर्च क्या है। १२५) रुपया बताने पर सेठजी ने २५,०००) जमा करवा दिये, जिसके व्याज से उनका निजी खर्च चलता रहे।

डा जगदीशचन्द्र बोस पहले दो बार विलायत गये और वहापर बताया कि पेड-पौधो मे भी जीव है। वहापर लोगो ने इस बात पर विश्वास नहीं किया और उनका मजाक उडाया। वे फिर जमनालालजी से मिले और कहा कि मैं यह बात यत्रो द्वारा सिद्ध करके बताना चाहता हू। इसके लिए २०,०००) रुपये की माग की। सेठजी ने यह रकम फौरन दे दी और उन्होंने बाद में विलायत जाकर यत्रो द्वारा यह बात जनता को बताई तो फिर सब मान गये और सबको सतोप हुआ।

दूकान से जो रकम सहायता के रूप मे दी जाती, वे सेठजी अपने हस्ते खर्च-खाते लिखवाते थे। यदि वह चाहते तो इस रकम को दूकान में लिखकर इनकमटैक्स से बच सकते थे। ऐसी रकम साल में उस समय २०-२५ हजार होती थी। इस प्रकार सहायता वे खुलेदिल से देते थे और अपने निजी खर्च में बचत करते थे, यहातक कि वे कहते थे कि यदि समय हो तो ट्राम का एक आना भी बचाना चाहिए। वे कई बार बोरीबन्दर से कालबादेवी पैदल जाते थे। हमेशा कहते थे कि मै तो ट्रस्टी हू। अपने पर जितना भी कम खर्च हो, करना चाहिए।

नागपुर-सत्याग्रह के साल की बात है। उस साल दूकान में करीब १७

लाख का फायदा हुआ था। इनकमटैक्स के बारे मे मुझसे उनकी बात हुई। सेठजी ने कहा कि अपने बहीखाते बताकर और बिना रिश्वत दिये तुम जितना भी फायदा हो सके, करना। ऐसा बताकर नागपुर-सत्याग्रह में लग गये और जेल चले गये। इनकमटैक्स का नोटिस आने लगा। मैंने कुछ भी कार्रवाही नही की। ९८,००० रु० टैक्स लग गया। उस समय मेखानजी कोला नामक सालिसीटर थे। वे मुझपर बहुत नाराज हुए और कहा कि ऐसा नहीं होना था। दूसरे दिन रुपये भरने का निश्चय हुआ। इनकमटैक्सवालो से मिल-मिलाकर ९८००) टैक्स तय करा लिया गया। सेठजी जेल से छूटकर आये। उन्होने सब बाते पूछी। इनकमटैक्स की बात निकली। उन्हे बहुत बुरी लगी। वे बापू के पास गये और सारी बात बताई। उन्होंने कहा कि मेरी गैरमौजूदगी में यह पाप होगया है। अब क्या किया जाय? बापू ने कहा कि तुम ये बचे हुए रुपये सार्वजनिक काम मे दे दो। जितना टैक्स लगाया था—उसमेंसे खर्च और देना पडा—वह रकम काटकर ८२,०००) दे दो। सेठजी ने चेक दे दिया। बापूजी ने कहा कि जब तुम्हारे नौकर यह देखेंगे कि इस तरह असत्य से बचाया हुआ पैसा भी तुम नही रखते तो वे कभी असत्य काम नही करेंगे।

मेहमानो की खातिर पूर्णरूप से हो, वे इसका बहुत ध्यान रखते थे। एक बार श्री राजगोपालाचारी बम्बई आये। जाते समय उनके साथ जमनालालजी के आदेशानुसार फल देने चाहिए थे, लेकिन दुकान के आदमी ने उनसे इसके लिए पूछा, और उन्होंने इन्कार कर दिया, इसलिए नही दिये गये। इसपर जमनालालजी बहुत नाराज हुए और भविष्य में ध्यान रखने को कहा।

एक बार एक फौजी अंग्रेज अफसर फर्स्ट क्लास में इनके साथ थे। ये कमोड पर हिन्दुस्तानी तरीके से पैर रखकर बैठे, जिससे जूतो की मिट्टी उसपर लग गई, वह अफसर बहुत नाराज हुआ और झगडा किया। बाद में जब आफिसर किसी स्टेशन पर उतरा तो उसके बेग पर से उसका नाम व पता नोट कर लिया। उसके सीनियर आफिसर को पत्र लिखा गया और

आफिसर ने माफी मागी।

साधारणतया वे व्यापारिक कामो को ज्यादा नही देखते थे, फिर भी थोडा-सा कुछ देख लेने से वे सब बात समझ लेते थे और ऐसा प्रतीत होता था कि कोई भी बात उनके ध्यान के बाहर नही है।

●

जमनालालजी के लिए यह कहा जाना सच है कि वह देश की उन्नति के लिए जिये और उनका एक भी काम ऐसा नही था, जो देशसेवा के लिए न हो। अपने प्रारम्भिक जीवन से ही वह महात्मा गाधी के सच्चे अनुयायी, मित्र व उनकी प्रवृत्तियो के समर्थक बन गये थे। अपने जीवन को ही उन्होने इस पवित्र उद्देश्य के लिए समर्पित कर दिया था। उन्होने अपने घर को प्रत्येक सार्वजनिक कार्य और कार्यकर्त्ता का तथा सेवाग्राम को गाधीजी का ही नही, गाधी-आन्दोलन से सम्बद्ध कई सस्थाओ का घर बना दिया था। उन्होने ग्रामोद्योग-सघ, चर्खा-सघ, बुनियादी तालीम योजना को, जो महात्मा गाधी के जीवन, कार्य और विचारो के मूर्त स्वरूप थे, जन्म दिया था।

कार्यसमिति के सदस्य की हैसियत से उनके बिना काम नही-सा चलता था। उनकी सलाह हमेशा सद्यस्फूर्त, व्यावहारिक और शुद्ध विवेकपूर्ण होती थी। सब समस्याओ को देखने की उनकी दृष्टि सच्चे रूप मे राष्ट्रीय और असाम्प्रदायिक होती थी।

वे मदात्मा थे। स्वभाव में वे अत्यन्त प्रसन्नमुख थे और त्याग में तो देश के सार्वजनिक जीवन मे वे अद्वितीय ही थे।

—भूलाभाई देसाई

: ७५ :

राजस्थान के अनन्य हितचिंतक

शोभालाल गुप्त

राजस्थान के सार्वजनिक जीवन मे एक विनीत कार्यकर्ता की हैसियत से मैंने अपने जीवन का श्रेष्ठतम भाग बिताया है और इस दीर्घ काल में मुझे जिन अनेक छोटे-बडे व्यक्तियो के सम्पर्क मे आने का अवसर मिला उनमें स्वर्गीय सेठ जमनालालजी मेरे मन पर विशेष छाप छोड गए हैं। वह देश के चोटी के नेताओ मे से एक थे, किन्तु छोटे-से-छोटे कार्यकर्ताओ के लिए भी सहज-सुलभ थे। उनको उनकी छोटी-से-छोटी कठिनाइयो का भी खयाल रहता था और उनकी सहायता करने मे वह कभी सकोच नही करते थे। इसी कारण उनका कार्यकर्ताओ के साथ आत्मीय सम्बन्ध स्थापित हो जाता था। सेठ जमनालालजी ने अनेक कार्यकर्ताओ को राष्ट्र-सेवा में नियोजित किया और उसके फलस्वरूप रचनात्मक कार्यो और स्वतत्रता-आन्दोलनो को वडा वल प्राप्त हुआ। वह कार्यकर्ताओ के अच्छे सग्राहक थे।

जमनालालजी का जन्म राजस्थान मे हुआ था। राजस्थान के जल और मिट्टी से उनका शरीर बना था। यद्यपि वह दूसरे प्रान्त में गोद चले गए थे, तथापि राजस्थान के प्रति उनका आकर्षण और लगाव हमेशा वना रहा। शेखावाटी में सीकर के पास काशीकावास एक छोटा-सा गाव है। वह वही पैदा हुए थे। मैंने वह घर देखा है, जिसमें जमनालालजी ने जन्म लिया था। एक दिन हमने उस घर के आगन मे वैठकर जमनालालजी के साथ बाजरे की रोटिया वडे स्वाद से खाई थी। जमनालालजी ने इस गाव मे एक कूप निर्माण कराया था और एक विद्यालय भी चलाते थे। उनका अपना गाव उनकी सेवा-भावना से कैसे वचित रह सकता था ? राजस्थान के साथ उनका जो यह सम्बन्ध था, उसीने इनका मेरे साथ भी घनिष्ठ सम्बन्ध

जोड दिया था। यदि राजस्थान के प्रति उनकी ममता और भक्ति न होती तो हम-जैसे लोगों के लिए वह शायद दूर के ही नक्षत्र रहते।

बिजौलिया का नाम राजस्थान के आधुनिक इतिहास मे अमर होगया है। यहांकी किसान-जनता ने भारत में शायद सबसे पहले सामन्ती शोषण के खिलाफ सामूहिक करबदी का आन्दोलन चलाया था। एक प्रकार से बिजौलिया को राजस्थान मे जन-आन्दोलनो का जन्मदाता कहा जा सकता है। बिजौलिया के किसान-आन्दोलन का नेतृत्व स्वर्गीय श्री विजयसिंहजी पथिक ने किया था। कई हजार किसानो ने अनुचित टैक्सो के विरोध में कई वर्ष तक जमीन नही जोती। इस सत्याग्रह की ओर गाधीजी का ध्यान आकर्पित हुआ और उन्होने उसमे दिलचस्पी ली। जमनालालजी ने गाधीजी की प्रेरणा पर बिजौलिया के सकटग्रस्त किसानो की मुक्तहस्त होकर आर्थिक सहायता की और उनको अपनी मागो पर डटे रहने का बल प्रदान किया। मेरे बचपन के कुछ वर्ष बिजौलिया मे व्यतीत हुए और बिजौलिया-किसान-आन्दोलन के नेता श्री पथिकजी से मैंने देश-भक्ति का मत्र प्राप्त किया। उन्हींके द्वारा मैंने सबमे पहले जमनालालजी का परिचय प्राप्त किया।

सन १९१९-२० की बात है। श्री पथिकजी को जमनालालजी न वर्धा आमन्त्रित किया। उस समय राजस्थान के महारथी स्वर्गीय अर्जुनलालजी सेठी और केसरीसिंहजी बारहठ भी जमनालालजी के अतिथि के रूप में वर्धा पहुच चुके थे। वर्धा जमनालालजी के कारण राजस्थान के नेताओ का केन्द्र बन गया। वही राजस्थान की रियासती जनता के उद्धार की विविध योजनाओ ने मूर्त रूप धारण किया। 'राजस्थान केसरी' नामक एक हिन्दी पत्र पथिकजी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। यह पत्र जमनालालजी की राजस्थान-भक्ति का प्रथम प्रतीक था। इस पत्र को उस समय जितनी सफलता मिली, उतनी शायद ही और किसी रियासती पत्र को मिली होगी। यह पत्र रियासतो में बडा ही लोकप्रिय हुआ और देखते-देखते उसके हजारो ग्राहक बन गए। श्री पथिकजी कुछ समय बाद राजस्थान की राजनीति में

सक्रिय भाग लेने के लिए वर्धा से अजमेर लौट आये। उसके बाद भी 'राजस्थान केसरी' वर्धा से कुछ वर्ष तक प्रकाशित होता रहा है, किन्तु वर्धा राजस्थान से बहुत दूर पड़ता था और उसकी भूमि पत्र के लिए अनुकूल सिद्ध नहीं हुई। वह बन्द होगया, किन्तु जमनालालजी के राजस्थान-प्रेम की याद पीछे छोड गया।

वर्धा में ही राजस्थान की जनता की सेवा के लिए आजीवन सेवकों की 'राजस्थान-सेवा-सघ' नामक सस्था की स्थापना हुई। उसका कार्यालय वर्धा से हटकर अजमेर आया और मैं भी उसमें आजीवन सेवक के रूप में शामिल हुआ। यह वह सस्था थी, जिसने राजस्थान की रियासतो में सैकडो वर्ष पुरानी सामन्तवादी व्यवस्था की जडो को हिला दिया था। जमनालालजी का इस सस्था की कार्यनीति से मतभेद था। जमनालालजी यह मानते थे कि रियासतो में सीधा राजनैतिक आन्दोलन नही करना चाहिए। राजाओ की स्वीकृति और सहमति से केवल खादी-प्रचार आदि रचनात्मक काम करना चाहिए। किन्तु इस सस्था के कार्यकर्ता जिस सादगी से रहते थे और कष्ट सहन करते थे, उसकी जमनालालजी पर अच्छी छाप थी। जब सस्था के प्रमुख श्री पथिकजी मेवाड में किसान-आन्दोलन के सम्बन्ध में पकड़ लिये गए तो जमनालालजी उसके प्रति उदासीन न रह सके। उनकी ओर से प्रतिमास एकसौ रुपये का बीमा सघ के कार्यालय में पहुचने लगा। यह क्रम कई वर्ष तक जारी रहा और पथिकजी के जेल से छूटने के बाद ही बन्द हुआ। वह राजनीति में अपने विरोधी के भी गुणो की कदर करते थे। स्वर्गीय अर्जुनलालजी सेठी एक समय जमनालालजी के कटु आलोचक बन गए थे। लेकिन जब जमनालालजी को मालूम हुआ कि सेठीजी आर्थिक सकट में हैं तो उन्होंने उनको आर्थिक सहायता देने में सकोच नहीं किया। इस प्रकार किसी विरोधी की सहायता करना किसी उदार-हृदय व्यक्ति का ही काम हो सकता है। ये उदाहरण इस बात के परिचायक हैं कि उन्होंने हृदय पाया था।

सन् १९२९ में हम लोगो ने ब्यावर से रियासती जनता के लिए एक अंग्रेजी साप्ताहिक निकालना शुरू किया। उस समय 'राजस्थान-सेवा-सघ'

आन्तरिक मतभेदो के कारण समाप्त हो चुका था। इस अरसे मे जमनालालजी ने हम लोगो को पहले से भी ज्यादा अपनी ओर खीचा। उन्होने प्रस्ताव किया कि हम लोग कुछ समय के लिए साबरमती-आश्रम मे रहकर गाधीजी के व्यक्तिगत सम्पर्क मे आवें। हमने उनका यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। अग्रेजी साप्ताहिक का प्रकाशन बन्द कर दिया गया और मैं तथा भाई रामनारायणजी चौधरी साबरमती चले गए। हमारा आर्थिक दायित्व जमनालालजी ने अपने कधो पर ले लिया। विश्व की एक महान आत्मा के चरणो में बैठकर कुछ सीखने और समझने का जो अवसर मिला, यह जमनालालजी की ही कृपा का फल था और उनके इस अनुग्रह को कभी नही भुलाया जा सकेगा।

गाधीजी ने ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती दी। आश्रम के अहिंसक सैनिको को साथ लेकर उन्होने नमक-कानून तोडने के लिए डाडी के समुद्र-तट की ओर प्रस्थान किया। साबरमती-आश्रम उजड गया। मैं जमनालालजी के साथ निजी मत्री के रूप में उनके साथ हो लिया। उस समय उनको और भी नजदीक से देखने का मौका मिला। प्राय चौबीसो घण्टे उनका साथ रहा। उनका सारा पत्र-व्यवहार मेरे हाथो में होकर गुजरता था। देश के भिन्न-भिन्न भागो से कार्यकर्ता उनका पथ-प्रदर्शन मागते रहते थे। इस अरसे मे मैंने देखा कि वह कितने सादगी-पसद, मितव्ययी, सहृदय, सरल, नियमित, उदार और सेवा-रत थे। उनका दैनिक कार्यक्रम बहुत व्यस्त रहता था। समय-समय पर उपस्थित होनेवाली समस्याओ को वह बडी कुशलता के साथ निपटा देते थे। यह भारत के राष्ट्रीय जीवन में उथल-पुथल का काल था। देश में सत्याग्रह का वातावरण फैलता जा रहा था। सरकार ने जमनालालजी को अधिक दिन स्वतत्र नही रहने दिया। वह बम्बई मे पकड लिये गए। उनके साथ मेरा निकट का सहवास छूट गया। मैं राजस्थान मे काम करने के लिए लौट आया। उन्होंने जेल के सीखचो के भीतर से जो पत्र उस समय मुझे लिखा, वह मेरे प्रति गहरी आत्मीयता और विश्वास से भरा हुआ था। उनका यह प्रेम और विश्वास अन्त तक बना रहा।

जमनालालजी बीच-बचाव और मध्यस्थता करने में भी बड़े कुशल थे। उनके व्यक्तित्व का रियासती अधिकारियों पर बड़ा प्रभाव था। गांधीजी का हाथ सदा उनकी पीठ पर रहता था। बिजौलिया के किसानों की एक गुत्थी बहुत दिनों से चली आ रही थी। वहां जमीन का बन्दोबस्त हुआ था और लगान की दर काफी ऊंची स्थिर की गई थी। किसानों में इससे असन्तोष पैदा हुआ और उन्होंने विरोध-स्वरूप अपनी गैरसिंचाईवाली जमीनों को सामूहिक रूप से त्याग दिया। राज्य को कुछ समय बाद लगान में कमी करनी पड़ी, किन्तु इस बीच जमीनें दूसरे लोगों को दे दी गईं। किसान चाहते थे कि उनकी जमीनें उनको लौटा दी जाय। राज्य ने जमीनें न लौटाने की हठ पकड़ ली। अत किसानों ने सत्याग्रह का आश्रय लिया। अपनी जमीनों में हल चलाने जा पहुंचे। राज्य ने नए जमीन-मालिकों के पक्ष में हस्तक्षेप किया। सामूहिक गिरफ्तारियां हुईं और पशु-बल द्वारा, कानूनी और गैर-कानूनी तरीकों से आन्दोलन को दबाया गया। सारे इलाके में आतंक का राज्य छा गया। श्री हरिभाऊजी उपाध्याय इस आन्दोलन का संचालन कर रहे थे, किन्तु उनका मेवाड़-राज्य में प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया।

आखिर जमनालालजी को इस मामले को अपने हाथ में लेना पड़ा। वह उदयपुर गए तो मैं भी उनके साथ था। उनको राजकीय अतिथि के रूप में ठहराया गया। उस समय मेवाड़ राज्य के प्रधान कर्ता-धर्ता सर सुखदेव-प्रसाद थे, जिन्हें मुसाहिबआला कहा जाता था। उनके साथ बातचीत करके जमनालालजी ने एक समझौता किया। वह महाराणा से भी मिले। समझौते में राज्य ने स्वीकार किया कि वह नए मालिकों को समझा-बुझा-कर जमीनें उनके पुराने मालिकों को लौटाने की कोशिश करेगा। गिरफ्तार राजबंदी रिहा कर दिये जायंगे और जुर्मानों आदि की राशि लौटा दी जायगी। इस तरह जमनालालजी उदयपुर से सफल होकर लौटे।

यह तय पाया कि जमनालालजी अपना एक प्रतिनिधि बिजौलिया भेजें, जो किसानों को समझौते की शर्तों से अवगत करे, ताकि उनकी ओर से उनकी अवहेलना न हो। मुसाहिबआला सर सुखदेवप्रसाद ने कहा कि वह बिजौलिया

के अधिकारियो को सूचित कर देंगे कि जमनालालजी के प्रतिनिधि को किसानो से सम्पर्क स्थापित करने दे और उसके काम मे कोई रुकावट न डाले। जमनालालजी ने मुझे बिजौलिया जाने के लिए चुना। कुछ किसानो के साथ, जो अजमेर से आये हुए थे, मैं बिजौलिया के लिए रवाना हुआ। किन्तु सर सुखदेव की सूचना समय पर बिजौलिया न पहुची और बिजौलिया की सीमा मे प्रवेश करने पर जो स्वागत बिजौलिया के अधिकारियो ने मेरा किया, उसको मै कभी नही भूल सकूगा। कुछ घुडसवारो ने मुझे और मेरे साथी किसानो को घेर लिया और बुरी तरह मारा-पीटा। उस दिन सिर पर इतने जूते पडे कि उसकी कोई गिनती न थी। जो किसान मेरे साथ थे, उनको भी मेरे जते मारने के लिए वाध्य किया गया। एक घुडसवार ने तो अपने दात मेरी नाक पर गडा दिये, किन्तु नाक बचनी थी, बच गई। अच्छी तरह मरम्मत करने के वाद मुझे दूसरे दिन बिजौलिया की सीमा से बाहर निकाल दिया गया। यह व्यवहार मेरे ही साथ नही हुआ। इससे पहले और भी कई कार्य-कर्ता राज्य-कर्मचारियो द्वारा ऐसी ही पशुता के शिकार हो चुके थे।

जब मैंने लौटकर इस घटना की सूचना जमनालालजी को दी तो उन्हे वडा दु ख हुआ। उन्होंने उदयपुर के मुसाहिवआला को तार दिया और घटना की जाच करवाने और अपराधी कर्मचारियो को दण्ड देने की माग की। उन्होने लिखा कि यह मेरा नही, वल्कि उनका अपमान हुआ है।

मुसाहिवआला ने इस घटना पर अफसोस प्रकट किया और उसकी जाच करने के लिए उच्च अधिकारी नियुक्त किया। जाच के पश्चात बिजौलिया के पुलिस कोतवाल को बर्खास्त कर दिया गया। मैं दुबारा बिजौलिया गया और किसानो को समझौते से अवगत किया। तव राज्य का आतक समाप्त होगया था।

हमने रियासती जनता की सेवा के लिए 'राजस्थान-सेवक-मडल' नाम की अजमेर मे एक नई सस्था स्थापित की और जमनालालजी को उसका सलाहकार मनोनीत किया। हम लोग अपनी प्रवृत्तियो से उन्हे परिचित रखते थे और उनका पथ-प्रदर्शन हमको निस्सकोच प्राप्त रहता था।

जमनालालजी की सबसे बडी खूबी यह थी कि वह अन्तर्मुख थे, आत्म-जागरूक थे। नियमित रूप से डायरी लिखते थे और हमेशा अपनी कम-जोरियो से लडते रहते थे। यही कारण था कि उनका जीवन सदा विकासो-न्मुख रहा।

यह कोई साधारण बात नही कि जो आपका अनिष्ट करे, उसके भी आप भले की कामना करे। किन्तु जमनालालजी ने उनका अनिष्ट करने या चाहनेवालो का भी जान-बूझकर मदद की। एक उदाहरण तो मुझे ऐसा मालूम है कि एक कार्यकर्ता ने उनके हृदय को अकारण गहरा आघात पहुचाया था, किन्तु उन्होने उस न भूल सकनेवाली बात को भी भुला दिया और उस कार्यकर्ता को अपना विश्वास और प्रेम देकर अपनी असाधारण महानता का परिचय दिया। यह उनके जीवन के आखिरी काल की बात है। ऐसी क्षमाशीलता इस दुनिया में मुश्किल से ही मिलेगी।

जमनालालजी से मेरी अन्तिम भेंट अप्रैल सन् १९४१ में हुई। मै अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की बैठक मे भाग लेने वर्धा गया हुआ था। हमारी राजस्थान में काम करने की एक योजना थी और मेरा उद्देश्य उसमें जमना-लालजी का सक्रिय सहयोग प्राप्त करना था। किन्तु उस समय जमनालालजी राजस्थान के कार्यकर्ताओ से खिन्न और निराश-से थे, इसलिए उन्होने कोई उत्साह नही दिखाया। पर उन्होंने मुझे वर्धा आ बैठने का न्यौता दिया, जिसे मैं परिस्थितिवश स्वीकार न कर सका। उनका पत्र आया कि जब सुविधा हो तब आ जाना। इस पत्र के मिलने के तीन-चार दिन बाद ही वह चल बसे।

: ७६ :

विजयी जीवन

ब्रिजलाल बियाणी

भाई जमनालालजी हमें अचानक छोड गये। उनकी स्मृति, उनके कार्यों की विशालता आज भी इतनी स्पष्ट आखों के सामने बनी हुई है कि उनका वियोग सन्निकटता में ही दिखाई देता है। दुनिया में निरुपयोगी वस्तुओं के पुनर्विकास के लिए मृत्यु की आवश्यकता रहती है, पर वह भी कभी-कभी अपने कर्तव्य में भूली हुई दिखाई देती है। एक उदाहरण भाई जमनालालजी का स्वर्गवास है। गलती में हमेशा हार होती है। इसी कारण इस घटना में मृत्यु की हार और जमनालालजी की विजय है। मृत्यु उनके शरीर को हमसे अलग कर सकी, पर उनकी अमर और पवित्र कीर्ति को वह हमसे नहीं छीन सकी। जमनालाल-जी का सारा जीवन विजयी जीवन रहा। जीवन के जिस क्षेत्र में उन्होंने हाथ डाला, विजय-श्री उनके सान्निध्य में बैठी ही दिखाई दी। अन्त में मृत्यु पर भी उन्होंने विजय पाई। विजयी जीवन पर मृत्युजय का विजय-कलश उन्होंने चढा दिया। यही भाई जमनालालजी का सम्पूर्ण विजयी जीवन है। वह आरम्भ से अन्त तक विजय से भरा है।

उनका जीवन क्रिया का सतत स्रोत था, सेवा का स्थान और अपार प्रवाह था, निर्भयता का निवास था, श्रद्धा का आश्रय था, उदारता का निर्निनाद निर्झर था, सादगी की पाठशाला थी, प्रेम का निर्मल [illegible] था और था सबका सहारा। उनकी शारीरिक विशालता उनके हृदय की व भीतरी जीवन की विशालता की द्योतक थी। उनका निर्मल अन्तर-[illegible] का परि-मल था, और उनका महान शक्ति और स्फूर्ति का प्रतीक था।

: ७७ :

शक्ति के स्तम्भ

इदिरा गाधी

मैं बचपन से ही जमनालालजी को जानती थी और उन्हे अपने परिवार का एक सदस्य समझती थी। वह भी मुझे अपनी बेटी की तरह मानते थे। हमारी बहुत-सी घरलू समस्याओ को सुलझाने में उनकी सलाह भी ली जाती थी। काग्रेस के तो वह 'भामाशाह' थे ही।

और भी बहुत-से काग्रेसी परिवार उनकी हमदर्दी से वचित न थे। उन दिनो ज्यादातर काग्रेसजन जेल में होते थे तो जमनालालजी उनके परिवारो के लिए शक्ति का एक स्तम्भ थे। उन्हे आर्थिक सहायता देने के साथ पढाई और दूसरी घरेलू समस्याओ के हल करने में भी हर प्रकार की मदद देते थे।

स्त्रियो को काग्रेस-सस्था में उचित स्थान दिलाने के लिए जमनालालजी खास तौर पर उनकी सहायता किया करते थे। वह समय स्त्रियो के लिए बहुत मुश्किल का था, जबकि उनके सार्वजनिक जीवन में आने के विरुद्ध कटु भावनाए थी।

उनके छोटी बातो पर भी पूरा ध्यान देने, उनकी शुद्ध सहृदयता तथा सादगी ने मुझपर गहरा असर छोडा।

उनके स्वर्गवास से देश-भर के काग्रेसी तथा अन्य मित्रो को जो अभाव प्रतीत हुआ, उसको पूरा करना कठिन है।

: ७८ :

सफल जीवन

पूनमचद राका

भारत को गुलाम बनाने और बनाये रखने में अग्रेजो का सबसे अधिक हाथ भारतीयो ने ही बटाया। यह कम लज्जा और दुख की बात नही थी। सेठ जमनालालजी ने इस अपराध का प्रायश्चित किया, इस कलक को धो डाला। अपनी पूजी, बुद्धि और शरीर का देश-हित के लिए उपयोग करके एक ऊचा आदर्श उपस्थित किया।

गाधीजी का नेतृत्व उन्होंने अन्त तक माना। इतना ही नही, उनके प्रत्येक सिद्धान्त, व्रत और कार्यक्रम पर अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक एव सामाजिक जीवन में अमल करने की निरतर चेष्टा भी की। इसमें उन्होंने जो सफलता प्राप्त की, वह दूसरो के लिए एक अनूठी मिसाल पेश करती है। महात्माजी ने सच ही कहा था—"विचार और कार्यक्रम मेरा होता था, परन्तु योजना और सगठन जमनालालजी का।" उनकी यह विशेषता बेजोड है। इसीलिए उनके रिक्त स्थान की पूर्ति करना बहुत मुश्किल है। गाधीजी के यो तो लाखो भक्त और करोडो अनुयायी है, पर सेठजी-जैसे नैष्ठिक, धुन के पक्के, बात के धनी और पुरुषार्थी अनुयायी बिरले ही मिलेंगे।

वर्धा, सेवाग्राम, नालवाडी, मगनवाडी, पवनार, जयपुर आदि स्थानो की यात्रा करनेवालो से पूछिये तो वे कहेंगे कि वहा की भूमि का जर्रा-जर्रा सेठ जमनालालजी की सात्विक क्रियाशीलता, लगन और तत्वनिष्ठा की गवाही दे रहा है।

: ७९ :

'स्वयंसेवक'

गंगाधर माखरिया

मुझे सन्-सवत् का स्मरण तो नही है। पर शायद १९२० के आसपास की बात होगी। उन दिनो मैं छोटा था, जब जमनालालजी हमारे घर बगड पधारे थे। यह बात भली-भाति याद है कि जब चिडावे में नवयुवक सेठो ने सेवा-समिति की स्थापना की थी तो खेतडी के राजा इस बात से डर गये थे कि उससे उनके राज्य के विरुद्ध षड्यत्र होने की सभावना है। वहा के चार बडे सेठो के नाम वारट निकालकर उन्हें गिरफ्तार करने के बाद बीस-बीस मील पैदल चलाकर जेल पहुचाया गया। उन सेठो पर कोडे की मार पडी, जिससे वहा की जनता मे खलबली मच गई।

जब जमनालालजी को इस घटना का पता चला तो वे तुरन्त बम्बई से रवाना होकर खेतडी पहुचे गये।

खेतडी में जब उन्होने अधिकारियो से कहा कि वे राजासाहब से मिलने आये हैं तो उन्होने उन्हें मिलाने में आना-कानी की। इसपर जमनालालजी ने अनशन शुरू कर दिया। तीसरे ही दिन घबडाकर उन्होने उन्हें राजासाहब से मिला दिया।

मुझे स्मरण आता है कि जमनालालजी पगडी पहनकर राजासाहब से मिलने गये थे, क्योंकि उन दिनो लोग खास-खास अवसरो पर पगडी अवश्य पहनते थे। लोग डर रहे थे कि कही राजा नशे में चूर होकर जमनालालजी को भी जेल में न बन्द कर दे, पर प्रजा के सद्भाग्य से समझिए या जमनालालजी की चतुराई से, राजा ने उनकी बात मान ली और गिरफ्तार सेठों को छोड देने का आर्डर निकाल दिया। जमनालालजी ने राजा को कहा, बताते हैं कि, सेवा-समिति तो जनता की सेवा के लिए स्थापित की

गई है, आपको तो इन वातो से डरने के वदले उन्हें प्रोत्साहन देना चाहिए। ऐसा करने से राज्य कैसे टिकेगा ? इस वात से डरकर ही राजासाहव ने सेठो को तत्काल छोड देने का हुक्म दे दिया। जमनालालजी ने चीडावा सेवा-समिति का नाम राजा के नाम पर अमर-सेवा-समिति रखा। नवयुवक राजासाहव खुश होगये। जव जमनालालजी राजा से मुलाकात करके लौट रहे थे तो उधर जेल से छूटे हुए सेठ लोग भी अपने-अपने घर वापस आ रहे थे। जव वे लोग जमनालालजी से रास्ते में ही मिले तो उनकी खुशी का पारावार न रहा। इससे जमनालालजी का नाम खेतडी के वच्चे-वच्चे की जवान पर चढ गया और लोग उन्हे देखने को वहुत उत्सुक हुए—सारे राजस्थान में इस घटना की चर्चा गाव-गाव गूज गई।

जमनालालजी हमारे घर एक रात ठहरे और उन्होने हमारे यहा भोजन किया। इसके वाद हमे आशीर्वाद देकर वही से उन्होंने राजस्थान का दौरा शुरू कर दिया। वम्वई लौटने के पहले अपने दौरे में उन्होंने रतनगढ, चुरू और चिडावे मे सेवा-समितियो की स्थापना कर दी। नासिक में कुम्भ-स्नान पर्व (जो वारह वर्ष वाद आया था) के अवसर पर, जमनालालजी द्वारा स्थापित सेवा-समिति ने सेवा-कार्य आरभ किया और उसमें वहुत-से नवयुवकों ने वडे उत्साह से भाग लिया।

जमनालालजी मारवाडी-समाज में शायद पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने सेवा-समिति की ड्यूटी पर आधी वाह की खाकी कमीज और चड्डी पहनी। वैसे आम तौर से वे धोती, पूरी वाह की कमीज और कोट पहनते थे। उनका शरीर लम्वा, मोटा-ताजा और स्वस्थ तथा प्रभावशाली था। सेवा-समिति के कार्य में उन्होंने नासिक में आधी वाह की कमीज और चड्डी पहनी तथा उसे पहनकर मेले में घूमे तो वम्वई के मारवाडी समाज के वहुत-से युवकों में वह पोशाक पहनने का साहस हुआ, अन्यथा लोग उन दिनो यह पोशाक पहनने से हिचकते थे। वम्वई के युवको में उन दिनो नासिक के कुम्भ मेले से सेवाभाव का विशेष प्रसार हुआ।

: ८० :

स्नेह के अवतार

शिवाजी भावे

हरिपुरा-कांग्रेस के समय की बात है। मैं, मूलचन्द्रजी, सूरजमलजी, मामा आदि हम मित्र लोग इधर-उधर टहल रहे थे कि जमनालालजी वर्किंग कमेटी की मीटिंग के लिए सुभाषबाबू और अन्य नेताओं के साथ जाते हुए दीख पड़े। ऐसे समय बिना किसी प्रयोजन के नमस्कार करके अपनी ओर उनका ध्यान खीचना हमें अच्छा नही लगा। और हम किसीने उनको नमस्कार नही किया। लेकिन उन्होने तो हमें देख ही लिया और फौरन हँसते हुए खुद ही हमें नमस्ते किया। हम सब लज्जित-से होगये।

दूसरा मौका था—फैजपुर-कांग्रेस के समय का। अनेक कार्यकर्ताओ की जो-जो शक्तिया थी, उन सबका उपयोग उस समय लेने का प्रयत्न चल रहा था। एक अपरिचित, लेकिन विशेष शक्तिमान् सज्जन पर कुछ लोग विशेष भार डालना चाहते थे। जमनालालजी ने यह देखा और कहा, "आप इस ढग से, आकस्मिक रूप से उनपर काम डाल रहे है, यह तरीका गलत है। पहले आप उनका स्नेह सपादन कीजिए। परिचय हो जाने के बाद फिर उनसे किसी काम की अपेक्षा कीजिए, अन्यथा आपका बर्ताव तो 'काम बना, दुख बिसरा' की श्रेणी में आ जायगा।"

जमनालालजी से तो उन सज्जन का अच्छा परिचय था। उनके कारण बाद में वे कांग्रेस-अधिवेशन के कामो में तुरत पूरी मदद देने लगे।

इस तरह जमनालालजी की कार्य-पद्धति इस ढग की थी कि स्नेह में से काम उपजता था और काम में से स्नेह। परिणामस्वरूप उनकी भव्य मूर्ति स्नेह का अवतार ही प्रतीत होती थी।

'सकल गुणवरेण्य' पुण्यलावण्यराशि: !

: ८१ :

उनके विविध गुण

गोविन्दलाल पित्ती

हैदराबाद से वैसे कई बार बबई आया और गया, लेकिन सन् १९१३ में मै अपना पैतृक कारोबार सभालने के लिए स्थाई रूप से बबई जाकर रहने लगा। इसके एक-दो वर्ष के भीतर ही सबसे पहले सेठ जमनालालजी से मिलना हुआ। फिर तो उनके साथ घनिष्ठता बढने लगी। हम दोनो को ही राजनैतिक तथा सार्वजनिक जीवन से दिलचस्पी थी। हमारी मित्रता उत्तरोत्तर बढने लगी।

१९१६ में वे मुझे वर्धा ले गये। वहा मैने उनके कहने पर मारवाडी-छात्रालय का निरीक्षण किया। श्री जाजूजी आदि सज्जनो से भी वार्तालाप हुआ। दो-तीन दिन के बाद जब मै बबई लौटने लगा तो जमनालालजी तथा अन्य सज्जन मुझे स्टेशन पहुचाने आये। पहले दर्जे के सभी डिब्बे भरे हुए थे। केवल एक ही डिब्बा ऐसा था, जिसमें एक सैनिक अग्रेज अफसर बैठा हुआ था। उसने मेरे नौकरो को डिब्बे मे सामान रखने से रोका। जब मुझे मालूम हुआ तो मैने नौकरो से कहा कि वे साहस-पूर्वक उसी डिब्बे में सामान रक्खें। उन्होने वैसा ही किया।

वह अफसर बडबडाता रहा। मेरे और उसके बीच गरमागरम बातचीत होते देख जमनालालजी ने मुझसे कहा कि मै आपके साथ बंबई चलता हू। उन्होने एक कार्यकर्त्ता को बबई का टिकट लाने के लिए कहा। मेरे बहुत समझाने पर उन्होने कहा कि बबई न सही, परन्तु भुसावल तक तो चलूगा ही। रास्ते में उस सैनिक अफसर से खटपट चलती रही, परन्तु बाद में शाति होगई।

भुसावल से जमनालालजी लौट गये। बबई आने पर मुझे उनका तार मिला कि अपनी कुशलता के समाचार तार द्वारा भेजो। ऐसी थी उनकी आत्मीयता!

एक दूसरी स्मरणीय घटना है। सन् १९१८ में महात्मा गाधी ने हिन्दी साहित्य-सम्मेलन को बबई में आमन्त्रित किया। जमनालालजी न महात्मा-जी से कहा कि स्वागत-समिति के प्रबध का भार मुझपर डाला जाय। महात्मा गाधी ने मुझे बुलाकर यह बात कही और मैंने सहर्ष इसे मान लिया। ज्यो-ज्यों अधिवेशन का समय समीप आता गया त्यो-त्यो काम बढता गया। जमनालालजी ने अनुभव किया कि कार्यालय में जमकर बैठकर कार्य करने की आवश्यकता है। मैं जन-सहयोग आदि प्राप्त करने के कार्यों में व्यस्त था। इसलिए जमनालालजी ने स्वय रात-दिन कार्यालय में बैठकर कार्य करना प्रारभ कर दिया। वस्तुतः उनकी सहायता के बिना काम में कई त्रुटिया रह जाती।

बबई के मारवाड़ी-विद्यालय की स्थापना करने तथा बाद में उसकी समुचित व्यवस्था करने में जमनालालजी ने अपना महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया। सन् १९४० के आसपास उन्होंने मुझसे कई बार काग्रेस का कोषा-ध्यक्ष बनने का आग्रह किया, परन्तु कई कारणो से मैं इस कार्य-भार को ग्रहण करने में अपनी असमर्थता प्रकट करता रहा। उनका व्यवहार सदैव मित्रतापूर्ण बना रहा।

भारत के महापुरुषो के प्रति उनमें अतीव प्रेम तथा श्रद्धा थी। मालवीयजी, लाला लाजपतराय और गाधीजी के प्रति तो विशेष श्रद्धा थी। गांधीजी के विचारो तथा सदुपदेशो का उनके जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ा।

मारवाडी-समाज के सामाजिक सुधार-कार्य में भी वे बहुत प्रयत्नशील रहे। उनके प्रयासो के फलस्वरूप 'अग्रवाल मारवाडी सभा' की स्थापना हो सकी और यह सस्था कई वर्षों तक सक्रिय रही।

उनके प्रयत्नो के फलस्वरूप रियासतो में राजनैतिक चेतना उत्पन्न हुई। गांधीजी को भी रियासतो-सबंधी अपनी तटस्थता की नीति में परिवर्तन करना पड़ा।

: ८२ :

उनके साथ पच्चीस वर्ष

आविदअली

उनकी याद आते ही मेरे अपने लम्बे सार्वजनिक जीवन की सारी तस-वीर आखो के सामने खिच जाती है। शुरू के अपने सार्वजनिक जीवन को मै उनके सार्वजनिक जीवन की छाया कह सकता हू।

मेरा उनका पुराना खानदानी सबध था। लेकिन मुझे अपनी शुरू की उमर का अधिक समय वर्धा से बाहर बिताना पडा। जब मै वर्धा लौटा तब वे रायबहादुर और आनरेरी मजिस्ट्रेट थे। शहर के बहुत बडे रईस थे। रहन-सहन में व मिलने-जुलने में बडे सरल और मिलनसार होते हुए भी उनकी रईसी का कुछ रौब जरूर था। इसलिए हरकोई उनके पास सहज ही नही जा सकता था।

तब मै केवल १८ वर्ष का था। वर्धा में इन्फ्लूएजा की बीमारी फूट निकली, जिस-से बहुत-से लोग मरने लगे। बीमारी ने इतना खतरा पैदा कर दिया कि लोगो में बडी परेशानी पैदा होगई। जिस घर में कोई बीमार होता उसमें बडा डर पैदा हो जाता। सेठजी ने उस समय लोगो की सेवा काम का शुरू किया। उसी समय वर्धा मे चोरियो और डकैतियो का जोर बढ गया। इनको रोकने के लिए 'नागरिक सेवा दल' की स्थापना हुई। यह दल रात को पहरा देकर लोगो के जान व माल की रक्षा करता था। इन सेवाओ और सगठनो के सिलसिले में मै पहली बार सेठजी के नजदीक आया और उनके साथ मिलकर काम किया। तब मुझे पता चला कि उनमे कितनी ऊची सेवा भावना है और उनका स्वभाव कितना मधुर है। दूसरे के दु ख को देखकर दुखी होने और उस दु ख को दूर करने में अपनेको लगा देनेवाले सेठजी का यह सेवा-भावी रूप देखकर मुझे पता चला कि सुने-देखे में कितना अन्तर होता

है। मैंने उनके वडप्पन और रौब के बारे मे जो सुन रखा था, उससे मैंने उनको इतने नजदीक से देखने पर बिल्कुल उलटा पाया। उनमें अपने वडप्पन का कोई गरूर और अपनी शान-शौकत का कोई रौब नहीं था। उन्होंने एक मामूली स्वयसेवक अथवा जनसेवक की तरह अपनेको लोगो की सेवा में लगा दिया था। तव मैं सरकारी नौकरी मे था। मुझे भी जनसेवा का कुछ शौक था। इसलिए मैं उस समय सेठजी को इतने नजदीक से देख सका। मेरा यह खयाल है कि सेठजी के दिल में छिपी हुई लोकसेवा की इस भावना को जब फूलने और फैलने का मौका मिला तब वह इस बडे रूप में प्रगट हुई कि उन्होंने देश-सेवा के मैदान में बिना किसी दिक्कत के अपना प्रमुख स्थान बना लिया। उनका व्यक्तित्व ऐसा खिल उठा कि वह सबपर छा गया।

• • • •

नागपुर-काग्रेस के बाद सरकारी नौकरी छोडकर मैं काग्रेस मे शामिल हुआ और असहयोग-आन्दोलन मे जुट गया। तब सेठजी के इतना नजदीक आने का मौका मिला कि मैं एकाएक उनके परिवार का बन गया। मैंने उनके जिस प्रेम और विश्वास को हासिल किया वह बहुतो के लिए रश्क का विषय बन गया। मैंने उनके साथ मिलकर खूब काम किया और जेलो में भी उनके साथ रहा। सेठजी अपने स्वभाव से ही बहुत शात, सरल, नेक, ऊची दृष्टि-वाले, आदर्शवादी, सिद्धान्तवादी थे। मैं था छोटी अवस्था का, बे-तजुर्बेकार, बड़ा जोशीला, बडा चचल और हमेशा ही कुछ-न-कुछ उलट-पुलट करते रहने का आदी। इन दो विरोधी स्वभावो का मेल भी अजीब था। मैं उनको हमेशा बडा मानकर उनका बहुत अदब करता था। इसलिए इन विरोधी स्वभावो मे कभी कोई विरोध नही हुआ। लेकिन जेल मे कुछ ऐसे दिलचस्प मौके जरूर आये, जब इस विरोधी स्वभाव का कुछ रग दीख पडा।

•

१९२३ में नागपुर में झडा-सत्याग्रह के सिलसिले में मुझे उनके साथ गिरफ्तार किया गया था। उनके ही साथ जेल में रखा गया था। गाधीजी

के अनुयायी होने के कारण जेल में भी वे गाधीजी क रास्ते से टस-से-मस नही होते थे। वहा के नियमो का वे पूरी तरह पालन करते थे और दूसरो से भी करवाना चाहते थे। एक दिन मैंने नियम-विरुद्ध एक कैदी वार्डर शाहवाज से नीम की दातुन मगवा ली। मुझे उसकी आदत थी। मैंने दातुन मुह में डालकर चवाई ही थी कि सेठजी ने देख लिया और मुझसे पूछा कि दातुन कहा से मगवाई ? मैंने शाहवाज का नाम वता दिया। सेठजी ने मेरी चवाई हुई दातुन का हिस्सा उससे अलग करके वाकी दातुन धुलवाकर उसको वापस करवा दी। अभी तक हमको सजा नही हुई थी।

* ** **

मुकदमा चलने के वाद दो वर्ष की सजा दे दी गई और मुझको सेठजी से अलग कर दिया गया। मुझे झगडालू मानकर मेरा तवादला खडवा-जेल में कर दिया गया। उसके लिए मुझको जेल के दफ्तर ले जाया जा रहा था। मै अपने सामान की पोटली वगल में दवाए दफ्तर की ओर जा रहा था कि सामने से सेठजी आते दीख पडे। ज्यो-ज्यो वे मेरे पास आते गये, मुझसे वात करने की उनकी उत्सुकता वढती गई, परन्तु मैंने उनसे आख तक न मिलाई। जव विल्कुल नजदीक आगये तो सेठजी रुक गये और उन्होने मुझे पुकारा, परन्तु मै विना रुके और विना कुछ उत्तर दिये उनके पास से निकल गया। वे देखते ही रह गये। उन्होने समझा कि मै उनसे कुछ नाराज हू। वे मुझे वेहद प्यार करते थे। इसलिए मेरा यह व्यवहार उनको अखर गया। उन्होने किसी प्रकार एक आदमी को खडवा-जेल भेजकर मेरी इस नाराजगी का कारण जानने की कोशिश की। मैने कहला भेजा कि जैसा उन्होने सिखाया था, मैंने वैसा ही किया। जेल के कायद के मुताविक मै उनसे वात नही कर सकता था और मैंने वात नही की।

सेठजी का समझाने-वुझाने का और गूढ-से-गूढ समस्याओ को हल करने का अपना ही तरीका था। मुझे १९३० में आर्थर रोड वम्वई से थाना-जेल केवल इसलिए भेजा गया था कि आर्थर रोड जेल में अधिकारियो के साथ मेरा कोई-न-कोई झगडा वना रहता था। वहा पहुचने पर जेल सुपरिटेंडेंट

ने मेरा हिस्ट्री-टिकट देखते ही मुझसे पूछा, "तुम्हारा व्यवहार यहा कैसा रहेगा?" मैंने जवाव दिया, "यह तो आपके व्यवहार पर निर्भर है।"

सेठजी उस जेल में पहले ही से थे। उन्होने जेल-सुपरिटेंडेंट से मेरे वहां आने के वारे में पूछा तो उसने कहा कि वह तो वडा झगडालू आदमी है। सेठजी ने मेरे वारे में उसका भ्रम दूर करने का प्रयत्न किया, परन्तु वह दूर न हुआ।

कुछ समय के बाद ईद का त्योहार आया। मुझे साधारण मुसलमान कैदियो के साथ नमाज पढने का मौका नही दिया गया। मौका न देने का कारण यह भय था कि कही मैं उनमें भी कोई वगावत पैदा न कर दू। बात टल गई, परन्तु मेरे मन में वह चुभ गई। कुछ-न-कुछ करने की मैं सोचता रहा।

उसी सप्ताह वाल काटने की एक नई मशीन हमारे वार्ड में आई। सबने उससे वाल कटवाये और सिर के सब वाल साफ करवा दिये। कुछ लोग पुराने विचारो के थे। उनको ब्राह्मणो का भी चोटी कटवा देना बहुत बुरा लगा। उन्होने उसपर एक आन्दोलन-सा खडा कर दिया। मैं वाल कटवा रहा था कि मेरे कानो में उसकी भनक पडी और मैंने चोटी के स्थान के वाल नही कटवाए। इसपर पुराने विचार के लोग अपना झगडा भूलकर मेरी ओर आकर्षित होगये। यह देखकर कि मेरे कारण एक झगडा मिट गया मैं बहुत खुश हुआ। लेकिन, जेल-सुपरिटेंडेंट इसपर घवरा गया। उसने मुझसे उसका कारण पूछा तो मैंने कह दिया कि मुझे ईद के दिन नमाज नही पढने दी गई, इसलिए एक वर्ष तक मुझे इस तरह प्रायश्चित करना पडेगा। वह मेरी वात सुनकर इतना अधिक घवराया कि सेठजी के पास जाकर उसने सारा मामला पेश किया। उसने उनसे यह भी कहा कि आप तो आविदअली की इतनी तारीफ करते थे, परन्तु उसने एक नई मुसीबत खड़ी कर दी है।

सेठजी जेल के दूसरे हिस्से में रहते थे। उनको दफ्तर में लाया गया और मुझको भी वहा वुलाया गया। सेठजी ने मुझे बहुत समझाया, परन्तु मै

यह मजाक इतनी जल्दी खत्म नही कर देना चाहता था। अन्त में उन्होंने मुझसे कहा कि बम्बई में तुम्हारी बडी इज्जत है (उन दिनों प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का जनरल सेक्रेटरी था) और कांग्रेस-आन्दोलन भी बम्बई में जोरो पर है। यदि कहीं तुम्हारे इस प्रकार चोटी के खेल की गलत खबर बाहर फैल गई तो आन्दोलन को कितना धक्का लगेगा, यह भी सोचा है ? यह सुनकर मुझे चुप हो जाना पडा। उन्होंने कैंची ली और मेरे बाल काट डाले। मैं जब अपने वार्ड में आया तब चारों ओर शोर मच गया। साथियो ने मुझसे पूछा, "यह क्या हुआ ?" मैं सबको एक ही उत्तर देता था, "सेठजी से पूछो।"

गांधीजी के उसूलों, विशेषकर सत्य और अहिंसा पर चलने का, वे बात-बातमें ध्यान रखते थे। वर्धा-कांग्रेस-कमेटी और नागपुर प्रदेश कांग्रेस कमेटी का वर्षों झगडा चलता रहा। डा मुजे उन दिनों प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे। हर वर्ष कांग्रेस के चुनावों पर खूब खीचातान होती थी और डा० मुजे हमारे पक्ष की अधिकाश कमेटियो के चुनाव रद्द करके प्रदेश कांग्रेस पर अपना अधिकार बनाए रखते थे। वर्धा शहर, तहसील और जिला कांग्रेस कमेटियो पर अपना कब्जा करने के लिए उनके साथी बडी कोशिश किया करते थे। तहसील कांग्रेस कमेटी का चुनाव सेठजी के ही मकान के आगन में होने वाला था। उसी दिन सेठजी बम्बई से वर्धा पहुच गये। हमारे पक्ष के कांग्रेस सदस्यों की सख्या बहुत अधिक थी। दूसरे पक्ष-वालों ने हमें पराजित करने के लिए बहुत-से गैर-कानूनी सदस्य बना लिये थे। इसलिए हमने भी कुछ गैर-कानूनी सदस्य बना लिये। सेठजी के पास यह शिकायत पहुचाई गई और उनसे कहा गया कि आपके साथी सत्य की हत्या करने में लगे हुए हैं। सेठजी ने चुनाव से ठीक पहले मुझे और भाई सत्यदेव विद्यालकार को बुलाकर पूछा कि ठीक-ठीक बात क्या है। हमने कह दिया कि हमने भी कुछ ऐसे सदस्य अवश्य बनाए हैं। बात यह है कि हमारे कानूनी सदस्यों की सख्या अधिक होने से दूसरे पक्षवालो ने हमको हराने के लिए बहुत-से गैरकानूनी सदस्य बनाये हैं। हमने दोनों ही तरह से उनका सामना करने की तैयारी की है। हम नही चाहते कि वे गैर-

कानूनी तरीके से हमको हरा सकें। इसपर सेठजी ने चुनाव की सभा शुरू होते ही अध्यक्ष-पद से अपने साथियो द्वारा गैरकानूनी सदस्य बनाने की घोषणा करते हुए अपने पक्ष के उम्मीदवारो की सूची वापस ले ली और अपने पक्ष को चुनाव से हटाकर कांग्रेस कमेटी दूसरे पक्ष के हाथो सौंप दी। दूर-दूर गावो से आये हुए हमारे साथी बहुत नाराज और निराश होकर लौट गये, किन्तु हम सबके हृदयो में सेठजी के प्रति आदर बढ गया। हानि उठाकर भी सत्य की हत्या न होने देने के सेठजी के इस आचरण का हमपर बहुत गहरा असर पडा।

• • •

व्यापार-व्यवसाय और उद्योग के क्षेत्र में सेठजी के कुछ अपने ही उसूल थे। उसमें भी वे सत्य और अहिंसा से कभी डगमगाते नही थे। खादी को उन्होने सत्य और अहिंसा की तरह अपने जीवन का अग बना लिया था। स्वदेशी के दृष्टिकोण से उनके अनेक मित्रो और सलाहकारों ने उनको कपडे की मिल चालू करने की सलाह दी और उसके लिए उनपर जोर भी डाला, लेकिन वे तो हाथ के कते और हाथ के बुने कपडे का उसूल अपना चुके थे। मिल का काम वे उसके वरखिलाफ मानते थे। इसलिए ऐसी सलाह और लालच में वे कभी नही फसे।

एक बार एक अच्छी बडी मिल खरीद कर बिना चलाए ही दूसरे को बेच देने में कई लाख की बचत हो जाती थी। वह काफी समय से बन्द पडी थी। उसको चालू करने का भी सवाल नहीं था। केवल जमीन और मशीन को एक हाथ से लेकर दूसरे को बेच देने में ही इतना बडा मुनाफा मिलता था। सेठजी ने उसको भी खादी के सिद्धान्त के विरुद्ध समझा और उसमे हाथ नही लगाया। ऐसे कई मौके सेठजी के जीवन में आये।

आम तौर पर यह समझा जाता है कि व्यापार, व्यवसाय तथा उद्योग में कोई गलत बात कह देना दोष नहीं किन्तु गुण है और उसको चतुराई तथा कुशलता माना जाता है। सेठजी ऐसा नही मानते थे। उन्होंने अपने व्यवहार से यह सिद्ध कर दिया कि सचाई पर कायम रहकर भी व्यापार, व्यवसाय

और उद्योग में कामयाबी हासिल की जा सकती है।

** ** **

सेठजी किसीकी सिफारिश करने या मानने के भी बहुत विरुद्ध थे। एक बार एक मित्र ने अपने किसी मित्र के बारे में मैनेजर के काम के लिए उनसे सिफारिश की। सेठजी ने उनसे पूछा कि उनको उनकी सचाई और ईमानदारी के बारे में सिफारिश करने का साहस कैसे हुआ? उसपर उन्होंने सवालो की बौछार कर दी। उससे पूछा कि तुमको उसको कितने वर्षों से जानते हो? क्या तुमने कभी बिना लिखत-पढत किये उसको कुछ कर्ज दिया है और क्या वह उसने वापस किया? क्या कभी कोई अमानत उसके पास रखी थी और वह जैसी-की-तैसी वापस मिल गई? क्या कभी किसीने अपनी लडकी या बहू किसी स्थान पर पहुचाने के लिए उसके सुपुर्द की थी और उसने वहा उनको सुरक्षित और सही-सलामत पहुचा दिया था? सेठजी के इन प्रश्नो से सिफारिश करनेवाला चक्कर मे पड गया और अपना-सा मुह लेकर रह गया।

** ** *

एक दिलचस्प घटना उनके और उनकी पत्नी जानकीदेवीजी के बीच की बहुत पहले की है। उससे भी सेठजी के अपने उसूलो पर दृढ रहने का पता चलता है। नागपुर-कांग्रेस के बाद विदेशी कपडो की होली का कार्यक्रम भी शुरू किया गया था। वर्धा के तिलक-चौक में विदेशी कपडो की एक होली जलाई गई थी। तब सेठजी वर्धा में नही थे और जानकीदेवीजी ने अपने घर के कपडे दिये तो, लेकिन बहुत-से कीमती किनारी गोटेवाले कपडे रख लिये थे। सेठजी जब वर्धा आये और उन्हे यह मालूम हुआ तो उन्होंने विदेशी कपडो की होली का एक और आयोजन किया, जिसमें वे अपने घर के सब विदेशी कपडो को जलाना चाहते थे। घर में एक विवाद शुरू होगया। घरवालो का, जिनमें जानकीदेवीजी भी शामिल थी, कहना था कि कोई नए कपडे तो खरीदे नही जायगे। इनकी कीमत पहले ही चुकाई जा चुकी है। यदि इनको त्यागना ही है तो इनको गरीबो में क्यो न बाट दिया जाय। जलाने से क्या फायदा

होगा। कम-से-कम उनपर लगा सोने-चादी का गोटा-किनारी आदि तो उतार लिया जाय। सेठजी का कहना था कि जहर तो जहर है और यह मालूम होने पर भी कि वह जहर है, उसको नष्ट करने के सिवा उसका कुछ और उपयोग नही किया जा सकता। जिन चीजों में वह जहर समा जाता है उनको भी नष्ट करना जरूरी हो जाता है। कई दिन तक यह चर्चा चलती रही। आखिर सेठजी ने अपनी जिद्द पूरी की और घर का एक-एक कपड़ा होली के लिए निकाल दिया गया।

काग्रेस में प्रवेश करके उसमें अपना विशिष्ट स्थान बना लेने में सेठजी को अधिक समय नही लगा और गाधीजी के तो वे पाचवें पुत्र बन गए। काग्रेस की कार्यसमिति में उनका स्थान हमेशा बना रहा। काग्रेस के वे खजान्ची भी रहे। वर्धा आने पर सेठजी ने गाधीजी को १ लाख रुपया भेंट किया था। यह उन वकीलो की सहायता करने के लिए दिया गया था, जो वकालत छोड़कर असहयोग-आन्दोलन में सम्मिलित हुए थे। उसी समय काग्रेस ने तिलक स्वराज्य फड में १ करोड रुपया जमा करने का निश्चय किया था।

• •　　　　• •　　　　• •

सेठजी तमाम हिन्दुस्तान में घूमे। लाखो रुपया उनकी कोशिशो से जमा हुआ। मेरा यह निश्चित मत है कि यदि सेठजी का व्यक्तित्व उसके पीछे नहीं होता तो १ करोड रुपया जमा होना मुश्किल हो जाता। सेठजी की ही वजह से उस रकम का उपयोग अनेक रचनात्मक कार्यों के लिए जायज ढग से हो सका और कई महत्वपूर्ण राष्ट्रीय सस्थाए बन गई। बाद में अखिल भारतीय चर्खा-सघ की नीव डाली गई और वैसी ही अनेक रचनात्मक सस्थाए सेठजी की सूझ-बूझ, सहायता और सहयोग से बन गई। इतनी बडी सार्वजनिक निधि यह पहली ही थी।

• •　　　　• •

अतिथि-सेवा और खिलाने-पिलाने का सेठजी को अद्भुत शौक था। बहुत ही व्यवस्थित ढग से वे उसका इतजाम करते थे। हमेशा उसके लिए कोई-न-कोई मौका ढूटते रहते थे। दिसम्बर १९२१ में अहमदाबाद-काग्रेस में

सेठजी ने अपना लगर चलाया था। उसके लिए वर्धा से घी, अनाज, रसोइया आदि एक डिब्बा रिजर्व करके ले गए थे। १९२३ के नागपुर-झडा-सत्याग्रह के सम्बन्ध में जेल जाने तक उनका यह शौक जारी रहा। लखनऊ मे पब्लिक लायब्रेरी में आल इडिया काग्रेस-कमेटी की जो मीटिंग हुई थी, उस समय भी सेठजी ने खाने-पीने का अपनी तरफ से भी इतजाम किया था। उसकी एक पक्ति मे बैठनेवालो की गिनती की गई तो उनमें करीब ७८ जातियो और २७ देशो के लोग सम्मिलित थे। इस प्रकार विभिन्न जाति और देशवालो को एक पक्ति में बिठाकर भोजन कराने मे वे विशेप आनन्द अनुभव करते थे।

... .. .

युवको और युवतियो का योग्य सम्बन्ध कराकर उनका विवाह करवाने मे भी सेठजी को बडी दिलचस्पी थी। वे अपनी डायरी मे ऐसे युवको और युवतियो के पते आदि के साथ सूची रखा करते थे और उनका सम्बन्ध करवाने का विशेप ध्यान रखते थे। जिसका विवाह उन्होने करवाया उसका हमेशा ध्यान रखा। उसके बच्चा हुआ कि नही, कही अधिक सन्तान तो होनी शुरू नही हुई, बच्चो का लालन-पालन तथा शिक्षण आदि ठीक ढग से होता है कि नही, बडे होने पर वे किसी धन्धे में लग गए कि नही, आदि-आदि बातो का वे पूरा ध्यान रखते थे। जिनका वे विवाह-सम्बन्ध करवाते थे उनको अपने ही परिवार का मानकर उनका हमेशा ध्यान रखा करते थे। अन्तर-जातीय और अन्तरप्रान्तीय विवाह कराने और समाज की बुरी रूढियो व धार्मिक परम्पराओ पर चोट करने के लिए वे हमेशा उत्सुक रहते थे।

.. .. ..

खिलाने-पिलाने मे भी वे जात-पात अथवा सम्प्रदाय का कोई खयाल नही रखते थे। अपना चौका भी उन्होने सबके लिए खोल दिया था। इस कारण उनके रसोइया आदि काम छोड देते थे और कभी-कभी बड़ी कठिनाई का सामना करना पड जाता था। हरिजनो के सवाल को लेकर बहुत बडा जग छिड गया। आखिरी जग तब छिडा जब हम-सरीखे मुसलमानो को सेठजी ने अपने साथ चौके में बिठाना शुरू किया। एक बार सेठजी को यह भी सलाह

दी गई कि वे खाने के समय किसीका नाम आदि न लेकर रसोइए को यह पता न लगने दें कि कौन किस जात का है। खादी के कपड़े हम सब एक-सरीखे पहनते थे। उनसे किसीकी जात वगैरह का पता नहीं चल सकता था। परन्तु सेठजी ने उस सलाह को नहीं माना। वे इस प्रकार लुक-छिपकर कोई भी काम करना नहीं चाहते थे। उनका उद्देश्य तो इन्कलाब लाना था और वह इन्कलाब चोरी से काम करने से नहीं लाया जा सकता था। न उनका मतलब केवल किसीको खाना खिलाना ही था। उन्होंने अपना सारा जीवन गांधीजी के इन्कलाब को कामयाब करने में लगा दिया था और खाना-पीना भी उनके लिए उसीका एक हिस्सा था।

यह वह जमाना था, जबकि आल इंडिया कांग्रेस कमेटी के बड़े-बड़े इन्कलाब-पसन्द लोग भी छोटी जात या दूसरे धर्मवालों के साथ बैठकर खाना खाने की हिम्मत नहीं करते थे। कई बार ऐसे मौके आये कि हम कुछ नौजवान ए आई सी सी के अवसर पर एक दूसरे के जानबूझकर ऐसे नाम लेते जो हिन्दू नहीं होते थे और आपस में हमारे वे नाम सुनकर खानेवाले चौंककर परे हो जाते थे। सेठजी को जब इसका पता चला तब उन्होंने हम सब को बहुत डांटा और समझाया कि ऐसा करना धोखा है। धोखा देना सेठजी को बहुत बुरा लगता था। हम नौजवान इसको धोखा न मानकर विनोद और मनोरंजन माना करते थे। सेठजी विनोद या मनोरंजन में भी किसीको धोखा देना अच्छा नहीं समझते थे।

• •　　　　• •　　　　• •

मेरी वयोवृद्ध माताजी को भी मेहमानदारी का बड़ा शौक था और वे इस बात का बड़ा खयाल रखती थी कि यदि कोई मांस न खानेवाला घर में खाना खाने आये तो उसके लिए उन बर्तनों में खाना बनाया जाय जो मांस-वाले बर्तनों से दूर रखे जाते थे। एक बार दावत में सेठजी भी शामिल थे। माताजी ने बड़े शौक से उनके खान-पान का खयाल रखते हुए खाना तैयार किया, परन्तु उन्होंने यह कहकर कि मैं ऐसे घर में खाना नहीं खाता, जहां मांस बनाया जाता है, केवल फल आदि लिया और खाना नहीं खाया। यह

बहुत पहले की बात है। उसके बाद मैं ऐसे हिन्दु घरो को याद रखता रहा, जिनमे मास बनता था और जहा सेठजी ने खाना खाया था।

भाइखला-जेल में इनसब बातों का जिक्र विस्तार से हुआ। मैंने जब उनको माताजी के बडे प्रेम से खासतौर पर अलग बर्तनो में खाना बनाने और उनके खाना न खाने पर माताजी के दुखी होने की बात कही तो उन्हे अफसोस हुआ और उन्होंने वादा किया कि जेल से छूटने के बाद माताजी के सन्तोष के लिए वे हमारे यहा अवश्य खाना खाने आयगे। लेकिन वैसा होना नहीं था। हम लोग जेल मे ही थे कि माताजी का देहान्त होगया। सेठजी को इसका बडा दु ख रहा और कई बार उन्होंने इसकी चर्चा भी की। खाने का तो उनको इतना शौक नही था, किन्तु जिनको वे अपना मान लेते थे उनके यहा वे बडे शौक से खाना खाया करते थे और इसमे बडा आनन्द अनुभव किया करते थे।

सेठजी की यह जन्मजात आदत थी कि वे जिस काम को हाथ में लेते थे उसको पूरी तरह अजाम देते थे। असहयोग और सत्याग्रह को अपनाने के बाद उसका मर्म समझने के लिए वे महात्मा गाधी से विनोबाजी को मागकर १९२१ में वर्धा ले आये थे। उनकी देख-रेख मे एक सत्याग्रह-आश्रम खोला गया और बढते-बढते उसने मुख्य आश्रम का रूप धारण कर लिया। काम इतना बढ गया कि गाधीजी के तरीको पर काम करनेवाली बडी-बडी सस्थाओं के केन्द्र और कार्यालय वर्धा में कायम होगए। इससे गाधीजी भी इतने आकर्षित हुए कि वे भी साबरमती छोडकर वर्धा चले आये। सेठजी ने अपनी जमीन और जायदाद का बहुत बडा हिस्सा उन सस्थाओ के सुपुर्द कर दिया और इन सस्थाओ को कभी भी पैसे की कमी नही होने दी। इससे सेठजी के काम करने के तरीके का ही नही, किन्तु उनके काम मे चुम्बक की-सी दूसरो को अपनी ओर खीच लेने की जो शक्ति थी उसका पता चलता है। सेठजी की इस शक्ति का लोहा सभी मानते थे और सबपर उन्होंने जादू का-सा असर किया हुआ था।

खाने-पीने के बारे में भी सेठजी के अपने ही कुछ उसूल थे और वे दिन-

पर-दिन सख्त होते जाते थे। कभी वे एक वार ही जो कुछ लेना होता था ले लेते थे। कभी कुछ नियत सख्या मे ही खाने का सामान लेते थे। खाने की मात्रा के वारे में उनका यह नियम हमेशा रहा कि जरूरत से अधिक लेना नही और थाली मे कुछ जूठा छोडना नही। खाने की थाली को धोई हुई थाली की तरह साफ करने की मेरी आदत उन्हीमे सीखी हुई है। खाने के समय न वोलने का भी उनका नियम काफी लम्बे समय तक चला। दूसरो को अच्छा-से-अच्छा भोजन कराने का शौक रखते हुए भी उनको अपने वारे मे खाने का ऐसा कोई शौक नही था। चीज को रूखा-सूखा और बे-स्वाद बनाकर खाने मे उनको खास मजा आता था। कभी-कभी तो वे एक ही चीज खाने में खुश होते थे। गाय के घी-दूध का नियम भी उन्होने ले लिया था। वे यह जरूर चाहते कि दूसरे भी वैसा ही करे, जैसा वे स्वय करते थे।

सेठजी का दिल वडा उदार और सहृदय था। वहुत-सी सार्वजनिक सस्थाए उनकी सहायता या उनके ही पैसे पर चलती थी। परन्तु उनका उसूल यह था कि वे किसी भी ऐसी साम्प्रदायिक सस्था की सहायता नही करते थे, जिसका लाभ किसी एक ही सम्प्रदाय, जाति व धर्म के लोगो को मिलता था। इसपर भी जव वर्घा के कुछ गरीव मुसलमानो ने अपने स्कूल के लिए उनसे मदद मागी, तो उन्होने इकार नही किया। कारण इसका यह था कि वे पिछडे हुओ और अल्प-सख्यको की मदद करना अपना फर्ज समझते थे। वर्घा की दो अजुमन उनके अन्तिम समय तक उनकी सहायता प्राप्त करती रही।

इस प्रकार मुसलमानो को भी उन्होने अपने प्रेम के इतना वश में कर लिया था कि वर्धा में कभी कोई साम्प्रदायिक सवाल नही उठा। अपनी इच्छा से ही मुसलमानो ने गोवध को १९२२ में बिल्कुल वन्द कर दिया था। वे ईद पर भी गो की कुरवानी नही करते थे। श्री शकराचार्य डा कुर्तकोटी के वर्धा आने पर मुसलमानो ने एक गाय खूब सजाकर उनको भेंट की थी और यह बताया था कि वे गाय का कितना सम्मान करते है।

लेकिन इसके वाद ही वर्धा की म्युनिसिपैलिटी में कुछ लोगो ने प्रस्ताव पेश किया और कानून द्वारा गोवध पर रोक लगवानी चाही। सेठजी को ऐसे

तरीके पसन्द नही थे। वे तो प्रेम के उसूल को मानते थे। प्रेम, मुहब्बत और भाईचारे से वे कोई भी काम करवा सकते थे। परन्तु कानून से जबरन ऐसे काम करवाने के विरुद्ध थे। साथ-ही-साथ वहा के मुसलमान भी इस कानूनी बन्धन के विरुद्ध थे। सेठजी ने प्रस्ताव पेश करनेवालो को समझाने की कोशिश की कि गोवध न होने पर उस प्रस्ताव की क्या जरूरत है, परन्तु वे अपनी जिद पर अडे रहे। इसपर सेठजी ने मुसलमानो से कह दिया कि वे स्वतन्त्र है। उनका प्रेम का बन्धन तभी तक है जबतक कि उनपर कोई कानूनी जोर-जबरदस्ती नही की जाती।

• • • • • •

वे एक बार रेल मे दूसरे दर्जे मे सफर कर रहे थे। उनके साथ का दूसरा मुसाफिर डिब्बे में ही थूक रहा था। उन्होने उसको समझाने और डिब्बे में न थूकने का उससे अनुरोध किया। बार-बार कहने पर भी उसने थूकना बन्द न किया। उसका पान का चवाना और थूकना जब बन्द होगया, तब सेठजी उठे और अपने हाथो से उन्होने उसके थूक को साफ करके हाथ धो लिये। इसपर वह इतना लज्जित हुआ कि उसने सेठजी से क्षमा मागी और आइन्दा वैसा न करने की खुद ही कसम खाई। सेठजी का सुधार का यह अपना ही तरीका था। बडे-से-बडे मौको पर भी वे अपने इस तरीके से काम लेने में चूकते नही थे। इसका दूसरो पर अचूक असर पडता था।

: ८३ :

एक सप्ताह का सत्संग

श्रेयासप्रसाद जैन

पूज्य श्री जमनालालजी वजाज का जिक्र आते ही मुझे मसूरी की वे ऊची चोटिया याद आ जाती है जहा अब से दो दशाब्दी पहले मुझे उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मेरा खयाल है कि वह सन् १९३६ की वात है। जमनालालजी उसी वगले में आकर रहे थे, जिनमें मै और मेरे भाई शातिप्रसाद रहते थे।

मैं तव उनसे पहले-महल ही मिला था। मैंने सुन रखा था कि जमनालालजी राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के दाहिने हाथ है। गरीवो और जरूरतमदो की भलाई के लिए नि स्वार्थ सेवा के वल पर उन्होने गाधीजी के हृदय में अपने लिए स्थान वना लिया था।

इस प्रकार उनके साथ सम्पर्क स्थापित करने का सुअवसर प्राप्त करने को मैंने अपना वडा सौभाग्य माना। ज्योही मुझे उनके वहा आकर ठहरने की बात मालूम हुई, उनसे मिलने और वातचीत करने की इच्छा हुई।

पहले तो मैं उनसे मिलने में हिचकिचा रहा था पर कुछ ही क्षणों की बातचीत से उनका व्यक्तित्व मुझपर प्रकट होगया। मैंने तुरन्त यह जान लिया कि जमनालालजी सादगी और दयालुता की साक्षात मूर्ति है। मैंने देखा कि वे बडे ही विचारशील, शिष्ट, अनुग्रहपरायण और स्वभाव से ही सहानुभूतिपूर्ण है। उनके अन्दर न तो अपनी सम्पत्ति का कोई खयाल था और न राष्ट्रपिता महात्मा गाधी से घनिष्ट सपर्क का। मैं समझता हू कि यह इस सफलता का रहस्य था कि जो लोग उनके सम्पर्क में आते, वे उनके प्रिय वन जाते। ऐसे लोगो में से मैं कोई अपवाद नही था।

उन दिनो जमीदारी का प्रश्न समाचार-पत्रों और सभाओ में वाद-विवाद का विषय बन गया था। जमीदार-परिवार में जन्म होने और तब-तक औद्योगिक क्षेत्र मे प्रवेश न होने के कारण मै जमीदारी-उन्मूलन विचार का विरोधी था। जमनालालजी ने मुझे यह समझाया कि जमीदारी-प्रथा समाज-विरोधी है। उन्होंने बताया कि यह प्रथा स्वय जमीदारो के ही हितो के विरुद्ध है, बशर्ते कि इस समस्या पर दूरदर्शितापूर्वक विचार किया जाय। वे देश के औद्योगीकरण के बहुत पक्ष में थे और उन लोगो के प्रयत्नो की सराहना करते थे, जो उस क्षेत्र मे थे।

जमीदारी मे निहित स्वार्थ होने के कारण मैने उन दिनो उनके विचारो को पसन्द नही किया। अपने सीमित अनुभव के कारण मैने उनके तर्कों का खडन करने की कोशिश यह कहकर की कि अगर जमीन जोतनेवाले की है तो उद्योगधधे मजदूरो के है। उन दिनो मै इस बात को बहुत कम समझ पाता था कि आराम-तलब जमीदार और परिश्रमी उद्योगपति में कितना बडा अन्तर है। मेरे अप्रशिक्षित मस्तिष्क में यह विचार नही आया था कि उद्योगपति बनने के लिए कैसे महान् गुणो की आवश्यकता है। अब चूकि मै गत पन्द्रह वर्षों से इस क्षेत्र में हू, इसलिए यह जानता हू कि यह क्या है और आज मै यह महसूस करने लगा हू कि सेठजी ने जमीदारी के मुकाबले औद्योगीकरण की वकालत क्यो की थी।

यद्यपि उस समय मै जमनालालजी से सहमत नही हुआ था, फिर भी उनके विचारो ने उस समय मेरे मन पर जो गहरा असर डाला, उसे मैं नही भूल सकता। उन विचारो ने मुझे बहुत-सा मानसिक भोजन दिया। उन्होंने जमीदारी के बारे मे जो कुछ कहा था, वह आजादी आने के बाद एक तथ्य बन गया और आज मै बडी कृतज्ञता के साथ वह स्वीकार करता हू कि उनके परामर्श और विचारो का प्रभाव मुझपर बना है और मुझे अपनी जीवन-वृत्ति के निर्माण का मार्गदर्शन करने में सहायक होगा।

जमनालालजी न केवल एक बडे नेता थे, बल्कि एक तत्वज्ञ मित्र और मार्गदर्शक भी थे, और थे एक महान् खिलाड़ी। बच्चो मे वे बच्चे बन जाते

थे और युवको मे युवक। उनके लिए अवस्था का कोई विचार नही था। उस समय मैं लगभग २८ वर्ष का था और वे मुझसे बहुत बड़े थे। इस अवस्था-वैषम्य के होते हुए भी वे न केवल मुझसे बहस करने को तैयार रहते थे, बल्कि मेरे साथ ताश खेलने या घूमने-फिरने के लिए जाने को उद्यत मिलते थे। मैं ब्रिज के खेल में बडी दिलचस्पी लेता था। उन्हें भी इस खेल में बडी रुचि देखकर प्रसन्नता होती थी। उन दिनो ताश के खिलाडी आक्शन ब्रिज को बहुत पसन्द किया करते थे। मुझे यह कहना चाहिए कि यह खेल उनके साथ खेलते हुए मैंने इसका अच्छा आनन्द लिया था।

मसूरी में तो हम दोनो एक सप्ताह ही साथ रहे और वह स्मरणीय सप्ताह जैसे क्षणभर मे बीत गया, किन्तु वह अब भी मेरी स्मृति में ताजा बना हुआ है। दुर्भाग्यवश जमनालालजी के साथ मेरी यह पहली और आखिरी मुलाकात थी।

: ८४ :

अमूल्य स्मृति

शातिप्रसाद जैन

श्री जमनालालजी से मेरा परिचय मेरे विवाह के बाद हुआ। श्री डाल मियाजी से उनकी घनिष्टता थी और रमा (मेरी पत्नी) पर उनका बहुत स्नेह था, अत उनसे मिलने पर मेरेलिए उनका प्रेम प्राप्त करना सहज और स्वाभाविक बात थी। किन्तु जब मैं उनसे मिला तो उनके स्नेह की स्वाभाविकता मे मैंने विशेष आत्मीयता पाई। उन्होने मेरे सम्बन्ध मे अधिक-से-अधिक जानकारी मुझसे चाही। मुझे लगा, जैसे उन्होने मेरे भाव-जगत में प्रवेश करके मुझे अपनाया हो। उनकी इस निकटतम आत्मीयता ने मुझें मोह लिया। दो-चार बार मिलने के बाद ही मैं आश्वस्त होगया कि हर प्रकार के परामर्श और सहायता के लिए मैं उनपर अपना अधिकार समझू। जीवन के कर्मक्षेत्र मे प्रवेश करनेवाले किसी भी महत्वाकाक्षी नवयुवक को श्री जमनालालजी-जैसा सलाहकार मिले, इससे बडा सौभाग्य और क्या हो सकता है।

डालमियानगर के उद्योगो का श्रीगणेश चीनी मिल की स्थापना से हुआ था, जिसके उद्घाटन के लिए श्री जमनालालजी डालमियानगर पधारे। उनके पुण्य-स्पर्श के प्रताप से डालमियानगर की जो प्रगति हुई वह सर्व-विदित है।

वहा जब वह मेरे घर पधारे तो मेरी मा से पहली बार मिले। मेरी मा उनको शुष्क सुधारक,लीडर जानती थी और मिलने में भी सकोच करती थी। वे उनसे घण्टो बात करते रहे। क्या बातें की, मुझे पूरा याद नहीं, पर बातो का केन्द्र विशेषतया घरेलू ढाचा रहा होगा। मुलाकात के बाद मेरी मा का उनके प्रति बडा सम्मान होगया और उनकी धारणाए स्नेह और आदर मे बदल गई।

अपने व्यापार की प्रारम्भिक अवस्था में मैं उनसे एक बार एक आवश्यकता के सम्बन्ध मे मिला। उन्होंने मेरी तात्कालिक आवश्यकता पूरी ही नही की, बल्कि एक उत्तरदायी अभिभावक के नाते मेरी समस्या को समझा और अनेक प्रकार के उपयोगी परामर्श दिये। उनके द्वारा आवश्यकता-पूर्ति के सम्बन्ध में मेरे ऊपर जो जिम्मेदारी आती थी, उसके बारे मे उन्होंने केवल इतना ही कहा, "अपनी बात को कम मत होने देना।" यह बात इतने सरल ढग से कही गई थी और इतने अधिक विश्वास के साथ कि 'बात' की महत्ता और मावरक्षा की शिक्षा सदा के लिए मेरे मानस-पट पर अकित होगई।

मैं श्री जमनालालजी के पास वर्धा कई बार गया और उनके साथ वहा की सार्वजनिक सस्थाओं को देखा। श्री जमनालालजी उन सस्थाओ को बापू की थाती मानते थे। उन सस्थाओं की कार्यपद्धति के विषय मे मेरी और उनकी कई बार बाते हुईं। उन सस्थाओ मे जब सालाना घाटा होता था तो उन्हे बडी व्यग्रता होती थी। मेरी चढती उमर थी और अपने दृष्टिकोण के प्रति आग्रह का-सा भाव होने के कारण मैंने उनसे कई बार दान के द्वारा सस्थाओ का घाटा भरने की प्रथा का विरोध-सा प्रगट किया। उन्होंने मेरी बात को बडे ध्यान से और बडे प्रेम से सुना। उनका भी सदा यही प्रयत्न रहा कि घरेलू धधो के रूप में चलनेवाली सस्थाए आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी हो जायं।

मेरे द्वारा कई बार विभिन्न आर्थिक व सामाजिक समस्याओं पर विपरीत आलोचना सुनने के बावजूद उनका झुकाव मेरी ओर घटने की बजाय अधिक बढ़ा ही। मै उनके इस गुण से विशेष प्रभावित हुआ कि वे विपरीत विचारो की भी कद्र करते थे, अवहेलना नहीं।

समस्या जितनी ही कठिन होती थी, जमनालालजी की रुचि भी उस समस्या को सुलझाने मे उसी मात्रा में बढ जाती थी। कठिनाइयों का सामना करने के वे अभ्यस्त थे और उनका हल निकालने में लगनशील। वे समस्या को विस्तार से समझते थे, उसके हर पहलू पर विचार करते थे और दूसरो के दृष्टिकोण की तह तक पहुचने का प्रयत्न करते थे।

श्री जमनालालजी से मेरा जितना ससर्ग वढता गया, उनका प्रेम भी वढता गया। मुझे उनसे अपनी घरेलू और व्यापार की सभी प्रकार की वाते कहने में कभी सकोच नही हुआ। उन्होने एक वार अपनी वच्छराज एण्ड कम्पनी में साझीदार होने के लिए न्यौता-सा दिया। मेरेलिए यह नाजुक स्थिति थी। उनकी वात को टालना भी मेरेलिए सम्भव नही था। मैंने दूसरे दिन उनसे ही पूछा, "अपनी फर्म में रहते हुए और वर्तमान स्थिति को देखते हुए, क्या मेरेलिए यह सही होगा कि मै दूसरी फर्म में साझीदार वन् ?" उन्होने फौरन ही स्थिति को इस दृष्टिकोण से सोचकर कहा कि मेरेलिए ऐसा करना ठीक न होगा।

उनमें अद्भुत सतुलन था और उनकी दृष्टि दूरगामी थी।

उनका प्रेरणादायक सपर्क आज जीवन की अमूल्य स्मृति के रूप में भी कल्याणकारी वना हुआ है।

: ८५ :

बहुमुखी सेवाएं

श्रीनिवास बगड़का

किसी भी धर्म का अनुयायी सम्पूर्ण धर्म को मानते हुए भी किसी विशिष्ट देवता या सन्त का उपासक होता है, उसी प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करनेवाले व्यक्ति को यद्यपि प्रेरणा बहुत-से व्यक्तियों से मिलती है, फिर भी वह एक व्यक्ति को आदर्श पुरुष मानकर चलता है, उससे प्रेरणा पाता है, और उसके अनुरूप अपनेको बनाने की कामना करता है। मेरे जीवन में जमनालालजी का यही स्थान है। मैं उन्हें अपना आदर्श पुरुष मानता हूं। भारत-भर में और विशेषकर मारवाड़ी-समाज के तो कितने ही कार्य-कर्ताओं के लिए सेठजी एक आदर्श थे।

महापुरुष जो कुछ होते हैं, या बन पाते हैं वह उनकी जीवन-भर की साधना का परिणाम होता है। माना कि परिस्थिति, परम्परा और तत्कालीन अन्य महापुरुषों का इस निर्माणकार्य में पर्याप्त हाथ होता है, पर वास्तविक वस्तु होती है उनका अपना व्यक्तित्व ही। जमनालालजी भी इसके अपवाद नहीं थे। वे भस्मावगुंठित अंगारे-से थे। गांधीजी के सम्पर्क में आने से ऊपर की राख उड़ गई, यह सच है, लेकिन वह चमक और आभा जो प्रकट हुई उनकी अपनी थी। धीरे-धीरे यह प्रभा-रश्मि प्रसार पाती गई और देश के अणु-अणु में व्याप्त होगई।

जमनालालजी बजाज को 'गांधीजी का पांचवां पुत्र' कहा जाता है। गांधीजी ने स्वयं कहा था कि लोग पुत्र गोद लेते हैं, जमनालाल ने बाप दत्तक लिया। मैं मानता हूं कि वे गांधीजी के सच्चे मानस-पुत्र थे और थे गांधीवाद की साकार प्रतिमा, साथ ही गांधीजी की सत्य और अहिंसा के जीते-जागते स्वरूप। उनके जीवन की कुछ घटनाएं आज याद आती

हैं। एक बार की बात है कि कांग्रेस के लिए एक निधि एकत्र करनी थी। निधि कोई बहुत बड़ी नही थी और यह निश्चय किया कि सबसे एक-एक हजार रुपये लेंगे। हम एक सेठ के पास गये और उनसे एक हजार रुपये मांगे। उसने किसी दूसरे सज्जन का नाम लिया और कहा कि वे दे देंगे तो मैं भी दे दूगा। जब मैंने कहा कि उसने स्वीकृति दे दी है तो उसने भी एक हजार की रकम लिख दी। मै बड़ा प्रसन्न था कि इनसे यह रकम मिल गई, क्योकि मुझे इनसे इतनी आशा नही थी। जब हम लोग नीचे आये तो सेठजी ने कहा, "श्रीनिवास, आज हम झूठ बोले हैं, झूठ बोलकर तो एक क्या, एक करोड रुपये भी नही चाहिए। तुम जाकर उन्हें सच्ची बात बता दो, फिर वे जो कुछ देंगे, हमें स्वीकार होगा।" मैंने कहा, "सेठजी, मेरी हिम्मत तो पुन जाने की नही होती है, क्योकि मुझे विश्वास है वह स्पष्ट इकार कर देंगे।" इसपर वे स्वय अकेले ऊपर गये, उन्हें स्थिति बताई। उक्त सज्जन ने आश्वासन दी हुई रकम के लिए फिर भी 'हां' भर ली, और हमें पहले सज्जन से भी रकम मिल गई। इस घटना का उल्लेख मैंने उनकी सत्य के प्रति आस्था का उदाहरण देने के लिए किया है। ऐसे सहस्रो उदाहरण उनके जीवन मे मिलेंगे।

सेठजी का जीवन अध्यवसाय, लगन, साहस, सत्यनिष्ठा और त्याग का एक सुन्दर उदाहरण है। देश को उनका परिचय भले ही राजनैतिक क्षेत्र में आने पर ही अधिक मिला हो (नागपुर झंडा-प्रकरण से उनकी ख्याति सारे देश मे फैल गई), लेकिन उनके जीवन का यह पहलू उनके सामाजिक जीवन का स्वाभाविक विकास मात्र है। उनके राजनैतिक जीवन की आधारशिला है उनका सामाजिक कार्य। कोई भी राजनैतिक परिवर्तन या क्रांति तभी सफल होगी जब समाज सबल और सुयोग्य हो। हम देखते हैं कि सेठजी का प्रथम और महत्वपूर्ण प्रयास समाज-सुधार की ओर था। इसका अर्थ यह नही कि वे राजनैतिक क्षेत्र मे किसी से पीछे रहे।

अपने सार्वजनिक जीवन मे उन्होने अनुभव किया कि मारवाडी-समाज

के पास अगाध सम्पत्ति है, फिर भी उससे जितना लाभ समाज या राष्ट्र को होना चाहिए उतना हो नही रहा है। इसीलिए उन्होने अ भा. मारवाडी अग्रवाल जातीय कोष की स्थापना आषाढ कृष्णा द्वितीया सं० १९७७ को अपने कुछ साथी कार्यकर्त्ताओ के सहयोग से की। जातीय-कोष अग्रवाल-समाज की जो सेवा आज भी कर रहा है उसकी यहा चर्चा करने की आवश्यकता नही है। सेठजी ने इस बात की आवश्यकता भी अनुभव की कि समाज के सेवाभावी व्यक्तियो को एकत्र कर उन्हे सगठित किया जाय। इसी भावना ने उन्होने 'अग्रवाल-सेवक-सघ' की स्थापना की।

शिक्षा के प्रति उनका विशेष अनुराग था। बम्बई के 'मारवाडी विद्यालय' की स्थापना में उनका विशेष हाथ था। वर्धा में उन्होंने 'मारवाडी-शिक्षा-मडल' की स्थापना की, जिसके अन्तर्गत आज तीन तो वाणिज्य महाविद्यालय चल रहे है।

गाधीजी सेठो को समाज के धन के ट्रस्टी मानते थे। इस विचार-धारा को प्रस्तुत करते हुए शायद बापू के दिमाग मे सेठजी का ही उदाहरण था। देश का दुर्भाग्य है कि ऐसे ट्रस्टी देश-भर मे एक-दो ही हुए।

भारतीय स्वातत्र्य-आन्दोलन को सेठजी की जो देन है वह सर्वविदित है। परन्तु एक बात कहे बिना नही रह सकता कि भारत के राज-नैतिक इतिहास में जो स्थान बापू का था वही राजस्थान की राजनीति मे सेठजी का था। राजस्थान मे राजनैतिक चेतना का जो कार्य पथिकजी और सेठजी ने प्रारभ किया उसे सेठजी ने पूरा किया। दुहरे गुलाम प्रदेश मे राजनैतिक जागृति का शख बजाकर अपनी स्वतत्रता के लिए लडने के लिए उसे सेठजी ने ही तैयार किया। सन् १९३९ में सेठजी के नेतृत्व में जय-पुर-सत्याग्रह का श्रीगणेश हुआ और उनके बाद सभी देशी राज्यो में सत्या-ग्रह की एक लहर-सी दौड गई, जिसके परिणाम-स्वरूप जगह-जगह पर राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं के नेतृत्व में मन्त्रिमडल बने।

उनके निधन से समाज और राष्ट्र की जो क्षति हुई उसकी पूर्ति नही हो सकी। वे बीसवी सदी में राणा प्रताप और भामाशाह दोनो एक शरीर मे थे।

: ८६ :

उनका सबसे बड़ा गुण

भगवतीप्रसाद खेतान

सेठ जमनालालजी बजाज की मेरी याद उनके द्वारा भारत-भर में बच्चों के हृदय पर अकित इसी प्रकार की छापो की प्रतीक है। वह एक प्रचारक थे, जो जहा भी गए, सामाजिक तथा नैतिक सुधार और देश के प्रति प्रेम का सदेश साथ लेकर गए। आज के नेताओ के विपरीत वह उन सबको, जो उनके ससर्ग मे आते थे, अपने निकटतर ले आते थे।

मेरे पिता स्व श्री नौरगरायजी खेतान तथा मेरे भाई श्री देवीप्रसाद-जी खेतान तथा हमारे परिवार मे अपनी प्रारभिक शिक्षा के कारण उन्हे हमारे परिवार के सदस्यो से समाज-सुधार तथा राष्ट्रीय सेवा—दोनो के मामलो मे—जो सदा साथ-साथ चलते थे, बडी सभावनाए दिखाई दी थी। किसी हदतक मेरे पिता के सरकारी नौकर होने के कारण और किसी हद-तक एक सयुक्त कुटुब के सदस्यो के रूप मे रहनेवाले कई व्यक्तियो के अत्यत भिन्न विचारो के कारण हमारी सीमाओ को भी वह जानते थे। यह केवल उन्हीके कारण था कि हमारा सयुक्त कौटुबिक मकान, जो कलकत्ते मे खेतान-भवन के नाम से विख्यात है, सविनय-अवज्ञा के तूफानी दिनो मे देश के सभी भागो के काग्रेसी नेताओ का अतिथि-भवन बन गया। वे तब उन लोगो के लिए, जो आज नेताओ के पीछे भाग रहे है और किसी भी नेता को अपने घर मे अतिथि के रूप मे रखना एक सम्मान की बात समझेगे, अप्रिय मेहमान थे। यह केवल सेठ जमनालालजी के ही प्रभाव और व्यक्तित्व के कारण था कि हमारा मकान राष्ट्रीय कार्य करनेवाले सभी बडे अथवा छोटे कार्यकर्ताओ के लिए खुल गया।

जब मेरे भाई श्री कालीप्रसादजी खेतान सन् १९१४ मे इग्लैड से बैरिस्टरी

पास करके आये, तो हमारे परिवार को जमनालालजी बजाज तथा बिडला-परिवार के सदस्यो से अधिकतम प्रोत्साहन तथा सम्मान मिला, यहातक कि बाद में हमें जाति-बाहर करने का आदोलन बिल्कुल असफल रहा।

सेठजी तथा श्री घनश्यामदास बिडला मारवाडियो में समाज-सुधार के प्राण और प्रेरणा रहे। उनके प्रोत्साहन और सहायता से अनेक महत्वपूर्ण कार्यकर्ता पैदा होगए। महान् नेता होने पर भी उनमें सबसे बडा गुण बालको के साथ बिना किसी अह-भाव के घुलमिल जाने का था। एक बार मैं और कुछ मित्र कलकत्ता बोटेनीकल बाग में साइकिल पर घूमने गए। सेठजी और श्री महाबीरप्रसादजी पोद्दार भी वहा गए हुए थे। हमें देखकर वे तुरत हमारे साथ शामिल होगए। मजाक में उन्होने कहा—"भगवती, मुझे साइकिल चलाना सिखा दो न।" मैं तब बालक ही था। इसलिए घबरा-सा गया, लेकिन महावीरप्रसादजी ने यह कहकर कि सेठजी को साइकिल चलाना आता है, मुझे तसल्ली दी। सेठजी ने साइकिल ले ली। अभाग्यवश वह एक टैक्सी से टकरा गए, जिसके फलस्वरूप उन्हें घुटने के ठीक ऊपर काफी चोट आगई। उन्हे घर लाया गया। घाव पर टाके लगाने पडे जो उन्होने बिना बेहोशी की दवा लिये लगवा लिये। सारी बात उन्होने खुशी-खुशी बरदाश्त की।

मुझे एक बार उनके साथ जुहू रहने का मौका मिला। यह देखकर मुझे बडा सुखद आश्चर्य हुआ कि अपने स्नेह और व्यक्तित्व से वह अपनी पुत्र-वधू के विचारो में किस तरह परिवर्तन लाने में सफल होगए।

वह स्वय क्रांतिकारी थे और उनमें बडा मित्र-भाव था और दूसरो के दृष्टिकोण को सहानुभूतिपूर्ण समझने से उनके मित्रो तथा अनुगामियों में क्रांतिकारी, साधु-सन्यासी, अमीर-गरीब, समाज-सुधारक, साहित्यकार राजनीतिज्ञ—वास्तव में सभी वर्ग—सम्मिलित थे। जिन लोगो को उनके तरीके तथा विचार नापसद थे, वे भी उन्हें पसन्द करते थे।

: ८७ :

अनिर्वचनीय कृतज्ञता

रमारानी जैन

ताऊजी (श्री जमनालालजी बजाज) पिताजी के पुराने आत्मीयो में से थे, वैसे भी मारवाड़ी-समाज में प्राय प्रत्येक परिवार का उनके प्रति सहज श्रद्धा-भाव था। जब मैं पाच-छ वर्ष की थी तब मुझे कुछ दिन के लिए साबरमती-आश्रम में रहने का सुयोग मिला। वही मैं पहले-पहल उनके कुटुम्ब के साथ रही। उनके ही सुझाव के अनुसार दो वर्ष बाद मुझे रेवाड़ी-आश्रम में पढने के लिये भेजा गया, जहा मदालसा (श्री जमनालालजी की द्वितीय पुत्री) भी पढती थी। वहा उसे पाकर मुझे ऐसा लगा, जैसे मुझे अपनी ही बहन मिल गई हो।

मैं इसे अपना सौभाग्य मानती हू कि जीवन के उन महत्वपूर्ण वर्षो मे, जब चरित्र-निर्माण की नीव पडती है, मुझे उनका मार्ग-दर्शन और स्नेह मिला। उनके सम्बन्ध मे अनेक ऐसे सस्मरण है, जो महत्वपूर्ण है और जिनसे उनकी बहुमुखी महानता का दिग्दर्शन होता है, किन्तु उन सबको लिख सकना मेरेलिए सम्भव नही। मैं दो-चार सस्मरणो की पुलकित स्मृति के द्वारा ही अपनी श्रद्धाजलि अर्पित कर रही हू।

सम्भवतया १९३० के नवम्बर-दिसम्बर में जब वह काग्रेस-कार्य के दौरे के सिलसिले में दानापुर आये और हमारे यहा ठहरे तो मैंने इच्छा प्रकट की कि मै उनके साथ दौरे पर चलू। देश-सेवा की अथाह लगन थी मेरे मन में उन दिनो। पिताजी भी देश के कार्यों मे सक्रिय सहयोग देते थे। मुझे विश्वास था कि पिताजी की अनुमति मिल जायगी और ताऊजी तो मेरा उत्साह देखकर फौरन ही साथ ले चलने को तैयार हो जायगे। किन्तु जब मैंने उनसे अपनी इच्छा प्रकट की तो मुझे यह देखकर आश्चर्य और निराशा हुई कि

उन्होंने तत्काल अपना स्पष्ट निर्णय सुना दिया—"अपनी मैट्रिक की परीक्षा छोडकर, रमा, तू मेरे साथ दौरे पर जाय, यह ठीक नही। तुझे पहले अपनी परीक्षा समाप्त कर लेनी चाहिए।"

आज उस बात को याद करती हू तो समझ में आता है कि उनकी विवेक-बुद्धि कितनी प्रखर थी। यद्यपि वे देश-सेवा के कार्यों मे दिन-रात लगे रहते थे और सब प्रकार के साधन जुटाने मे उन्हे विस्तृत सहयोग की आकाक्षा रहती थी तथापि वे दूसरो के हित को प्रमुखता देते थे। दूसरे के दृष्टिकोण से बात सोचना उनका बडा भारी गुण था।

उक्त घटना के अगले साल, सन् १९३१ में, जब वह पुन· दानापुर आये तो पिताजी ने उनसे मेरे विवाह के विषय में परामर्श किया। उस समय मेरी आयु चौदह वर्ष की थी। उन्होने इस विषय में बिना मेरी राय व विचार जाने परामर्श देना अनुचित समझा और मुझे बुलाकर पूछ ही तो लिया कि अमुक रिश्ते के बारे में मेरी राय क्या है? इस प्रकार के प्रश्न के लिए मैं तैयार नहीं थी, न मैंने कभी इस विषय में इस दृष्टिकोण से कुछ सोचा ही था। हा, एक बात मन में जरूर दृढ होगई थी, जैसाकि उस आयु मे, उस वातावरण में, हर आदर्शोन्मुखी लडकी की भावना होती थी, कि विवाह नही करूगी। मैंने भी निस्सकोच कह दिया—"ताऊजी, मैं शादी नही करूगी।" इस बात को उन्होने न तो हँसकर उडाया, न यह कहा कि यह बचपन की या बेवकूफी की बात है। पिताजी से कहकर उन्होने मुझे अपने साथ भ्रमण के लिए ले लिया। इन पाच-छ महीनो में समय-समय पर समझाकर, तर्क से भाव-नाओ की महत्ता सुझाकर, वह मुझे इस परिणाम पर ले आये कि लड़-कियो के लिए विवाह करना ही अधिक स्वाभाविक, आवश्यक और श्रेयस्कर है।

उन्हें यह बात असह्य थी कि कोई भी व्यक्ति अपने आपको गिराकर बात करे या ऐसी बात कहे जिसकी सचाई का प्रमाण उसे बाहर से जुटाना पडे। उनके सामने किसी बात को कहने का ही अर्थ यह था कि वह बात अपने आपमे सच्ची है। सयोग की बात कि यह शिक्षा मुझे जरा कठिन तरीके से

सीखनी पडी, पर वह भी जीवन का अमूल्यतम सस्मरण है।

एक दिन कलकत्ते मे ताऊजी ने सीढिया चढते हुए मुझसे किसी घटना के विषय मे पूछा। मैंने बात बता दी। मेरा उत्तर सुनकर वह एक क्षण को सोचने-से लगे व ठिठककर मेरी ओर देखा। मुझे लगा, जैसे उन्होंने विश्वास न किया हो। मैंने कहा—"जी, मैं ठीक कहती हू।" वह चौके, चौंककर मेरी ओर देखा। मैंने उनकी दृष्टि की भर्त्सना को देखा, पर समझा नही। मै तो यही समझी कि वह मेरा विश्वास नही कर रहे हैं। मैं स्तम्भित होगई। मैंने आग्रहपूर्वक वाणी का सारा बल लगाकर कहा—"ताऊजी, मैं कसम खा सकती हू, कि" मैं वाक्य पूरा भी न कर पाई थी कि चट से एक तमाचा मुह पर आ लगा।

यह एक अनहोनी-सी बात थी। वे कभी भी किसीपर नाराज नही होते थे, पर यह बात उन्हें ऐसी लगी कि वे अपनेको रोक न पाये। उनका गला भर आया। बोले, "रमा, तुम्हे यह सब कहने की क्या जरूरत हुई?" मेरे मन में बिजली-सी कौंधी और मैं फौरन ही समझ गई कि उनका अभिप्राय क्या था। आज वह सस्कार इतना दृढ होगया है कि अगर कोई अपनी अनावश्यक सफाई पेश करता है या कसम की बात मुह से निकालता है तो मन विद्रोह कर उठता है।

स्वभाव की सरलता, कोमलता और अनुशासन की दृढता के साथ-साथ उनमे विनोदवृत्ति भी कम नही थी। उनकी छोटी लडकी, मेरी सहेली ओम् को यह गुण बहुत विकसित मात्रा मे उत्तराधिकार में मिला है। एक रोज उक्त भ्रमण के सिलसिले मे जब हम बगाल के अभय-आश्रम में थे तो उन्होंने ओम् से कहा—"तू जरा भिखारी का तो अभिनय दिखा" वह भिखारी का पार्ट बहुत अच्छा करती थी, पर उसने उस दिन इस बात को टालना चाहा, लेकिन हम सब लोग उसके पीछे पड गये। हारकर ओम् को हमारी बात माननी पडी। झट वह भीख मागती-सी मेरे पास आई और चुपके-से कान मे कहा—"रमा, जल्दी से मुझे एक तमाचा मार दे। मार, जल्दी कर!" मैं स्थिति समझ ही नही पाई थी, पर ओम् ने जिस आग्रह और

अधिकार से यह कहा, मुझे मानना पडा। मेरा हल्का-सा तमाचा लगना था कि ओम् ने जोर से रोना शुरू कर दिया। मै हक्की-बक्की खडी रह गई। मेरी आखो मे आसू आगये। मै क्या सफाई देती। तमाचा तो मैने मारा ही था। उसका रोना-चीखना देखकर कौन यह मानता कि मैने उसके ही कहने से तमाचा मारा। ताऊजी पडे-पडे सब देख रहे थे और मुस्करा रहे थे। आखिर जब ओम् का रोना-चिल्लाना सुबकियो के स्तर पर आया तो वह बोली—"गरीबो की फरियाद कोई नही सुनता। इस अमीर लडकी ने मुझ भिखारिन को दान तो दिया नहीं, उल्टा तमाचा मार दिया।" अब मेरी समझ में मामला आगया। पर ताऊजी की आलोचना यह रही, "ओम्, ! कुछ बात बनी नही।" खैर, बात तो समाप्त होगई, पर ओम् को जैसे लग गई।

उसी रोज शाम को दिन-छिपे एक सार्वजनिक जलसा होनेवाला था। जलसे में चलने की हम लोग तैयारी कर रहे थे कि ओम् मेरे पास आई और बोली, 'रमा ! तू जरा लालटेन लेकर मेरे साथ चल। मुझे बाथ-रूम जाना है। हम लोग जैसे ही बाथ-रूम पहुचे, वह वही घास पर बैठ गई और जोर से चीख उठी—"हाय ! मुझे बिच्छू ने काट लिया, क्या जाने साप था ! हाय राम ! बड़े जोर की लहर उठ रही है।"

उसे उठाकर कमरे में लाया गया और प्राथमिक उपचार करने की कोशिश की गई, पर उसका रोना बढता ही गया और वह बोलती ही रही—"सारे बदन मे लहर-सी उठ रही है, बड़ा दर्द हो रहा है।" डाक्टर को बुलाने भेजा गया। वह दस-पद्रह मिनट मे आये। ओम् अभी भी दर्द के मारे छटपटा रही थी। डाक्टर को जो सामने देखा तो वह खिलखिलाकर हँस पडी। सब भौंचक रह गये। सार्वजनिक जलसे का समय था। हम लोगो को पन्द्रह मिनट की देरी होगई थी। मेरा मन इस बात से बिल्कुल शकित था कि आज ताऊजी बहुत डाटेंगे, क्योकि वह समय का बडा ध्यान रखते थे। ओम् की यह हालत देखकर ताऊजी पेश्तर इसके कि उससे कुछ कहे, वह झट बोल उठी—"क्यो काकाजी, अब यह एक्टिंग तो सफल रही न ?" ताऊजी भला क्या जवाब देते ! उन्होने ही तो दोपहर मे ओम्

की एक्टिंग पर टीका-टिप्पणी की थी और कहा था कि कुछ बात नही बनी। विनोद के खेल में बेटी ने खिलाडी की हैसियत से उन्हे मात दी थी। उन्होंने मुस्कराकर ओम् की पीठ पर हाथ फेरा और बस इतना ही कहा, "तूने समय का घ्यान नही रखा।"

उनके दृष्टिकोण का सन्तुलन बडा अद्भुत था। उनका प्यार न तो कभी अनुशासन के रास्ते में आडे आया, न अनुशासन कभी इतना एकागी हुआ कि वह परिस्थिति-विशेष की आवश्यकताओ के प्रति आखे बन्द कर लें।

उनके साथ रहनेवाली लडकियो में से कभी किसीने यह महसूस नहीं किया कि कोई भी बात या मन के किसी भी भले-बुरे भाव को उनके सामने सरल रूप में रखना सकोच का कारण हो सकता है। आधुनिक शिक्षा-शास्त्रियों की सूझ और दृष्टि उन्हें बडे सहज रूप मे प्राप्त थी। बडे सुलझे हुए मनोवैज्ञानिक थे वह। बाल-सुलभ जिज्ञासा के सभी प्रश्न पर और व्यक्तित्व के विकास में सामने आनेवाली सभी समस्याए, यहातक कि योन-सबधी प्रश्न भी, वह ऐसे सरल भाव से समझा दिया करते थे, जैसे वह प्रश्न कोई धार्मिक शास्त्र-शका हो।

एक दिन मैं ताऊजी के एक नवयुवक सेक्रेटरी के साथ कार में कही जा रही थी। रास्ते में उन महाशय ने कुछ विशेष स्नेह के साथ मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर अपने माथे से लगा लिया। तबतक उनके द्वारा दी गई नैतिक शिक्षा के आधार पर मैं इतना समझने लगी थी कि इस प्रकार के आचरण में जो विशेष भाव है वह अच्छा नही। मेरे भाव वह ताड गये। इसके पहले कि मैं उन सज्जन से कुछ कहू, वे बोले, "माफ करो, बहन। मेरी कोई बुरी मशा नही थी। अगर्चे मै मानता हू कि मुझे ऐसा नही करना चाहिए था।" उन्हें शका हुई कि मैं ताऊजी से तो यह बात कहूगी ही। वे तरह-तरह से माफी मागने लगे और केवल यह आश्वासन चाहा कि मैं श्री जमनालालजी को यह घटना न बताऊ। पर मैं सोच ही न सकी कि उनसे न कहना कैसे सभव होगा। उन सज्जन से मैंने इतना ही कहा कि मैं इस बारे में सोचूगी। एक दिन तक मेरे मन में बडी उथल-पुथल रही। मैंने सब बात मदालसा को बताई।

उसने कहा, "इसमें सोचने की कुछ बात ही नहीं है। उस व्यक्ति के विषय में काकाजी की धारणा क्या होगी, यह सोचने की तुम्हे जरूरत नही। तुम्हें काकाजी से सब बात फौरन कह देनी चाहिए।" मेरे मन की द्विविधा मिट गई। मैंने ताऊजी से सबकुछ कह दिया। उन्होंने सब सुन लिया और अपनी दो उगलियो से मेरी नाक के उठे हुए हिस्से को पकड़कर दो-तीन बार हिला दिया। उनके प्यार की अभिव्यक्ति इस प्रकार ही हुआ करती थी। फिर मुस्कराकर बस इतना ही कहा—"ठीक है, तू जा। मैं देख लूगा।" मेरे मन में उत्सुकता रही कि आखिर उन व्यक्ति के साथ उन्होंने क्या बर्ताव किया और उसे क्या सजा दी। मुझे बाद मे मदालसा से पता चला कि ताऊजी ने उससे कहा था कि वह एक पत्र मेरे पिताजी को लिखे, जिसमें सारी घटना का उल्लेख करके माफी मागे और इस तरह अपनी भूल का प्रायश्चित्त करे। सेक्रेटरी ने वह पत्र लिखकर ताऊजी को दिया था, किन्तु वह उन्होंने पिताजी के पास भेजा नही। उनका अभिप्राय यही था कि व्यक्ति के मन में सच्चा पश्चाताप उदय हो, किन्तु उसका आत्म-सम्मान सदा के लिए खंड-खंड न होजाय। मुझे यह भी पता चला कि सेक्रेटरी ने स्वय ही जाकर सारी बात उनसे कह दी थी और उक्त प्रकार के प्रायश्चित्त द्वारा उसका मन इतना स्वस्थ होगया कि वह अक्षत आत्मसम्मान के साथ सदा की तरह सरल-सहज बर्ताव करने लगा।

बिना अधिक मिले, बिना अधिक बोले वह कैसे अपने लिए दूसरो के हृदय में श्रद्धा और प्यार प्राप्त कर लेते थे, उनके चरित्र के इस जादू की बात सोचती हू तो दग रह जाती हू। सबसे बडे आश्चर्य की बात तो यह है कि उनके साथ काम करनेवाली और उनके निकट सम्पर्क में आनेवाली हर लड़की के मन में यह पूरा विश्वास था कि सबसे अधिक प्यार वह उसे ही करते हैं।

वे व्यक्तियो के चरित्र का निर्माण स्वयं व्यक्ति की अपनी विवेक-बुद्धि और आत्म-सम्मान की भावना को पुष्ट करके करते थे। सिद्धान्त की बात पर वह अपने से छोटो को भी अपने सम-कक्ष मानते थे और उनके

आग्रह का आदर करत थे।

जब गाधीजी दूसरी गोलमेज-परिषद के बाद बम्बई लौटे, उन दिनो मैं ताऊजी के साथ बम्बई में ही रहती थी और पिकेटिंग आदि मे जोर-शोर से भाग लिया करती थी। पुलिस की अवज्ञा करना मैंने असहयोग का अग मान रखा था। उन्ही दिनो एक बार एक सिपाही ने मुझे कार चलाते देखकर गाडी रोक ली थी। लाइसेस के बारे में पूछा तो मैंने कह दिया, "लाइसेस मेरे पास नही है।" उसने कहा—"अमुक तारीख को अमुक मजिस्ट्रेट के अदालत में हाजिर हो जाना।" जब ताऊजी को इस घटना का पता चला तो उन्होंने कहा—"अदालत मे जाकर अपना अपराध स्वीकार करना होगा, किन्तु अदालत मे रमा नही जायगी, मदालसा जायगी।" हो सकता है, उनके मन में यह भावना रही हो कि यदि इस कारण को लेकर मुझे सजा होगई तो पिताजी के मन को आघात पहुचेगा कि उन्होने मेरे बारे मे सावधानी नही बरती, पर मैंने उनसे अपने मन की शका साफ-साफ कह दी। मैंने कहा—"यदि अदालत मे हाजिर होकर अपने अपराध को मानना नैतिकता है तो उस नैतिकता का यह भी एक अग है कि जिसने अपराध किया है वही व्यक्ति अदालत में जाय।" उन्होंने बिना किसी तर्क-वितर्क के मेरी बात मान ली और बाद मे मैं ही अदालत में हाजिर हुई।

बाद मे जब जीवन की जिम्मेदारिया मेरे ऊपर आई और जब-जब मुझे किसी कठिन समस्या का सामना करना पडा, मैं उनका परामर्श लेती रही। उनकी शिक्षाए सदा ही जीवन के लिए प्रकाश-स्तम्भ बनी रहेगी।

उनकी महानता की बाते सोचती हू तो मेरे जीवन के वे दिन सौभाग्य की आभा से चमक उठते है, जो उनके सम्पर्क में बिताये। मन अनिर्वचनीय कृतज्ञता से गद्गद हो उठता है!

: ८८ :

मैं उनके जाल में कैसे फंसा ?

श्रीमन्नारायण

सितम्बर १९३५ में मैं इंगलैंड से भारत वापस आया। आई सी एस परीक्षा में कुछ नम्बरों से रह गया था। अप्रैल १९३६ में लखनऊ-कांग्रेस की रौनक देखने गया। वहा एक मित्र ने पू० जमनालालजी से परिचय कराया। मिलते ही उन्होंने कहा, "बहुत अच्छा हुआ कि तुम आई सी एस परीक्षा में उत्तीर्ण नही हुए। भगवान् ने तुम्हें बचा लिया। अब तुम बापूजी के काम में लग जाओ।"

जमनालालजी ने मुझे वर्धा आने के लिए निमन्त्रण दिया। उस वक्त मुझे ठीक पता भी नहीं था कि वर्धा कहा है। उन्होंने नक्शा दिखाकर बताया कि नागपुर से ५० मील दूर है और वहातक ग्राड ट्रक एक्सप्रेस सीधी जाती है। किन्तु मुझे वर्धा जाने का कोई विशेष उत्साह नही था। पू० बापूजी एक महान नेता है, महात्मा हैं। मैं उनसे मिलकर क्या करूंगा ? जब जमनालालजी ने देखा कि मैं वर्धा जाने में आना-कानी कर रहा हू तो पूछने लगे, "तुम्हें किन बातो मे दिलचस्पी है ?"

"शिक्षा व साहित्य में।" मैंने उत्तर दिया।

जमनालालजी फौरन बोले, "इसी महीने के अन्त में नागपुर में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन हो रहा है। तुम्हें उसमें तो दिलचस्पी है न ?"

"जीहा, उसमें शामिल होना चाहूंगा।" मैंने कहा, "हिन्दी-साहित्य में रुचि तो रही है। कविताए व लेख भी लिखता रहा हू। किन्तु अभी तक किसी साहित्य-सम्मेलन में शामिल होने का मौका नहीं मिला है।"

इस प्रकार मेरा नागपुर जाना तय होगया। घर जाकर कुछ दिन बाद

मैं वहा के हिन्दी साहित्य-सम्मेलन में शामिल हुआ। अपने 'रोटी का राग' काव्य-सग्रह की कुछ पक्तिया कवि-सम्मेलन में पढी थी। उनकी प्रशसा भी हुई। सम्मेलन खत्म होने के बाद मैं वापस घर जाने की तैयारी करने लगा।

"क्या तुम अब भी यहा से वर्धा न जाना चाहोगे ?" जमनालालजी ने पूछा।

"वर्धा जाकर क्या करूगा ?" मैंने कहा।

"वहा कई सस्थाए है। और पू० बापूजी से मिलना हो जायगा।"

मैं फिर भी चुप ही रहा। जमनालालजी सोचते होंगे कि अजीब लडका है। इसे महात्मा गाधी से परिचय करने की भी इच्छा नही है ! किन्तु वे इतनी आसानी मे मुझे छोडनेवाले नही थे। कहने लगे, "देखो, आज ही शाम को अहिंसा-आश्रम की बहनें सीधी बस से वर्धा जा रही है। तुम्हें ट्रेन से जाने की परेशानी भी उठाने की जरूरत नही है।"

उन्होने बस मे मेरा सामान रखवा दिया और आखिर मैं वर्धा पहुच ही गया। उन दिनो मौसम काफी गर्म था। पवनार में 'ग्राम-सेवा-मडल' की यात्रा हो रही थी। गावो के काफी कार्यकर्ता यात्रा मे शामिल हुए थे। इत्तिफाक से उन्ही दिनो श्री आर्यनायकम्जी व आशाबहन वर्धा आये थे। वे शातिनिकेतन मे बहुत वर्ष शिक्षण का कार्य कर चुके थे और अब पू बापूजी के मार्गदर्शन मे वर्धा में शिक्षण के प्रयोग करने की इच्छा रखते थे। जमनालालजी ने मेरा परिचय श्री आर्यनायकम्जी से कराया। मुझे शिक्षण-कार्य में पूर्ण रुचि तो थी ही। जमनालालजी बोले—

"तुम व आर्यनायकम्जी साथ मिलकर वर्धा मे शिक्षा का काम सभाल सको तो बहुत अच्छा होगा।"

उन दिनो वर्धा मे एक स्कूल चल रहा था, जिसका नाम 'मारवाडी-विद्यालय' था। जमनालालजी इस स्कूल को एक आदर्श शिक्षण-सस्था बनाना चाहते थे।

इन्ही दिनो वर्धा मे पू बापूजी से मिलना हुआ। मैं तो समझता था कि

मुझ-जैसे सामान्य नवयुवक की ओर महात्माजी क्या ध्यान देंगे ! किन्तु उन्होंने पहली बार ही इतनी आत्मीयता व प्रेम से मुझसे बातें कीं कि मैं उनकी ओर अनायास खिंच गया। ऐसा महसूस हुआ, मानो उनसे सदियों का परिचय है। उन्होंने मिलते ही मुझसे पूछा, "अब तुम मेरा काम नहीं करोगे ? "

मैं गद्गद् होगया। मैंने नम्रता से उत्तर दिया, 'बापूजी, क्यों नहीं करूंगा ?"

दूसरे दिन जमनालालजी ने मेरे सामने दो सुझाव रखे। एक तो यह कि मैं मारवाड़ी-विद्यालय की संचालक-समिति—मारवाड़ी-शिक्षा-मंडल—का मन्त्री बन जाऊं और श्री आर्यनायकम्‌जी विद्यालय के आचार्य। दूसरे, मैं अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति का सयुक्त मंत्री बनूं। दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा के मन्त्री श्री सत्यनारायणजी उन दिनों वर्धा में ही थे। उन्हें अ. भा राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति का मन्त्री बनाया गया। मैंने उत्तर दिया, "एक बार तो मैं घर जाऊंगा और पिताजी से सलाह-मशविरा करूंगा। किन्तु मेरा विचार वर्धा आने का हो रहा है, पू बापूजी के आकर्षण से।"

मैं एक-दो दिन बाद वापस घर (मैनपुरी) चला गया। पू पिताजी ने कहा, "अगर पू गांधीजी का व सेठ जमनालालजी का कार्य करने का अवसर मिलता है तो वर्धा एक वर्ष के लिए चले जाओ ! बाद में आगे का सोच लेंगे।" पू० माताजी की भी इजाजत मिल गई। इस प्रकार मैं जून १९३६ में एक वर्ष कार्य करने के खयाल से वर्धा पहुंच गया।

पर मुझे स्वप्न में भी खयाल न था कि वर्धा में ही इतने वर्षों तक काम में लग जाना होगा। पू० बापू के शब्दों में जमनालालजी 'मनुष्यों के मछुवे' थे। मैं भी उनके जाल में फंस गया और बापू के आकर्षण के कारण उसमें उलझता ही गया।

: ८९ :

युवकों के सच्चे सहायक

मदनलाल पित्ती

श्री जमनालालजी हमारे परिवार के बहुत समय से मित्र रहे थे। लेकिन मुझे उनकी सबसे पहली याद आती है सन् १९२१ की, काग्रेस के अहमदाबाद-अधिवेशन के समय की। उस प्रथम भेंट का चित्र मेरे मन पर हमेशा ताजा रहता है, मानो वह घटना कल ही घटी हो। उनके व्यक्तित्व की उस समय मेरी चेतना पर बहुत ही गहरी छाप पडी होगी, इतनी गहरी कि न तो समय और न आयु उनकी स्पष्ट मूर्ति को, जो कि हमेशा मेरे मन मे बनी रही है और बनी रहेगी, मिटाने या धुधला करने मे समर्थ नही हो सकी।

आज भी मै साफ देख सकता हू कि वे शुभ्र खादी पहने काग्रेस-कैम्प में खादी से सुसज्जित अपनी कुटिया के अहाते में चटाई पर बैठे है उनके चारों ओर बहुत-से युवकों और वृद्ध पुरुषो की भीड है। मेरे पिताजी को, जो कि मुझे उस प्रवास मे अपने साथ ले गये थे, देखते ही उन्होंने जिस मुस्कान के साथ उनका अभिवादन किया, मै उसे कभी भूल नही सकता।

इसी काग्रेस के अवसर पर मुझे प्रथम बार गाधीजी के दर्शन का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। पहले तो दूर से ही मैने उन्हे अधिवेशन मे देखा, लेकिन बाद में साबरमती-आश्रम में निकट से देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। जमनालालजी हमें साबरमती के तट पर स्थित उस आश्रम में ले गये थे। मेरेलिए तो ये दोनो ही घटनाए ऐतिहासिक है और चिर-स्मरणीय रहेंगी।

जमनालालजी के व्यक्तित्व का अन्तिम प्रभाव मुझपर वर्धा मे जनवरी १९४२ मे पडा, इस धराधाम से प्रभु द्वारा उनको बुलाये जाने के कुछ ही समय पूर्व। उनका अन्त इतने अकस्मात् और अप्रत्याशित रूप से हुआ कि मेरे कान

हरिद्वार में रेडियो पर उनके अवसान के दुखद समाचार को सुनकर विश्वास ही न कर सके। ऐसा लगा, मानो रेडियो से गलती होगई है, लेकिन जब सचाई का भान हुआ तो मैं स्तब्ध रह गया। मैं अपने जीवन की संकट और आवश्यकता की घड़ियों में उनकी सहानुभूतिपूर्ण समझ और सहायता पर इतना निर्भर रहने लगा था कि उस समय से मुझे ऐसी प्रतीति होने लगी, जसे मैं अनाथ होगया होऊं। एक प्रकार का गहरा आत्मिक सूनापन मुझे अब भी अनुभव होता है। वे न केवल एक मित्र, दार्शनिक और सदा मदद करने के लिए उत्सुक मार्ग-दर्शक ही थे, अपितु वे प्रेरणा के स्रोत और शक्ति के स्तम्भ भी थे।

मुझे यह देखकर हमेशा आश्चर्य होता था कि उन-जैसा व्यस्त व्यक्ति, जिसकी अनगिनत प्रवृत्तिया और काम-धंधे थे, किस प्रकार अपने युवक मित्रों के लिए इतना समय निकाल सकता था। भला उन युवक मित्रो और उनके बीच सामान्य बात क्या हो सकती थी? लेकिन वे युवको को बहुत चाहते थे और शायद उनके बीच वे सबसे अधिक प्रसन्न रहते थे। वे जहा-कही भी होते अथवा कितने ही कामकाज में घिरे होते, युवको को निमन्त्रित करने का कोई भी अवसर नही चूकते थे और उनके लिए कोई-न-कोई समय निकाल ही लेते थे, भले ही वह कार अथवा ट्रेन के प्रवास में क्यो न हो। ज्योंही उन्हें युवको का साथ मिला कि फिर वह और सब बातें दिमाग से निकाल देते थे और उनपर पूरा ध्यान केन्द्रित करते थे। उनका प्रयत्न होता था कि वे उनके आन्तरिक जीवन से परिचित हो और उनकी कठिन समस्याओ को सुनकर उन्हें सुलझाने में सहायक बनें।

बच्चो और युवको के सम्बन्ध में उनकी दो विशेषताओं का यहां उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। एक विशेषता थी—शादी-सम्बन्ध जोड़ने की उनकी शक्ति। किसी भी लड़के या लड़की का पता चला कि वे झट उनके लिए योग्य वर या वधू बता देते थे। उनके सुझाये बहुत-से सम्बन्ध मूर्तरूप धारण कर लेते थे।

उनकी दूसरी विशेषता थी—युवको के कान या नाक पकड़ना। इसकी

पुष्टि बहुत-से भुक्तभोगी कर सकते है। इस प्रकार वे उन लोगो के आन्तरिक व्यक्तित्व के साथ एक प्रकार का सम्पर्क स्थापित करने मे सफल होते थे।

सब जानते है कि वे ब्रिज खेलने के बडे शौकीन थे, लेकिन शायद लोगो को उस दूसरे खेल की जानकारी नही है, जो वे हम-जैसे अपने युवक मित्रो के साथ खेला करते थे। वे इसे बुद्धि-परीक्षा का खेल कहा करते थे। जमनालालजी के इर्द-गिर्द जब कभी भी युवक होते और उनके पास थोडा भी अवकाश होता, वे इस खेल को खेलते कभी अघाते नही थे।

जमनालालजी हरकिसी का दु ख सुनने और उसे हमेशा सलाह और यथा-सम्भव सहायता देने के लिए तत्पर रहते थे, भले ही वह व्यक्ति वृद्ध हो या युवा, सम्पन्न हो या गरीब, पुरुष हो या स्त्री और उनकी वे समस्याए निजी हो या पारिवारिक, सामाजिक हो या नैतिक, आर्थिक हो या भावनात्मक, और भले ही वह प्रश्न पति-पत्नी के बीच का हो या पिता-पुत्र का अथवा कि भाईयो या दूसरे सम्बन्धियो का, हिस्सेदारो या मालिको का। जरूरतमन्द विद्यार्थी की मदद करने में वे कभी नही चूके। उनकी सहायता कभी भी खैरात के रूप में नही थी, बल्कि वे विद्यार्थी के परिवार तथा उसके जीवन मे बराबर रस लेते रहते थे।

जमनालालजी ने इस बात का हमेशा बहुत ही ध्यान और सावधानी रखी कि उनकी सहायता पानवाले को कभी किसी प्रकार तनिक भी हिचक, अपमान अथवा लज्जा अनुभव न हो। यदि किसी विद्यार्थी या जरूरतमन्द आदमी के पास उसका बनाया कोई चित्र या दस्तकारी की वस्तु होती तो वे उचित मूल्य पर अपने मित्रो को कहकर खरीदवा देते। इससे न केवल पानेवाल को सहायता मिलती, अपितु वह आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता भी अनुभव करता। इससे उस व्यक्ति को उस अवमानना अथवा अनादर से मुक्ति मिल जाती, जैसी कि भावुक युवा मस्तिष्क दान स्वीकार करने मे अनुभव करते है। इस तथा दूसरे रूपो मे जमनालालजी सहयोग और बन्धुत्व की भावना से सहायता देते, न कि दया या दान की भावना से प्रेरित होकर।

दूसरे व्यक्तियों के प्रति अपनी महती भावना को प्रदर्शित करनेवाले उनके बहुत-से तरीकों में से यह तो एक है। वस्तुतः सभी महापुरुषों का यह एक सच्चा चिह्न है। जमनालालजी में यह गुण बहुत बड़ी मात्रा में विद्यमान था। हममें से अधिकांश व्यक्ति, जो उनके निकट सम्पर्क में आये, इस बात की पुष्टि कर सकते हैं। जहांतक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो दूसरे व्यक्तियों से सम्बन्धित उनके समस्त कार्यों मे उनके इस गुण से बहुत ही प्रभावित हुआ हू। इससे ज्ञात होता है कि मानवीय व्यक्तित्व के प्रति उनके हृदय में आदर-भाव और मानव-परिवार के प्रति एकत्व की भावना थी।

क्या यह आदर्श की बात नहीं है कि जमनालालजी अपने प्रति रूखा आदर और प्रशसा उत्पन्न करने की अपेक्षा प्रेमपूर्ण आदर प्रेरित करते थे? मेरा विश्वास है कि यदि उनके शत्रु थे तो बहुत थोड़े और वे डाह की अपेक्षा स्वस्थ स्पर्द्धा पैदा करते थे।

अपने लचीले मस्तिष्क के बावजूद कभी-कभी वे ऐसी छाप डालते थे, मानो वे बड़े कठोर हैं, दकियानूसी विचार के हैं। पुरानी पृष्ठभूमि के होते हुए भी आश्चर्य इस बात का है कि उनका दृष्टिकोण आधुनिक और विशाल था। तथाकथित पश्चिमी शिक्षा के अभाव ने वैसे उनके मार्ग में कोई रुकावट नहीं आई, लेकिन शायद आगे चलकर उनकी उन्नति में इससे बाधा पड़ती। शायद वे अपनी मर्यादाओं को जानते थे और इसलिए उनका उन्होंने कभी उल्लघन नहीं किया।

जमनालालजी के दो गुणों में उनके व्यक्तित्व का सार आ जाता है। वे थे उनकी मानवीय भावना और उनकी स्वस्थ सहज-बुद्धि। इन दोनों के अतिरिक्त उनमें ईमानदारी और आध्यात्मिक तथा भौतिक रूप से जरूरत-मन्दों की मदद करने की भावना भी ओतप्रोत थी।

: १० :

उनकी पुण्यस्मृति

रिषभदास रांका

जमनालालजी के विषय में पहली बार लोकमान्य तिलक से सुना। देश के काम में मार्गदर्शन लेने के लिए उनसे सन् १९१९ में मिला था। तब उन्होंने कहा था, "व्यापारियो का सबसे अच्छा मार्गदर्शन जमनालाल बजाज कर सकते है। वे कुछ दिन पहले जब यहा आये थे तब मेरी अध्यक्षता मे उनका सम्मान हुआ था। वैसा सम्मान शायद ही अबतक किसी व्यापारी का हुआ हो। उनके हाथ से देश का बहुत बडा काम होने-वाला है। वे व्यापारी-समाज की कीर्ति को उज्ज्वल करेंगे।"

उस समय तक सेठजी देश के भिन्न-भिन्न प्रकार के काम करनेवाले तिलक, रविबाबू, जगदीशचन्द्र वसु, गाधीजी आदि महान् देशसेवकों को आर्थिक सहायता देते थे। पर जब मैं उनके सपर्क में आया तबतक वे अपने-आपको 'गाधीजी के पाचवे पुत्र' बनाकर उनके कामो में तन-मन-धन से जुट गए थे।

सन् १९२४ में खादी-कार्य से जलगाव आये थे। उन दिनो वे खादी-बोर्ड के अध्यक्ष थे। 'चर्खा-सघ' स्थापित होने के पहले खादी-बोर्ड के द्वारा खादी का काम चलता था। उस समय उन्होंने कार्यकर्ताओं से कहा था, "सच्चा व्यापारी काम शुरू करने के पहले उसमे आनेवाले खतरो और कठिनाइयों को अधिक-से-अधिक गिनता है और होनेवाले लाभ को कम-से-कम। हिरन की शिकार करनेवाला शेर के शिकार की तैयारी रखे तो उसे पछताने के कम मौके आते है। वैसे ही व्यापार की बात मे समझना चाहिए। व्यापारी आश्वासन देने के पहले सोच-विचार लेता है, पर आश्वासन देने पर उसे पूरा ही करता है। खादी का काम एक तरह से व्यापार का ही काम है। इसलिए व्यापारी के आवश्यक गुण कार्यकर्ता मे होने ही चाहिए।"

यह बात केवल कहने के लिए नही कही गई थी। इसपर वह स्वय भी अमल करते थे। ज्यो-ज्यो उनसे सपर्क बढा, मैंने देखा उनकी कथनी और करनी में अन्तर नही है। वे जो कुछ कहते, वैसा करने का ही उनका प्रयास रहता।

मैं जब नया-नया उनके पास आया था, तब दलीले अधिक किया करता था। वे कहते कि महाराष्ट्र में रहकर तू अव्यावहारिक बन गया है, बिना जरूरत की दलीलें किया करता है। सेठजी बार-बार टोकते। मन को अच्छा न लगता। एक दिन मै गभीर होकर उनके पास गया, बोला, "काकाजी, आप बार-बार कहते है कि मैं अव्यावहारिक हू, तो मुझे इजाजत दें। मैं आपके पास बोझ बनकर नहीं रहना चाहता।"

वे हंसकर बोले, "तभी तो कहता हू कि तुम बिल्कुल अव्यावहारिक हो। क्या तुम जानते हो कि कवि भास को सुकवि बनाने के लिए उसके पिता को कितनी गलतफहमी सहनी पडी थी ?"

आगे उन्होंने जो सुनाया, उसका सार यह था—

भास काव्य रचकर राजसभा मे सुनाता। उसके काव्य की प्रशसा होती। उसे पुरस्कार मिलता। पर जब वह पिता के पास जाकर राजसभा की बात सुनाता तो पिता उसके काव्य के दोष बताते। भास उन दोषो को दूरकर निर्दोष काव्य रचने का प्रयत्न करता। एक दिन वह एक उत्कृष्ट काव्य रचकर राजसभा में पहुचा। काव्य सुनकर राजसभा में बडी प्रशसा हुई। राजाभोज ने एक लाख मोहरें पुरस्कार में दी। भास को विश्वास था कि आज पिताजी को सतोष होगा। खुशी-खुशी घर आया। पिता के पास पहुचकर काव्य सुनाया। पिता ने कहा, "ठीक है तुम्हे लाख मोहरें मिली। यह पुरस्कार इसलिए मिला कि तुमसे बढकर अच्छा कोई कवि नहीं है। इस काव्य में भी दोष नहीं, ऐसी बात नहीं।" यह सुनकर भास की खुशी क्षोभ में परिवर्तित होगई। वह गुस्से में वहा से उठकर एकात में जाकर सोचने लगा। उसे अनुभव हुआ कि बाप को उसकी कीर्ति से ईर्ष्या होती है। उसने पिता को मारने का निश्चय किया। रात के समय

वह हाथ में तलवार लेकर पिता को मारने जाने लगा। शरद पूर्णिमा थी। पिता वाटिका में बैठे भास की माता के साथ बात कर रहे थे। वह ठहर-कर बातचीत सुनने लगा।

भास की मा बोली, "आज का चन्द्र-प्रकाश कैसा निष्कलक है!"

पिता ने कहा, "आज का चन्द्र-प्रकाश ठीक आज के भास के काव्य की तरह निष्कलक है।"

"पर यह क्या? जब भास आपके पास आया तब तो आपने उसे काव्य के दोष ही बताए थे?" मा ने विस्मय से पूछा।

"हा, मैं जो उसके दोष बताता हू, वे इसलिए कि वह और भी अच्छा काव्य रचे। जिस दिन मै उसकी प्रशसा करूगा, उस दिन से उसका विकास रुक गया समझो। उसकी उन्नति होती रहे, इसलिए मुझे दोष बताने पडते है।"

यह घटना सुनकर सेठजी बोले, "मै जो तुम्हारे दोष बताता हू, वे इसलिए कि वे तुममें न रहें, तुम निर्दोष बनो। पर तुम यह समझ नही पाते, इसीलिए तो कहता हू कि अव्यावहारिक हो। फिर जो अपने होते है, उन्हीको कहा जाता है। गुस्सा भी निकालना हो तो अपने पर ही निकाला जाता है।"

जिस दिन जमनालालजी ने देह त्यागी उस दिन की बात है। सवेरे कुटिया से घूमते हुए वह बजाजवाडी के अतिथिगृह में आये और बडी देर तक अतिथियो की सार-सभार के विषय मे सूचनाए देते रहे। प गोविंदवल्लभ पत का शाल अतिथिगृह से खो गया था। जब यह बात उन्हें मालूम हुई तो बहुत दु खी हुए। अतिथियों का सामान सुरक्षित रहे, इस विषय में अनेक सूचनाए दी। रहन-सहन, भोजन आदि के विषय मे भी कई बातें कही। भोजन के विषय में कहा, "भोजन सादा, स्वास्थकर और सात्विक हो। सब चीजें ग्रामोद्योग की ही काम में लाई जाय। दूध-घी गाय का ही हो। भोजन में हरी सब्जी और मौसमी फल अवश्य होने चाहिए। दूध और छाछ भी रहें। इसमें कजूसी न हो।"

अतिथि-सेवा की तरह उनका दूसरा प्रिय कार्य था व्यक्तिगत कुश-

दुख में सहायक बनना। सवेरे घूमने का समय बीमारों से मिलने और व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने मे मार्ग-दर्शन करने में बीतता था। उनका मार्ग-दर्शन चाहनेवालो की सख्या हजारो की थी । हर रोज दो-चार व्यक्ति सवेरे घूमते समय साथ रहते थे। यह कार्य भी अन्त तक चलता रहा। अतिम दिन जैसे अतिथिगृह के विषय में बात की, वैसे ही चिकित्सक से भी उनकी व्यक्तिगत समस्याओ के विषय में देर तक बातें करते रहे। चिकित्सक महोदय का इरादा सब काम छोडकर सेवा में लगने का था। प्रश्न महत्वपूर्ण होने से गभीरतापूर्वक काफी समय तक बात चलती रही।

उनका स्वास्थ्य कुछ ऐसा ही चल रहा था। सिर में कई दिनो से दर्द था। जानकीदेवी ने यह देखकर कहा, "आपके सिर में दर्द है, फिर कभी बात कर लेना।"

सेठजी बोले, "तुझे मेरे सिर की चिंता है! इनके तो जीवन का प्रश्न है।" और बातों में लग गए।

अतिथिगृह से जब फलाहार के लिए दूकान पर जाने लगे तो बोले, "राममनोहर लोहिया को किसीको बुलाने भेजो। कुछ सिर भारी होगया है, उसके साथ ताश खेलेंगे।"

मैंने अतिथिगृह के कार्यकर्ता से कहा, 'जाओ, लोहियाजी से कहो कि सेठजी बुला रहे हैं।"

यह सुनते ही हाथ की लकडी हल्के हाथो मारते हुए बोले, "क्यो, 'काकाजी' कहने में क्या शर्म आती है, जो सेठजी कहते हो!"

इसके कुछ ही समय बाद जो न होना था, सो होगया!

: ११ :

उनका उपकार

चिरजीलाल बड़जात्या

सेठ जमनालालजी का सबध मेरे साथ करीब ३५ साल से रहा—सन् १९१५ मे जब मै गोद आया तभी से। उस समय सेठजी जेठमलजी बडजाते फर्म के ट्रस्टी थे और उन्होने ही मुझे जेठमलजी बडजाते के नाम पर गोद लिया था। मै नाजुक स्वभाव का था। भूत-प्रेत, जादू-टोने, मत्र-तत्र आदि पर मेरा अधिक विश्वास था और मै डरता बहुत था। उन्होने मेरे अन्दर से डर निकालने का प्रयत्न किया और १९२३ मे नागपुर-झडा-सत्याग्रह मे जेल भेज दिया। जेल जाने से मुझमे हिम्मत आई और मेरा डरपोकपन जाता रहा।

मै पहले मखमल व रेशम के विलायती कपडे पहना करता था। सेठजी की प्रेरणा से मैने विदेशी वस्त्रो को त्यागकर स्वदेशी को अपनाया और शुद्ध खादी पहनना शुरू किया।

• •• ••

मै पहले बहुत ही कट्टरपथी जैन था, सेठजी की वजह से सुधारक बना और सब धर्मों को समान दृष्टि से देखने लगा। इतना ही नही, विधवा-विवाह, जात-पात तोडना, मरण-भोज बन्द करना, पर्दा-प्रथा का उठाना, आदि-आदि समाजोपयोगी कार्यो के प्रचार में लग गया।

• • ••

नागपुर-काग्रेस की स्वागत-कारिणी के सेठजी अध्यक्ष बने। तबसे मै भी उनकी प्रेरणा से काग्रेस-सगठन मे लग गया। महात्मा गाधी के सन् १९२१ के असहयोग-आन्दोलन में सेठजी ने बहुत काम किया तथा उनकी ही आज्ञा से म भी इस काम में जुट गया।

१९२७ में मैं अमीर से गरीब बन गया। करीब एक लाख रुपये की उधारी अदालत में नालिश न करने से डूब गई। उतना ही रुपया कांग्रेस के प्रचार-कार्य में मैंने अपना निजी खर्च कर दिया। कोई एक लाख का मुझपर कर्ज होगया। मेरे मित्र, कुटुम्बी तथा अन्य सबकी मुझे दिवालिया बनने की सलाह देने लगे, परन्तु सेठजी ने मुझे हिम्मत बधाई और दिवालिया न बनने दिया। मेरी जायदाद बिकवाकर सबका पाई-पाई कर्ज चुकवा दिया। पच्चीस हजार रुपये अपने पास से दिये। यदि मेरा कर्ज न चुकता तो मैं सार्वजनिक सेवा के योग्य न रहता।

•• •• ••

सेठजी की प्रेरणा से १९२७ में हरिजन-आन्दोलन में कुए और मन्दिर खुलवाने के काम में लग गया। उस समय जाति-वालों ने मुझे जात-बाहर कर दिया। मेरी मा जब मन्दिर जाती तो समाज-वाले उन्हें टोकते और कहते कि यह ढेडनी (चमारनी) मन्दिर में आई है। मुझे वे लोग ढेड़ कहकर सम्बोधित करते। सेठजी को यह मालूम हुआ तो उन्होंने मेरी मा को बहुत हिम्मत बधाई तथा एकनाथ, सन्त ज्ञानेश्वर और तुकाराम आदि के नाटक मन्दिर में करवाकर दिखाये।

•• • ••

सेठजी के उपकार की बात कहातक कहूं। मैं अधिक पढ़ा-लिखा नहीं था। पच्चीस रुपये पर भी शायद ही कोई नौकर रखता। सेठजी ने मुझे सौ रुपया मासिक देकर मेरा हौसला बढाया, मुझमें आत्म-विश्वास पैदा किया और व्यावहारिक कार्यों में होशियार बनाकर धीरे-धीरे इस योग्य बना दिया कि मैं अपने पैरो पर अच्छी तरह से खडा हो सकू।

मेरी मा की ७५०० रुपये की सम्पत्ति का उन्होंने एक ट्रस्ट बना दिया था, जिसका मूल्य उनके जीवन-काल में ही ७५००० रुपये होगया। उसी सम्पत्ति से मेरा काम चला।

मुझमें अनेक दोष थे। सेठजी के सत्संग में आने से मेरा जीवन सुधरा।

सेठजी समय-समय पर मुझे अनेक महत्वपूर्ण कार्य करने के लिए

देते रहते थे। श्री राजेन्द्रबाबू की जायदाद सभालने तथा उनके कर्ज को चुकाने की व्यवस्था करने के लिए मुझे जीरादेई तथा छपरा आदि स्थानो पर भेजा। उस समय राजेन्द्रबाबू तथा उनके भाई पर बहुत कर्ज होगया था, जो सेठजी के सहयोग से चुका।

• • • • • •

सेठजी को खेती का बडा शौक था। उन्होने एक कम्पनी खोली, जिसका मुझे मैनेजिंग डाइरेक्टर बनाया। अपने स्वर्गवास के एक वर्ष पहले, जबकि सेठजी ने रेल में बैठना छोड़ दिया था, बैलगाडी में बैठकर दस-बारह गावो का उन्होंने भ्रमण किया और खेती-बाडी और गाय-बैल आदि देखकर बहुत प्रसन्न हुए। मृत्यु के आठ दिन पहले उन्होंने मुझे बुलवाया और कहा कि तुम कमलनयन की नौकरी छोडकर गो-सेवा के कार्य में लग जाओ। परन्तु उन्होंने साथ ही एक कडी शर्त लगाई और वह यह कि घर-बार के साथ मेरा कोई सबध न रहे, मै पैसा कमाना छोड दू और जैन-मुनियो की तरह रहू। मैं कभी हिम्मत करता तो कभी अपनी कमजोरी देखकर डर जाता। एक दिन सेठजी मेरे घर आये और दाल-बाटी की रसोई बनवाई। भोजन कर चुकने के बाद मेरी पत्नी से कहा कि तू चिरजीलाल को मेरे सुपुर्द कर दे और हमेशा के लिए उससे सबध छोड दे। मेरी धर्मपत्नी ने अपनी लाचारी बताई और माफी मागी। उनकी वह बात हमें आज भी याद आ जाती है।

• • • • • •

सेठजी ने सत्य और अहिंसा को व्यवहार में उतारा और अपने जीवन से दूसरो पर असर डाला। मैंने हजारो साधु-सन्तो, मठो और तीर्थों क दर्शन किये हैं, परन्तु मेरा जीवन सेठजी के कारण ही सुधरा और सुखी बना। उन्हीकी प्रेरणा से मैं देश-सेवा के लिए दो बार जेल गया और अनेक सार्वजनिक कार्यों को करने का मुझे अवसर मिला। आज भी जीवन में कभी कोई गलती होने लगती है तो झट उनकी मूर्ति सामने आ खडी होती है और मुझे बचा लेती है।

: ९२ :

मेरे निर्माण में उनका हाथ

शांता रानीवाला

मेरे पिताजी पू सूरजमलजी रुइया के साथ पू जमनालालजी का बहुत घनिष्ट स्नेह-सम्बन्ध था, इसीसे मैं जमनालालजी को 'चाचाजी' कहती आई थी। उनका हमारे परिवार में सदा आना-जाना था, इससे बचपन से ही मुझे उनका परिचय और प्यार मिलने लग गया था।

उस जमाने के मारवाडी-समाज के रिवाज के अनुसार बहुत छोटी उम्र में ही मेरी शादी होगई थी। तब मैंने बारहवें साल में प्रवेश किया ही था। उसके दो साल बाद ही मैं दुःखग्रस्त होगई और घोर निराशा के अधकार में घिरने लगी। उस वक्त चाचाजी ने मुझे सहारा दिया और धीरे-धीरे बहुत स्नेह और मिठास के साथ मेरे जीवन को उपयोगी बनाने का विचार जागृत करने लगे। उन्होंने एक बार मुझसे पूछा—पढने का मन होता है ? मैंने 'हा' कह दिया। यह बात उन्हें अच्छी लगी और उन्होंने मेरी पढाई-लिखाई और अच्छे सस्कार दिलवाने का सतत प्रयत्न किया। कभी मुझे 'वनिता विश्राम' में रक्खा, कभी बापूजी के साबरमती-आश्रम में तो कभी अपने साथ मुसाफिरी में ले गये। काग्रेस के कितने ही महत्वपूर्ण अधिवेशन मैंने उनके साथ देखे। बहनो की अनेक सस्थाए उनके साथ देखी और इस प्रकार अपने जीवन को उपयोगी बनाने की भावना मेरे मन में दृढ होती चली गई। तब चाचाजी ने मुझे ही निमित्त बनाकर, मुझसे भी अधिक दुखी बहनो के जीवन को सार्थक बनाने के लिए वर्धा में 'महिलाश्रम' की स्थापना करवाई। इस सस्था से चाचाजी का अत्यन्त आत्मीयता का सबध रहा। वे स्वय सदा और देश-विदेश के अगणित महापुरुषो और अनुभवी जनो को अक्सर आश्रम में लाकर उनके सत्सग का सुयोग हमें दिलाते रहे। पू बापूजी और विनोबाजी

का स्नेह और पथ-प्रदर्शन आश्रम को बराबर मिलता रहा है, इससे मुझे सदा बहुत सुख, सतोष और उत्साह मिला।

कोई ३०-३२ साल पहले की बात है, चाचाजी अपने पूरे परिवार के साथ गर्मियो में नासिक गये हुए थे। उन्होंने मुझे भी अपने पास बुलवा लिया था। तब भाई रामकृष्ण एकदम गोदी का बच्चा था। चाचाजी की आदत थी कि वे बच्चो के साथ उनके गुण-दोषो की चर्चा भी बडे चाव से किया करते थे। एक बार मेरे हाथ में भी स्लेट-कलम देकर बोले कि तू भी इसपर अपने गुण-दोष लिखकर दिखा और बता कि तुझमें कौन-से गुण-दोष कम है और कौन-से ज्यादा। मुझे पहले तो यह बडा अटपटा लगा, पर फिर कोशिश करके कुछ लिख ही लिया। जहातक मुझे याद है, उन्होंने काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, आलस्य आदि का विश्लेषण करवाया था। विचार करने पर मैंने पाया कि मुझमें लोभ और मोह की मात्रा अधिक है। स्लेट के सहारे अपने चरित्र का चित्र दर्पण की तरह उस समय मेरे सामने आगया। मुझे अपनी इन कमजोरियो की ओर आकर्षित करके उन्होंने मुझे सतत प्रेरणा दी और इस घटना का मेरे मन पर आज तक प्रभाव है, जिससे पू चाचाजी का सतत स्मरण और सहारा आज भी मुझे मिल रहा है, ऐसा महसूस होता है।

: १३ :

सेठजी की उदारता

लक्ष्मण

सेठजी आज इस दुनिया में नही रहे, लेकिन उनके सबध की बहुत-सी घटनाए रह-रहकर याद आती है। एक बार रेवाडी स्टेशन से सेठजी भगवत्‌भक्ति-आश्रम गये । साथ में माताजी (जानकीदेवीजी) तथा नानूभाई आदि नौकर थे । आश्रम मे गरीब मजदूर तालाब खोद रहे थे। सेठजी जाकर उनमें शामिल होगये और उन्होने भी कुछ मिट्टी खोदकर बाहर डाली। हम लोगो ने भी खुदाई की। इसके बाद सेठजी कुए पर गये और अपने हाथ से पानी खीचकर हम लोगो को स्नान कराने लगे। हमने कहा, "आप रहने दीजिए हम स्वय ही पानी खीचकर नहा लेंगे।" लेकिन वे नही माने। उन्होंने कहा, "आज तुम लोगो ने बहुत मेहनत की है, इसलिए मैं ही पानी निकालकर तुम्हें नहलाऊगा।" फिर कुछ देर चुप रहकर बोले—"गरीब घर के अन्दर जो जन्म ले और पैसेवाला बने तो पुण्य कर सकता है और वही धर्मात्मा बन सकता है। लेकिन पैसेवाले के यहा जो जन्म लेता है, वह धर्म नही कर सकता है।"

•

एक बार सेठजी कनखल गये, वहा से ऋषीकेश। माताजी ने कहा कि यहा तो ज्यादा आदमी है नही, सामान कम लाना। मैंने २५-३० आदमियो के लिए दाल-बाटी और चूरमा बनाया। सेठजी ने कहा कि आज तो सब लोग साथ खाना खायगे। नौकर-चाकर आदि सब लोग साथ में भोजन के लिए बैठे। भोजन होगया, फिर भी काफी सामग्री बच गई। असल में हुआ क्या कि सेठजी के डर से नौकरो ने बहुत कम खाया। यदि साथ में खाने न बैठे होते तो कहीं ज्यादा खाते। सेठजी ने यह देखा तो कहा कि तीर्थ में

खाकर दिल साफ हो जाना चाहिए। खाने में संकोच नहीं करना चाहिए।

. . . . . .

नागपुर-सत्याग्रह के समय की बात है। चारों ओर से सत्याग्रही आते थे। सेठजी का कहना था कि उन्हें भरपेट भोजन कराके जेल भेजा जाय। रसोई में १००-१५० आदमी भोजन करते थे। खाने-पीने में कुछ भेद-भाव हो जाता था। जब सेठजी को यह मालूम हुआ तो उन्होंने कहा कि सब लोगों के लिए एक-सा ही भोजन बनना चाहिए। नतीजा यह हुआ कि अमृतसर के चावल आते थे, वे बन्द कर दिये गये। चांदी की थालियां हटा दी गई और सब के लिए एक-सा भोजन बनने और परोसा जाने लगा।

. . . . . .

एक बार सेठजी गोहाटी गये। वहां उनका लोगों ने बड़ा ही शानदार स्वागत किया। उन्हें मानपत्र दिया गया। लौटते समय सेठजी पांच-छः सेर शहद साथ में लाये। एक नौकर ने उसमें आठ आने की चोरी कर ली। सेठजी को जब यह मालूम हुआ तो उन्होंने उस नौकर को बुलाकर कहा, "तुम्हें चोरी नहीं करनी चाहिए थी। अगर खर्च के लिए पैसों की आवश्यकता थी तो मांग लेते।"

. . . . . .

हम लोग वर्धा में बंगले पर रहते थे। आदत कुछ ऐसी पड़ गई थी कि छिपकर बीडी पीते थे, सो तो पीते ही थे, दूध भी उड़ा लिया करते थे। पांच-पांच मन पक्का दूध आता था। हम लोग करते क्या कि उसमें से एक बाल्टी दूध छिपाकर उड़ा जाते। होते-होते यह बात सेठजी को मालूम हुई। उन्होंने हमसे कहा, "चोरी करना बड़ा खराब है, बीडी भी नहीं पीनी चाहिए। हम तुम सबकी पांच-पांच रुपया तनखा बढ़ा देंगे। आइन्दा चोरी न करना।" इसके बाद उन्होंने हुक्म दिया कि सब नौकरों को एक-एक गिलास दूध पीने को दिया जाया करे।

. . . . . .

मैं रसोई का काम करता था। दुकान पर . . नाम का रोकडिया

था। उनने बाईस रुपये की चोरी की। मैंने शिकायत की तो मुनीम ने उल्टे मुझे ही निकाल दिया। मैं सेठजी के पास पहुंचा। उस समय महात्माजी, वल्लभभाई और सेठजी की मीटिंग चल रही थी। मैं सीधा वहीं पहुंचा। सेठजी नाराज हुए, बोले, "तू समय नहीं देखता, मीटिंग में नहीं आना चाहिए था।" मैं रोने लगा। महात्माजी ने कहा, "पहले इसकी बात सुन लो, मीटिंग बाद में हो जायगी।

मैंने रोते हुए सेठजी से कहा "आपके यहां चोरी होती है। मैंने शिकायत की तो मुनीमजी ने मुझे ही निकाल बाहर किया।"

मेरी बात सबने सुनी और तब एक वकील से कहा गया कि वे इस मामले की जांच करें। जांच हुई, बात ठीक निकली। मुझे सौ रुपये इनाम में मिले।

• • • • •

बंगले पर बहुत-से मेहमान आते थे। उनकी रुचि का ध्यान रखा जाता था। सेठजी स्वयं चौके में जाकर देख लिया करते थे। वे अक्सर कहा करते थे कि मेरी खातिरदारी करने की जरूरत नहीं, घर-आये मेहमानों की खातिरदारी किया करो।

जो अधिक भोजन किया करते थे, उनपर सेठजी बहुत प्रसन्न होते थे। एक बार बनारस के तीन-चार पंडे आये। उन्हें भोजन करवाया गया। उस दिन तीस आदमियों का खाना बना था। उन्होंने सब-का-सब समाप्त कर डाला। सेठजी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने प्रत्येक पंडे को पांच-पांच रुपये दक्षिणा में दिये।

: ९४ :

पावन स्मरण

लक्ष्मीनारायण भारतीय

ववई के के ई. एम अस्पताल में मैं खटिया पर पडा था। दो ही रोज हुए थे। आपरेशन हुआ था। भाईसाहव (दामोदरदास मूदडा) की प्रतीक्षा में था। उनके आने में देर होगई थी। अत सोच रहा था कि ऐसा क्यों हुआ। तभी वार्ड में पू काकाजी (जमनालालजी) की भव्य मूर्ति, साथ में मदालसाबहन और भाईसाहव प्रवेश करते दिखाई दिये। कुछ और भी लोग थे। मैं हक्का-वक्का होकर उठने लगा कि वह खटिया के पास आ पहुचे मुझे उठने से रोका और वडे ही स्नेह से तवीयत का हाल पूछा। मैं अभिभूत हो उठा। वह अचानक आये थे और जिस आत्मीयता से उन्होने मेरे साथ व्यवहार किया, वह निस्सदेह हृदय पर गहरा प्रभाव डालनेवाला था।

पोहरी (ग्वालियर) और देवघर (सथाल परगना) में काकाजी ने मुझे पढने के लिए भेजा। मेरे जाने के वाद कभी भाईसाहव के द्वारा, कभी स्वय लिखकर वरावर समाचार पूछते और अपनी अनुभवी सीखो से अनुप्राणित करते। परीक्षा के समय या वाद में उन्होने लिखा—"ये परीक्षाए तो वहुत छोटी हैं, जीवन में आगे तुम्हें वहुत वडी परीक्षाए देनी होगी, जिसकी तैयारी तुम्हें कर लेनी चाहिए।"

दूसरे आपरेशन के समय मैं कुछ चिता-ग्रस्त था। उन्होंने लिखा, "पहले स्वास्थ्य सुधार लो। आगे जिन्दगी पडी है, काम करने के लिए।"

पढाई समाप्त होते-होते लिखा—"जीवन में स्वावलवन अत्यत आवश्यक है। तुमको अपने पैरो खडे होने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।"

वे चाहते थे कि मैं व्यापार में पडू, ताकि भाईसाहव मुक्तमन से हर क्षण

सेवा में लग सकें। पर जब मेरी तैयारी उसके लिए नही देखी तो सेवा के, खासकर हिन्दी के काम के लिए, उन्होंने निरंतर प्रेरित किया।

हैदराबाद-सत्याग्रह के समय मुझे नागपुर-दफ्तर को सभालने की जिम्मेदारी दी गई। बुलेटिन आदि का काम करते-करते मैं उकता गया और मैंने चाहा कि मुझे प्रत्यक्ष क्षेत्र में भेजा जाय। शायद भाईसाहब ने उनसे कहा हो। काकाजी ने मुझे बुलाकर कहा, "जैसा क्षेत्र में जाकर काम करना महत्वपूर्ण है, दफ्तर में रहकर काम करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है और अभी मौका समाप्त थोडे ही होनेवाला है ? बाद में चले जाना।"

उनकी प्रेरणा से मैं फिर उसी काम में लगा रहा। बाद में साम्प्रदायिक तत्वो के घुस आने से सत्याग्रह स्थगित कर देना पडा और मौका मिला ही नही, पर काकाजी की ही प्रेरणा थी, जिसने मुझे दुखी नही बनाया। इसके लिए फिर छोटे नही, बडे क्षेत्र में उनका आश्वासन काम आया।

छोटी-छोटी बातो में भी वे बडी सूक्ष्मता से व्यवहार-ज्ञान सिखाते रहते थे। एक समय भाईसाहब ने पत्र लिखा और दस्तखत के लिए उनके पास रखा। उसमें एक वाक्य ऐसा था कि उससे पत्र-व्यवहार और बढता। काकाजी ने वह अश काट दिया और उसी समय उनसे कहा, "उनके पत्र का उत्तर तो हमने दे दिया है। लेकिन इस अंश के रखने से फिर पत्र-व्यवहार बढाने के लिए हम कारण दे देते हैं। गैरजरूरी चीज नही होनी चाहिए।"

एक बार महिलाश्रम में एक व्याख्यान में उन्होंने बताया, "व्यापारी-वृत्ति कैसी होनी चाहिए।" हमने सोचा—यहा लड़कियो के शिक्षण में व्यापार की बातो का क्या प्रयोजन ? लेकिन उन्होंने बडे सुन्दर ढग से बताया कि किस तरह व्यावहारिकता की सिखावन जीवन में काम आती है। मुझे तबका उनका एक वाक्य आज भी याद है—

"व्यापारी हमेशा बुरे-से-बुरे घटना-क्रम के लिए तैयार रहता है, परतु उम्मीद वह अच्छे-से-अच्छे घटना-क्रम के लिए रखता है। इसी तरह हमें हर व्यवहार में, परिणाम कैसा भी हो, उसके लिए तैयारी रखनी चाहिए और आशा व प्रयत्न अच्छे का ही करना चाहिए।"

: १५ :

अनाथ हो गया !

मार्तण्ड उपाध्याय

आज से कोई बत्तीस बरस पहले की बात है, जब पहले-पहलजमनालाल-जी को देखा था। मेरी उम्र तब पद्रह बरस की रही होगी। मारवाडी अग्रवाल महासभा के अधिवेशन मे भाग लेने वे इन्दौर आये थे। कोई दो-ढाई बरस पहले ही भाईसाहब 'हिन्दी नवजीवन' में काम करने चले गये। भाईसाहब ने चिट्ठी लिखकर हमें सूचित किया था कि सेठ श्री जमनालालजी बजाज इन्दौर आ रहे है। उनसे मिलने का प्रयत्न करना। भाईसाहब ने बता रखा था कि सेठजी की प्रेरणा से महात्माजी ने 'हिन्दी नवजीवन' निकाला था। बहुत बडे और पैसेवाले आदमी है और गाधीजी के आन्दोलन के बहुत बडे सहायक है। वह असहयोग का जमाना था। सरकार का आतक था। इन्दौर एक देशी रियासत थी। अत उनसे कैसे और कहा मिला जाय, यह कुछ समझ में नही आ रहा था। तभी एक दिन घर का पता खोजता हुआ अग्रवाल महा-सभा का एक स्वयसेवक आया और कह गया कि जमनालालजी बजाज ने हरिभाऊजी के पिताजी और छोटे भाई को मिलने बुलाया है। पिताजी शायद बाहर गये थे। मै अपने एक पडौसी को साथ लेकर बताये हुए स्थान पर मिलने गया। किसी बडे आदमी से मिलने का मेरा यह पहला ही मौका था। अदर से मन में धुकधुकी हो रही थी कि कैसे मिलेंगे—कैसे बात करेंगे ? कही बोलने में—अदब-कायदे में—गलती होगई तो वे क्या कहेंगे ? और भाईसाहब को किसी गलती का पता चल गया तो बहुत डाटेंगे। इसी असमजस में उनके निवास-स्थान पर पहुचा।

सुबह के कोई आठ-नौ बजे का समय होगा। बरामदे में वे एक चटाई

पर पलथी मारे बैठे थे और अपने हाथ में डाली बना रखे थे। गौर वर्ण, लंबा-तगड़ा डील-डौल, खादी की मोटी धोती और कुरता पहने। सूचना भिजवाई गई तो फौरन उन्होंने अपने पास बुला लिया। मैंने बड़े अदब और कायदे से झुककर सलाम किया। रियासती स्कूल में बड़े-बड़े सरकारी अफसरों को इसी तरह सलाम करते देखा था। सोचा, बड़े आदमी हैं, इसी तरह सलाम करना ठीक रहेगा। उन्होंने देखा, मुस्कराकर पास बुलाया और सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। पूछा—

"तुम हरिभाऊजी के भाई हो ?"

"जीहां।"

"कौन-सी क्लास में पढ़ते हो ?"

"आठवीं की परीक्षा इसी गरमी में दूंगा।"

"कहांतक पढ़ने का इरादा है ?"

"बी ए करूंगा।"

"उसके बाद ?"

. .. .

"आगे क्या करने का विचार है ?"

"मैंने तो कुछ सोचा नहीं है। भाईसाहब जानें।"

"सरकारी स्कूल में पढ़ना अच्छा लगता है ?"

.. .

इस प्रकार कोई दस-पंद्रह मिनट तक वे बातें करते रहे। कईएक बातें पूछीं—घर की, स्वास्थ्य की, खर्चे की, मकान की, आदि-आदि। लेकिन उनकी बातचीत, उनके व्यवहार में इतनी आत्मीयता और घरेलूपन था कि यह मालूम ही नहीं पड़ रहा था कि किसी बहुत बड़े आदमी से बात कर रहा हूं। मेरा डर भाग गया। ऐसा लगने लगा, मानो वह कोई अपने घर के ही बुजुर्ग हैं।

.. . .

इसके बाद ही मेरी सरकारी स्कूल की पढ़ाई खत्म होगई और साबर-

मती-आश्रम में भाईसाहब के पास पढने और रहने चला गया। वहा दूर से उन्हे कई बार देखा, लेकिन फिर भी अधिक सपर्क नही आया। बाद में जब भाईसाहब खादी व रचनात्मक कार्य करने अजमेर चले गये तब कुछ सपर्क आया। अक्सर वे जब वर्धा से आते तो अपने बगले पर मिलने बुला लेते। बातचीत करते, पढाई-लिखाई के हाल पूछते, तकलीफ या कोई कमी-जरूरत तो नहीं है, यह पूछते।

एक बार पूरा हुलिया बताकर श्री हीरालालजी शास्त्री को लेनें के लिए अहमदाबाद स्टेशन भेजा। बिना किसी गलती के ठीक से उनको लेकर आश्रम आगया तो पीठ ठोककर शाबासी दी और कहा कि तुम ठीक काम करते हो।

लेकिन इसके बाद ही उनके एक दूसरे रूप के दर्शन हुए।

नए सत्र के प्रारभ में आश्रम के विद्यार्थियो के खेलो आदि के प्रदर्शन हो रहे थे। महात्माजी के साथ वे भी खेल देखने आये। मै 'पोल जप'—बास के सहारे ऊची कूद—में भाग ले रहा था। खेल खत्म होने पर उन्होने मुझे अपने पास बुलाया और बोले—"तुम्हारी आखें कमजोर मालूम होती हैं। जाकर डाक्टर को दिखा आओ।" यह कहकर उन्होने अपने हाथ से डा देसाई के नाम पत्र लिखकर दे दिया। मै जाकर आख दिखा आया। डाक्टर ने आखें काफी कमजोर बताई और चश्मा लेने को कहा। दूसरे दिन चश्मा लेने जाने लगा तो मेरे एक सहपाठी ने, जो जमनालालजी का रिश्ते-दार भी था, मुझसे कहा कि आख तो मेरी भी खराब है। चलो, मै भी तुम्हारे साथ चलकर दिखा आता हू। मैं उसे साथ ले गया और डाक्टर से उसका परिचय करा दिया। आख दिखाकर तथा चश्मा लेकर दोनो चले आये। चश्मे के मेरे जितने दाम उस सहपाठी ने भी दिये।

तीन-चार दिन के बाद हम दोनो को जमनालालजी ने बुलाया। सदा के-जैसा उनका चेहरा प्रसन्न नही दीख रहा था। मै ठिठका। कुछ डर-सा लगा। आते ही पूछा—"तुम गुलाब (साथी का नाम यही था) को लेकर डाक्टर के यहा आख दिखाने गये थे?"

"जीहां।"

"किसके कहने से तुम उन्हें ले गये ?"

"गुलाबभाई ने कहा कि मेरी आंख भी खराब है, तो चलकर दिखा आते हैं।"

"यह तो ठीक, लेकिन डाक्टर को आंख दिखाने की फीस क्या दी ?"

"जी, आपने चिट्ठी दी थी, सो उन्होंने फीस नहीं ली।"

"चिट्ठी तो मैंने तुम्हारे लिए दी थी। गुलाब के लिए थोड़े दी थी ! गुलाब ने आंख दिखाई तो उसकी फीस तो देनी चाहिए थी !"

"मैंने गुलाबभाई का परिचय दिया, तो डाक्टर ने फीस मांगी ही नहीं।"

"यह दूसरी गलती है। तब तो डाक्टर को पैसा देना और जरूरी हो जाता है। तुम मेरे नाम का उपयोग किसी गरीब विद्यार्थी के लिए कर लेते तो भी कोई बात नहीं थी। गुलाब तो वैसे भी फीस के पैसे दे सकता है। और मेरा संबंध आ जाने पर तो और भी देना जरूरी हो जाता है। गुलाब को या मुझे बिना फीस दिये डाक्टर से काम लेने का क्या हक है ? तुमने यह नहीं सोचा ?" झिड़की-भरे स्वर में उन्होंने पूछा।

"मैंने इतना ज्यादा नहीं सोचा था।" मैंने डरते-डरते जवाब दिया, बल्कि मुझे रुलाई-सी आगई। मुझे उदास देखकर उन्होंने अपने पास बैठा लिया और बातचीत का विषय बदल दिया। कुछ नाश्ता करवाया और फिर जाने दिया।

उनकी लताड़ और प्यार का यह पहला अनुभव था। कई दिनों तक मन में बड़ी बेचैनी रही।

इसके बाद बहुत दिन बीत गये। अधिक संपर्क का मौका जल्दी नहीं आया, यों मालूम होता रहता था कि वह मेरी पढ़ाई-लिखाई में दिलचस्पी लेते रहते हैं।

इन्हीं दिनों (सन् १९२५ में) श्री जमनालालजी की प्रेरणा से अजमेर में 'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना हो चुकी थी। उसके संचालन का काम

भाईसाहब के जिम्मे रहा था। अजमेर में रहते हुए मैं 'मडल' की किताबों की तैयारी और छपाई मे दिलचस्पी लेने लगा। अजमेर की जलवायु अनुकूल होने के कारण मं अजमेर में ही भाई सा० के साथ रहकर निजी तौर पर अपनी पढाई करने लगा था। जमनालालजी बीच-बीच में अजमेर आते, 'मडल' का काम-काज देखते और मुझे भी पढने और समय निकालकर 'मडल' के काम मे दिलचस्पी लेने को ललचाते रहते।

इसी बीच धूमधाम के साथ 'मडल' से 'त्यागभूमि' मासिक पत्रिका निकली, जिसे पडित जवाहरलालजी नेहरू ने 'हिन्दी की सबसे अच्छी पत्रिका' बताया। मैं पढता था और 'मडल' की पुस्तको की छपाई, पत्रिका के विज्ञापन-प्रचार तथा पुस्तको के प्रूफ देखने आदि में अपना समय देता रहता था।

•• • ••

फिर सन् १९३० का आदोलन आया। सब लोग जेल चले गये। अजमेर में सरकारी आतक और दमन अधिक था। 'मडल' के प्रमुख कार्यकर्ताओ के व सचालको के जेल चले जाने के कारण उसका काम मुझे देखने को कहा गया। इतनी बडी जिम्मेदारी के योग्य तो मैं उस समय नही था, लेकिन परिस्थिति और जिम्मेदारी सबको योग्य बना देती है। सन् १९३० के अत में ऐसी स्थिति आगई कि 'मडल' के मामले में जमनालालजी से सलाह लेना जरूरी होगया। वे नासिक-जेल में थे। श्री जाजूजी व श्री केशवदेवजी नेवटिया के साथ मैंने नासिक-जेल में उनके दर्शन किये। वहा और सब तो उनसे बातो में लग गये, मैं पीछे चुपचाप खडा होगया। उन सबको मेरी अपेक्षा और बहुत जरूरी बातें करनी थी। पर एकदम उनकी ओर से ख्याल हटाकर जमनालालजी ने मुझे आगे बुलाया। अजमेर के सब लोगो के हाल-चाल और आने का कारण पूछा। मै अपने प्रश्न पहले से ही लिखकर ले गया था। कागज मैंने उनके हाथ में रख दिये। वे बोले—"यह तूने अच्छा किया। अपना और मेरा दोनो का वक्त बचा लिया। ऐसा लगता है, तू अब काम सीखने लगा है। अच्छी तरह मन लगाकर काम करना।

सबको वन्दे कहना। तेरे सवालो के जवाब मैं लिखकर भिजवा दूगा।"

इतने बडे लोगो की चल रही चर्चा के बीच में मुझे बुलाकर इतनी बात-चीत उन्होने कर ली। मैं उनके समय के महत्व को और लोगो के काम के महत्व को भली प्रकार जानता था। श्री केशवदेवजी ने कह दिया था कि हमें बातें बहुत ज्यादा करनी है। तुम इस तैयारी से आना कि समय न मिले तो बिना मिले ही लौटना पडेगा। सो मैं तो निराश वापस लौटने को तैयार था, लेकिन उन्होने अकल्पित रूप से जिस प्रकार बातें कर ली उससे मै बहुत ही प्रभावित हुआ।

•

इसके बाद दो-तीन साल और बीत गये। सन् १९३४ में 'मडल' के दिल्ली स्थानातरित होने का प्रश्न उपस्थित हुआ। इसी सिलसिले में यह बात सामने आई कि 'मडल' के कार्य में अपना जीवन देनेवाला कोई आदमी तैयार हो तभी स्थानातरित करना ठीक होगा। पारिवारिक तथा अन्य कठिनाइयो के कारण दिल्ली जाने को मेरा मन नही हो रहा था। मैंने अपनी उलझन भाईजी (अब जमनालालजी को सब इसी नाम से पुकारने लगे थे) के सामने रखी। उन्होने लिखा

"मडल के लिए एक ऐसे सेवक की, जो अपना सारा जीवन उसमें लगा दे, आवश्यकता तो है ही। यदि तुम्हें यह काम पसद हो और तुम्हें इस काम में उत्साह भी हो और तुम यह निश्चय कर लो कि अपना जीवन इसमें लगा दोगे तो मुझे तो पूरा सतोष होगा। तुम 'मडल' द्वारा भी देश और समाज की काफी सेवा कर सकते हो। इसमें मुझे कोई शका नही है।

इस प्रकार उनका उत्साह व लालच दिलाना व्यर्थ नही गया। मै एक बरस के लिए दिल्ली आया, लेकिन फिर दिल्ली का ही होगया।

मै 'मडल' के काम से कलकत्ते गया हुआ था। जमनालालजी भी अपने कान का इलाज कराने वहा गये हुए थे। मुझे मालूम हुआ था कि वे वहा है, पर सकोच के मारे उनसे मिलने नही गया। लेकिन उनको पता चल गया तो

जहा वे ठहरते थे वहा बुलाया। दो दिन अपने साथ ठहराया। घर के, मंडल के, परिवार के हालचाल पूछे। शाम को अपनी डाक लिखाने व निपटाने को बैठाया। कोई दो घटे उनके सेक्रेटरी का काम किया। मन में डर बना रहा कि चिट्ठी में कोई गलत बात न लिख जाऊ। एक-एक पत्र वे मुझे देते और सक्षेप में बता देते कि यह उत्तर देना है। मैंने बहुत डरते-डरते सारे पत्र लिखे। तीन-चार पत्रो में उन्होंने सुधार किये। एक-दो जगह भाषा व भावो की गलतिया बताई। उस रोज रात को अपनी डायरी मे उन्होंने लिखा—"आज मार्तण्ड आया। उसे पत्र लिखाये। ठीक लिखता है।"

ऐसी थी उनकी काम सिखाने की पद्धति।

जब दिल्ली आते तो पिताजी को व मुझे मिलने बुलाते, घर-गिरिस्ती के हालचाल पूछते—"कहा रहते हो ? मकान कैसा है ? कितना मिलता है ? खर्च चल जाता है ? कुछ बचाते हो ? कर्ज तो नही है ?"

थोडा ही समय इन बातो में लगता। लेकिन मिलने के बाद यह अनुभव होता कि एक सरपरस्त हमारी फिक्र करने को है। अपना काम तो कर्तव्य करना है। खोज-खबर लेनेवाले भाईजी मौजूद है। तब घर-गिरिस्ती की चिंता क्या करनी ?

• •

एक बार की बात है। मैं वर्धा गया था। अपने बारे में उनसे जरूरी बातें करनी थी, लेकिन उनके कान में दर्द था। महात्माजी ने उनको इलाज के लिए बबई जाने को कहा और वे गाडी मे बैठकर स्टेशन रवाना हो रहे थे। मैं मिलने पहुचा तो बस नमस्कार ही कर पाया।

मैं समझा कि अब तो भाईजी के बबई से लौटने पर ही उनसे बातें हो सकेंगी, लेकिन तीसरे दिन ही बबई से उनका पत्र मिला। लिखा था—"तेरे बारे में मैंने दिल्ली में पारसनाथजी से बातें कर ली है। काम तेरे को खूब मन लगाकर करना ही पडेगा। तेरे काम से उनको सतोष मालूम हुआ।"

इससे मेरा पूरा समाधान तो नही हुआ, पर इतनी जल्दी, इतने जरूरी काम और बीमारी के समय भी एक छोटे-से कार्यकर्ता के दु ख-दर्द और घरू

बातो का उनको कितना खयाल रहता था, इसका यह नमूना है।

• •

इस प्रकार जब कभी किसी काम में उनकी मदद की जरूरत होती तो उनको लिख देता या मिलने पर कहता तो तुरत उस काम को करते। 'मडल' से 'कांग्रेस का इतिहास' को हिन्दी में प्रकाशित कराने के लिए पूज्य राजेंद्र-बाबू से उन्होने मेरा परिचय कराया। पडित जवाहरलालजी की 'मेरी कहानी' मडल से प्रकाशित करने के लिए उन्होने पडितजी से मिलाया। श्री नेताजी सुभाष बोस की आत्मकथा के बारे में भी उनसे उन्होने बातचीत चलाई थी। उसके बाद एक पत्र में उन्होने लिखा—

"श्री सुभाषबाबू से वर्धा में बातें हुई थी। अभी तक आत्मकथा वे पूरी लिख नही पाये हैं। हिन्दी के लिए वे 'सस्ता साहित्य मडल' का ध्यान रखेंगे। तुम अब इस सबध में उनको सीधे लिख सकते हो।"

अतिम दिनो में वे सारी सार्वजनिक सस्थाओ से अलग होगये थे। मुझे उनकी इस मानसिक वृत्ति का पता नही था। मैं 'मडल' के ही अपने काम में लगा रहता था। वही मेरी छोटी-सी दुनिया थी। उन्होने 'मडल' का कार्यालय दिल्ली से वर्धा लाने का सुझाव दिया। मैंने कई कारणो से उसका विरोध किया। उसके बाद ही 'मडल' से भी उन्होने त्यागपत्र दे दिया। मैंने समझा कि उन्होने मेरे विरोध से असतुष्ट होकर त्यागपत्र दिया है। मैंने उनको लिखा कि इस वजह से आपको त्यागपत्र नही देना चाहिए। मैं वर्धा आने को तैयार हू। लेकिन उन्होने लिखा—

"मेरे त्यागपत्र का तुमने जो मतलब निकाला, वह बिल्कुल गलत है। वर्तमान हालत में 'मडल' का कार्यालय दिल्ली से वर्धा लाने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। मैं इस बात को पसद भी नही करता। 'मडल' का कुल काम जब वहापर सुचारु रूप से चल रहा है, तब उसको वहा से हटाकर और जगह स्थापित करना उचित नही होगा। मेरा नाम 'मंडल' में नही भी रहे तो भी तुम समय-समय पर जैसे वर्तमान में पूछते रहते हो वैसे पूछ सकते हो।

मुझे अपनी भूल का बड़ा पछतावा रहा कि उनके मन को मैंने गलत समझा।"

•• •• ••

इस प्रकार बराबर उनसे उत्साह और प्रोत्साहन मिलता रहा। उन्होंने यह महसूस नहीं होने दिया कि वे स्वय तो बहुत बडे और बुजुर्ग है और मैं एक छोटा-सा कार्यकर्ता हू। अपने बडे परिवार का एक सदस्य मानकर उसी प्रकार काम सिखाते और आगे बढ़ाते गये। मिलने पर भी और पत्रो में भी कामकाज की छोटी-छोटी-सी बात पर ध्यान रखते, गलतिया बताते और सुधरवाते। मन में यह निश्चितता रहती कि गलतिया सुधारनेवाली, रास्ता दिखानेवाली, दु ख-दर्द सुननेवाली और उनको दूर करनेवाली एक हस्ती मौजूद है।

११ फरवरी को दफ्तर में काम कर रहा था। 'हिन्दुस्तान' अखबार से श्रीशकरलालजी वर्मा आये और बोले, "टेलीप्रिंटर पर खबर आई है कि जमनालालजी का देहात होगया।"

सुनकर बड़ा धक्का लगा। थोडी देर तक तो समझ में नही आया कि क्या होगया। वे बीमार नही थे। अचानक ऐसा कैसे होगया? जब कुछ समय बीता तो पहला खयाल मन में यह आया—"भाईजी के चले जाने से अब मेरी और मेरे काम की ऐसी खैर-खबर कौन लेगा? दु ख-दर्द की कौन पूछेगा? मैं तो अनाथ होगया!"

और पद्रह बरस बाद आज भी वही विचार मन में रह-रहकर उठते रहते है।

: १६ :

चलते-फिरते विश्व-विद्यालय

मदालसा अग्रवाल

हम भाई-बहन छोटे थे। एक बार मामाजी ने बहुत आग्रह से हमारे लिए जरी-मखमल के खूब बढ़िया-बढ़िया कपड़े बनवाये। जिन्हें देख-पहनकर हम बड़े खुश होने लगे। कुछ ही दिनों बाद वर्धा के गांधी चौक में विदेशी वस्त्रों की होली का बड़ा भारी आयोजन हुआ।

पू. काकाजी के स्वदेश-हित के विचारों से उस समय पहली बार मा ने हमें परिचित कराया, ऐसी याद आती है। तब काकाजी तो घर पर थे नहीं। महात्मा गांधीजी को साथ लेकर आनेवाले थे शायद। और उनके आने के पहले घर से विदेशी वस्त्रों की जड़-मूल से सफाई हो जाने की मा ने कोशिश की। न जाने किस प्रकार क्या-क्या बातें समझाकर हम बच्चों को भी अपने बढ़िया नए-नए कपड़े उतारकर, दौड़कर 'होली' में होम देने को मा ने हमें इतना उत्साहित कर दिया कि विदेशी वस्त्रों की जलती हुई गगनचुम्बी ज्वालाओं को देखना ही मानो हमारे लिए बड़े आनन्द-मंगल का अवसर बन गया। पू. काकाजी का प्रथम प्रभाव पू. मा की 'निष्ठा' के द्वारा हमें प्राप्त हुआ। 'काकाजी' याने अपने देश की भलाई का विचार करनेवाले कोई बहुत भले बड़े आदमी हों, ऐसा उनका परिचय मन में प्रतिष्ठित होता गया। तबसे सदा काकाजी को तो हमने 'चलना मुसाफिर ही पाता है मंजिल और मुकाम रे' .. के रूप में ही सतत अधिक पहचाना।

काकाजी बच्चों को बहुत प्यार करते थे। बौद्धिक व्यायाम के कई खेल हमारे साथ खेलते थे। परिवार के सब लोगों के गुण-दोषों के लिए कई बार बच्चों से भी अलग-अलग मार्क लगवाया करते थे।

काकाजी के साथ रेलगाड़ी में मुसाफिरी करना हमें खूब अच्छा लगता

था। उस वक्त थर्ड क्लास के लम्बे डिब्बो में सामान्य जनो के साथ अपनी मा, काकाजी, भाई-बहन, मेहमान, मत्री, सेवक आदि सबको अनेक घटो तक एकसाथ खाते-पीते हँसते-खेलते, सोते-बैठते, और बातचीत करते देखकर बडा ही आनन्द आता था, मानो सारे देश और दुनिया का राज ही हमे मिल जाता था। जब काकाजी घर पर होते तब तो मा भी हमे उनके साथ ज्यादा बोलने-बैठने नही देती थी। कहती कि उनको काम करने दो, आराम करने दो, उनका समय न बिगाडो, तग न करो, आदि आदि, पर सफर में वे भी ज्यादा रोकती-टोकती न थी। बल्कि हमे काकाजी के साथ खेलते-बोलते देखकर उन्हे भी मन-ही-मन बहुत सुख-सतोप मिलता होगा।

काकाजी के साथ सफर में हमें बहुत-सी जीवनोपयोगी बाते सीखने-देखने को मिल जाया करती थी। नए-नए मुसाफिरो से कैसे बात करना, परिचय करना, सबके साथ पारिवारिक रूप से घुल-मिलकर कैसे खेलना, जाना, अदब रखना, थोडी-सी जगह में सामान कैसे लगाना, ये सब बाते वे हमे समझाते थे। दिन-रात सतत मुश्किल-भरी थर्ड क्लास की मुसाफिरी करते हुए भी सफाई का काकाजी बहुत ध्यान रखते थे। हाथ धोने तथा बरतन साफ करने के लिए रेलवे के नियमो का कठोरता से पालन करते और करवाते थे। रेलवे अधिकारियो से भी पालन करवाने की सावधानी रखते थे। कही कोई अन्याय होते देखते तो तुरन्त सावधान हो जाते और साकल खीचना, या स्टेशन-मास्टर से कुछ कहना, या केन्द्रीय विभाग से कुछ लिखा-पढी करनी होती तो तत्काल कार्रवाई करते या करवाते थे।

टाइम टेबल देखना, कुली तथा टिकट आदि के नम्बर नोट करना, आदि कितनी ही बाते काकाजी हमसे करवाया करते थे। कोई मधुर कठ से गानेवाला, छोटी-सी बीन या सितार बजाकर गीत सुनानेवाला बालक या वृद्ध दीख पडता तो बडे प्रेम से उसे पास बुलाकर बिठा लेते थे, उसके गीत हमे सुनवाते, उसका सुख-दुख खुद सुनते और फिर उसके सच्चे शुभ-चिन्तक या पथदर्शक बनकर उसे जो कुछ सलाह या सहायता देनी होती, सो चुपचाप दे दिया करते थे। उसका नाम-पता नोट करना होता तो कर लेते थे।

गर्मियों में अक्सर कहीं ठंडे पहाड़ों पर या समुद्र-किनारों पर जाया करते, तब परिवार और सुपरिचितों में से काफी छोटे-बड़े साथी-मित्रों को साथ ले लिया करते थे। हँसी-खुशी की मुसाफिरी पूरी कर, मुकाम पर पहुँचते ही, सबके ठहरने-रहने का बन्दोबस्त करवाकर स्वयं हाथ में लाठी थामकर, कभी किसीको साथ लेकर, या अकेले ही 'पूछताछ' करने निकल पड़ते थे। सबसे पहले पोस्ट आफिस का पता लगाते, तार-चिट्ठी और अखबारों के आने-जाने का समय जान लेते। दूधवालों के घर जाकर ग्वालों की और गायों की पहचान कर लेते। धोबीवाला, फलवाला कौन अच्छा ईमानदार है, यह पता लगाते, सब्जी का बाजार देखने जाते, भाव पूछ-पूछकर नमूने की सब्जियां खरीदवा लाते। नाज-भात की दूकान और दूकानदारों से पहचान कर लेते। किराये के मकान देख लेने के बाद बिकाऊ जमीन और बंगलों को देखना और उनकी उपयोगिता को सोचना काकाजी को बहुत पसन्द था। इसीलिए शायद हमें हर साल नई-नई जगह जाने-देखने का सुअवसर सदा मिलता रहा।

आबू, शिमला, नैनीताल, भुवाली, अल्मोड़ा, सिंहगढ़, चिंचवड, पूना, चित्रकूट, जुहू, वर्सोवा आदि स्थानों में काकाजी के साथ गर्मियों के दिनों में रहने और नित-नए कार्यक्रम बनाने के संस्मरण मन को सदा बहुत प्रसन्नता और प्रोत्साहन देते रहते हैं।

काकाजी के जीवन का अधिकांश समय समूचे देश में बार-बार भ्रमण करते हुए ही बीता। सफर से लौटकर आने के समान ही घर से काकाजी का जाना भी हम बच्चों के लिए आनंद और उत्कंठा का विषय होता था, क्योंकि 'अब आ तो गये ही हैं, यह बात तो पूरी होगई, उनका प्यार, आशीर्वाद, जानकारी जो मिलनी थी वह तो मिल ही चुकी है, अब तो दो-चार दिन में फिर, कहां जायेंगे, कब जायेंगे, वह कैसी जगह होगी, वहां क्या होगा, रास्ते में या वहां से पत्र लिखेंगे, या फिर कब आयेंगे', ऐसी अनेक उत्कंठाएं काकाजी के आने के साथ जुड़ी हुई होती थीं। इसलिए काकाजी के आते ही हम पूछने लग जाते थे कि अब आप कब जायेंगे, कहां जायेंगे आदि। इस तरह भिन्न-भिन्न अनुभवों की कल्पना का आनंद हम लेने लगते थे और काकाजी

के साथ मुसाफिरी करने की आतुरता मन मे जुडती जाती थी।

सन् १९३४-३५ की वात है। पू० कमला नेहरू भुवाली मे स्वास्थ्य-लाभ करने के लिए गई हुई थी। पू० पडितजी उस समय अल्मोडा-जेल में थे। पू० काकाजी के साथ उन दिनो हम सबको भुवाली जाकर रहने का मौका मिला। पू० पतजी का घर देखा। नौकुचिया ताल तक जाकर आये, खूब सैर हुई। वहा से अल्मोडा करीब ८०-८५ मील होगा। काकाजी ने पैदल जाना तय किया । २०-२५ लोगो का सघ जुड गया । श्री काटजूसाहब, श्री रामनरेशजी त्रिपाठी, श्री सुशीला नैयर आदि भी टोली मे थे। सोने, खाने, खेलने आदि का आवश्यक सामान साथ था। घोडे-खच्चर आदि का प्रबध किया हुआ था।

हिमालय की घटादार घाटियो के हरे-भरे वनो में से छायादार पथो पर उतरते-चढते, दौडते-बैठते, चलना-खेलना बहुत याद आता है। काकाजी एक हाथ में लाठी थामे आहिस्ते-आहिस्ते सुदृढ गति से सदा एक-सी चाल चला करते थे, पर हम शरारती बच्चो को इतना धीरज कहा ? हम सोचते-चलो, दौडकर आगे निकल जाय, फिर कही पेडो की छाह में बैठकर कुछ खेलेंगे, पढेंगे या सुन्दर सुहावने झरने के किनारे पानी मे पैर लटकाकर बैठेंगे और मजे से गप्प लडायगे, या कुछ शरारत करने की सोचेंगे। यो योजना बनाकर हम आगे चल पडते। रास्ते मे तरह-तरह के छोटे-बडे घाट-घाटी के पेडो के साथ लुकते-छिपते, आख-मिचौनी खेलते, आगे बढते जाने में हमारा बडा ही मन-बहलाव होता था। कभी बुजुर्गों के आगे, कभी पीछे, कभी छिपकर, कभी शर्त्त लगाकर चलने चलाने मे ऐसा मन लगता, मानो दिनभर के लिए सारे जगल का राज ही हमे मिल गया हो। पर शाम को जब मुकाम पर पहुचते तो मालूम होता कि काकाजी सबसे पहले वहा पहुच चुके हैं और एक-एक बालक, युवक, सेवक और साथियो की आराम से राह देख रहे है। यह देखकर मन-ही-मन हम बडे शर्मिन्दा होते। रोम-रोम मे समाई हुई भूख में जो कुछ खाने-पीने को मिल जाता, खा-पीकर बुजुर्गों से कविता, कथा, कहानी सुनते-सुनते नीद की गोद में मस्त होकर सो जाया करते थे।

इस तरह काकाजी के साथ किसी भी प्रकार की यात्रा करना याने मानव-जीवन के सर्वांगीण विकास का एक चलता-फिरता विश्वविद्यालय ही होता था, जहा पृथ्वी और आकाश के बीच फैली हुई प्रकृति की गोद मे, फूलते-फलते हुए मानव-जीवन के सौंदर्य का आनद लूटने को हमें मिलता था।

काकाजी का गृह-जीवन तो मानो एक नित-नए अतिथि-सत्कार की सुखद प्रयोगशाला की हुआ करती थी, जहा देशहित के विविध विचार, प्रचार, योजना आदि की चर्चाएं और देशव्यापी कार्यक्रमों की मनोहर मालाए गथी जाती थी और मानव-मदिर की सजावट के साधन जुटाये जाते थे। गगा-जमना के पावन तट पर प्रतिष्ठित प्रयाग के प्रसिद्ध पुनीत सगम की तरह गाधी-जमनालाल के स्नेहमय सगम के पवित्र मनोहर सस्मरण आज 'गाधी-ज्ञान-मदिर' के रूप में वर्धा के वजाजवाडी के वगले (विश्व के अतिथिगृह) के सामने सुशोभित होते देख मन प्रसन्न होता है और यही अभिलाषा जागृत होती है कि यह 'गाधी-ज्ञान-मदिर' गगा-माता के परम पावन निर्मल जल-प्रवाह की तरह, वर्धा आने-जानेवाले मानवो के लिए, सर्वजनों के सर्वोदयकारी सस्मरणो द्वारा नित-नई प्रेरणा देनेवाला 'मगल-मदिर' वना रहे।

वापूजी के प्रति काकाजी का आत्मसमर्पण वडा अनोखा और अनुपम था। कौन किसपर अधिक श्रद्धा या प्रेम करता है, इसकी मानो पिता-पुत्र में होड-सी लगी रहती थी।

सन् १९४२ फरवरी ११ तारीख को काकाजी ने अपने थके हुए जर्जर शरीर को साप की केंचुली की तरह त्याग दिया। जीवन-काल में सतत प्रवास करनेवाले ने मृत्यु के पूर्व ६ महीने सव तरह के वाहनो और मुसाफिरी को तिलाजलि दे दी थी, वह उनकी चिर प्रवास की पूर्व तैयारी ही सिद्ध हो गई।

सन् १९४६-४७ में, विभाजन के कुछ दिन पूर्व, पटना में पू० वापूजी की निकट सेवा मे १० दिन रहने का मुझे अचानक सुअवसर मिला था।

तब एक दिन बगीचे में टहलते हुए मैंने बापूजी से पूछा, "बापूजी, मुझे समझाइए कि व्यवहार की सत्यता का स्वरूप क्या है ? काकाजी जीवन-काल में जब कही से आते या कही दो-चार दिनो के लिए भी जाते थे तो एक-एक परिचित, बूढे, बुजुर्ग, बराबरीवाले और बालको की याद करके उनसे मिलते, प्यार करते और सब तरह की जानकारी ले देकर, कुशल-मगल पूछकर, आया-जाया करते थे, पर जब चिर-प्रवास के लिए जाना पडा तो आपतक से मिले बगैर चुपचाप कैसे चले गये ?"

बापू ने जो विचार मुझे समझाया, उसका सार इस प्रकार मेरे ध्यान में रहा है—

"भौतिक जीवन मनुष्य के लिए सतत प्रगति के पथ पर आगे बढने के लिए पुरुपार्थपूर्वक प्रयत्न करने का कर्मक्षेत्र है। इसमें व्यक्ति को सदा सावधान होकर अपनी साधना को सफल करना होता है, जबकि 'मरण' जीवन-साधना का एक फलित या परिणाम है। वह बाह्य प्रयत्न या व्यवहार के लिए मानो एक पूर्ण-विराम है। या समझो कि जीवन-व्यवहार, यह आत्मिक गुणो के विकास की साधना है और 'मरण' उस साधना का समर्पण है तथा हमारे लिए चिर विश्राम पानेवाले व्यक्ति के सद्गुणो का सतत स्मरण करने का सुअवसर है।" आदि-आदि।

किन्तु हम सगुण के स्नेहियो के लिए बडी कठिन है यह निर्गुण-अव्यक्त के गुणो की उपासना और समाधान।

•• • ••

परमधाम (वर्धा) में बापू के पावन-स्मरणो की प्रेरणा देनेवाला स्मृति-स्तंभ आज सुशोभित है और काकाजी के गो-सेवा-कार्य व योजनाओ का स्मरण दिलानेवाला गोमुखी-कुड गो-सेवा के प्रति प्रेम और श्रद्धा जागृत करता है।

इस प्रकार इन दो महान सहयोगियो की सेवामय जीवन-यात्रा से मरण-यात्रा अधिक समर्पण रूप और सहयोगिनी बन गई है।

उनके सस्मरण से हम सब सदा आत्मिक श्रद्धा और प्रेरणा ग्रहण करते रहें।

: १७ :

काकाजी की शीतल छाया

रामकृष्ण बजाज

छुटपन से ही जबसे मैंने होश सभाला, घर का वातावरण आश्रम का-सा था। बचपन के चार-पाच साल साबरमती-आश्रम में गुजरे। उसके बाद सब लोग वर्धा आगये। बापूजी का प्रभाव काकाजी पर तो पूरा-पूरा था ही, धीरे-धीरे सारे परिवार पर भी फैलता गया। काकाजी का आग्रह था कि बच्चो को अच्छे-से-अच्छे सस्कार व राष्ट्रीय वृत्ति की शिक्षा मिलनी चाहिए। ऐसी शिक्षा उस समय के कालेजो या स्कूलो में मिलनी सभव नही थी। इसलिए भाई कमलनयन को उन्होने गुजरात विद्यापीठ में काकासाहब कालेलकर की सरक्षता में पढने भेजा, बहन मदालसा को विनोबाजी को सौंपा और ओम् को पहले साबरमती, फिर कन्याश्रम वर्धा में रखा।

जब मेरी उम्र पढने-लिखने योग्य हुई तब वही सवाल उठा कि मुझे कहां भेजा जाय। काकाजी की सबसे ज्यादा इच्छा यह थी कि मैं विनोबाजी के पास पढू, लेकिन उसकी सुविधा नहीं हुई। काकासाहब आदि से वे बराबर पूछते रहे कि मेरी शिक्षा कहा हो। सबकी सलाह से वह जिम्मेदारी उन्होंने नाना आठवले को सौंपी। काकाजी भी मानते थे कि बच्चो की शिक्षा किसी सस्कारी गुरुजन के अधीन हो तो भविष्य में बच्चो और स्वय परिवार के लिए हितकर होगा। सिर्फ स्कूली पढाई में क्या धरा है।

सन १९३६-३७ में विभिन्न प्रान्तो में राष्ट्रीय सरकारें कायम हुई। काकाजी को अग्रेज सरकार ने १७-१८ वर्ष की उम्र में ही 'रायबहादुरी' की पदवी दी थी और आनरेरी मेजिस्ट्रेट भी बनाया था। उस समय वर्धा में शहर से थोड़ी दूर पर काफी जमीन पडी हुई थी, वह सरकार ने शिक्षण-सस्थाओ के लिए उनको दे दी। काकाजी ने उस जमीन में मकान आदि बनवाये

और वहा राष्ट्रीय शिक्षा का काम होने लगा। सरकार को यह बात खटकी और उसने जोर दिया कि पिताजी उस जमीन पर किसी प्रकार की राष्ट्रीय सस्थाओ का काम न करें, पर पिताजी इस बात को कैसे मान सकते थे! यद्यपि उस जमीन मे मकानात बन गये थे तथापि पिताजी ने सरकार से साफ-साफ कह दिया कि वह चाहे तो जमीन वापस ले ले, वे तो उसपर इसी तरह की सस्थाए चलायगे। १९३०-३१ के आन्दोलन में सरकार ने सारे मकानात जब्त कर लिये और सस्थाए बन्द कर दी। धीरे-धीरे जब वे सस्थाए मुक्त होने लगी तो राष्ट्रीय विचारो के बालको की पढाई का सवाल फिर सामने आया। उसे सुलझाने के लिए उन्होने 'मारवाडी शिक्षा मडल' के अतर्गत 'नवभारत विद्यालय' की स्थापना की और उसमें मुझे भरती करा दिया।

विद्यालय की ओर से एक विद्यार्थी-गृह चलता था। यद्यपि हम सब वर्धा में रहते थे, तथापि काकाजी चाहते थे कि बच्चो को सब तरह के अनुभव मिलें, वे स्वावलबी हो और कडे-से-कडे जीवन के अभ्यस्त हो। इसलिए उन्होने मुझे इस विद्यार्थी-गृह में भरती कर दिया। इस विद्यार्थी-गृह के व्यवस्थापक श्री भिडे गुरुजी थे। भिडे गुरुजी के विचार शुरू से ही कुछ हिन्दू महासभा के अनुकूल थे, लेकिन वे अपने कार्य में बडे दक्ष थे। इसलिए यद्यपि यह सस्था पिताजी की देखरेख में थी, तथापि उन्होने राजनैतिक मतभेद की परवा न करते हुए उनके अन्य गुणो का पूरा लाभ उठाया। हम लोगो को उनके बहुत कडे अनुशासन में रहना पडा।

मुझे बचपन से ही खेल-कूद में बहुत रस था। हम लोगो ने फुटबाल, वाली-बॉल, हॉकी, क्रिकेट आदि खेलो के लिए एक छोटा-सा क्लब शुरू किया। बाद में यह क्लब काफी बढ गया और 'घनचक्कर क्लब' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। काकाजी को काम से बहुत कम फुरसत मिलती थी, फिर भी छोटे-छोटे बच्चो के प्रति स्वाभाविक प्रेम की वजह से वह इस क्लब के कार्य मे भी बराबर रस लेते रहे। कई बार उन्होने मुझसे कहा कि तुम्हारे साथ में कोई पढने में बहुत होशियार लडका हो या किसी भी खेल में बहुत उस्ताद

हो तो बताना। उसकी आगे की पढाई की व्यवस्था करने तथा खेल-कूद में और अधिक दक्षता प्राप्त करने की सुविधा देने पर विचार करेंगे। उनकी बडी इच्छा थी कि वर्धा के बच्चो मे से कोई भी आगे चलकर दुनिया में किसी भी क्षेत्र मे नाम कमावे। बच्चो के साथ वे जब भी खेलते, बराबरी का नाता रखते। हम लोगो पर न कोई अनुचित दबाव डालते, न किसी तरह की जबरदस्ती करते। हम लोगो के भविष्य का निर्णय हम लोगो की सलाह से करते। कभी दिल बहलाने के लिए मेहमानो के साथ हम लोगो को भी ताश, शतरज आदि खेलने के लिए बुला लेते। एक दिन की बात है कि हम लोग ब्रिज खेल रहे थे। मै उस समय बहुत छोटा था। खेलते-खेलते पिताजी ने कोई पत्ता भूल से चल दिया, बाद में वे उसे दुरुस्त करना चाहते थे। अपने बाल-स्वभाव के कारण मै कह बैठा, "काकाजी तो रोते है।" मेरा आशय यह था कि वह चाल बदलते है, लेकिन मैने जो भाषा इस्तेमाल की उसका अर्थ कुछ और ही होता है। काकाजी को बुरा लगा, फिर भी उन्होंने उस समय तो कुछ नही कहा, बाद में मुझे बुलाकर समझाया कि इस तरह से अपने बडो के साथ व्यवहार नही किया जाता। उनको शायद यह भी लगा होगा कि मेरी सगत स्कूल के कुछ ऐसे लडको के साथ है, जो अच्छे सस्कारवाले नही है। उन्होंने बडी बारीकी तथा सावधानी से इसकी तलाशी ली। अपनी व्यस्तता के कारण हम लोगो की तरफ ध्यान देने के लिए उन्हें कम ही समय मिल पाता था, फिर भी थोडे समय में ही वे हम लोगो के लिए बहुत-कुछ करने का प्रयत्न करते थे।

स्कूल-कालेजी शिक्षा के साथ-साथ अन्य अनुभव भी मिलते रहें, इसका वे बराबर खयाल रखते थे। मै मुश्किल से १५-१६ वर्ष का रहा होऊगा कि दिवाली की छुट्टियो में मेरी ही उम्र के एक दोस्त के साथ उन्होने मुझे दक्षिण में घूमने के लिए भेज दिया। हम लोग पन्द्रह दिन के भीतर सारे दक्षिण में करीब २० स्थानो में घूमे और बहुत कम खर्च में सैर करके लौट आये। इस तरह से घूमने में उस समय जो मजा आया और जो अनुभव मिले, उसकी याद आज भी ताजा है। अनुभव के साथ-साथ हौसला भी बढा।

इसके बाद गर्मियो की लम्बी छुट्टी में उन्होंने एक शिक्षक के साथ मुझे लंका भेज दिया। वहा मेरी पढाई चलती रही। साथ ही नई-नई जगहें देखने व घूमने से अनुभव भी प्राप्त होता रहा।

इसी बीच १९३४ मे बबई में काग्रेस का सालाना अधिवेशन होना तय हुआ। राजेन्द्रबाबू उसके अध्यक्ष थे। वैसे तो काकाजी हर काग्रेस के जलसे में नियमित रूप से जाया करते थे, लेकिन इस बार कान में बहुत पीडा होने के कारण डाक्टरो की सलाह से वे काग्रेस में शामिल नही हो रहे थे। घर का और भी कोई नही जा रहा था। रात-दिन काग्रेस की प्रवृत्तियो के बीच मे रहने तथा राष्ट्रीय वातावरण एव नेताओ से मिलने-जुलने के कारण हम लोगो का दिल उत्साह से भरा रहता था। मैं उस समय कुल ११ वर्ष का था। मैने जिद पकड ली कि कोई जाय या न जाय, मैं तो काग्रेस में जाऊगा ही। लोगो ने समझाया कि तुम बहुत छोटे हो, बबई की इतनी बडी भीड में कहा जाओगे, मगर मै न माना। आखिर काकाजी ने स्कूल के एक दोस्त के साथ मुझे बबई भेज दिया। हम दोनो के साथ न कोई बडी उम्र का आदमी भेजा, न नौकर और हमसे कहा कि तुम लोग बबई मे अपने मकान में न रहकर काग्रेस के कैंप में रहना और नए-नए अनुभव प्राप्त करना।

व्यक्तिगत सत्याग्रह-आन्दोलन के सिलसिले में जब काकाजी को गिर-फ्तार किया गया उस समय मै मैट्रिक की परीक्षा देनेवाला था। सारे वाता-वरण में गर्मी थी और हम भी सत्याग्रह के काम में बडे उत्साह से, जो कुछ कर सकते थे, करते थे। काकाजी को जब गिरफ्तार करके जेल ले जाया जा रहा था तो मैने उनसे कहा कि आपसे अब न जाने कब मिलना होगा, लेकिन मेरे मन मे सत्याग्रह-आन्दोलन मे भाग लेकर जेल जाने की बात है। आपकी इजाजत चाहता हू। उनके लिए यह अनपेक्षित बात थी, क्योंकि यह प्रस्ताव उनके पास पहली ही बार इस तरह से एकाएक रखा गया था। उस समय उन-को गिरफ्तार करके ले जाया जा रहा था, शाति से बैठकर सोचने का तो समय ही कहा था! मेरी उम्र १६ वर्ष की रही होगी, इसलिए उनको चिंता तो हुई, लेकिन फिर भी मुझे लगा कि जैसे मेरी इस तैयारी से उनके दिल में

बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने एक सच्चे सिपाही की भांति कहा—"तुम्हारी उम्र छोटी है, फिर भी इस बारे में तुम्हें बापूजी से पूछना चाहिए। दो-तीन महीने में तुम मैट्रिक की परीक्षा दे लो। तब बापूजी तुमको इजाजत दें तो तुम जरूर जेल जा सकते हो। मेरी तरफ से तुम्हें इजाजत है।" अधिक बात करने का समय नहीं था, लेकिन उतने से में ही उन्होंने अपनी स्पष्ट राय दे दी।

घर के करीब-करीब और सब लोग तो जेल हो आये थे, मैं नहीं गया था। इसलिए मेरे मन में एक तरह का डर लगा रहता था कि कहीं ऐसा न हो कि मुझे जेल जाने का मौका ही न मिले और स्वराज मिल जाय। इसलिए मैट्रिक की परीक्षा खत्म होते ही मैं बापूजी के पास पहुंचा और अपनी बात कही। उन्होंने कहा—"अठारह वर्ष के नीचे मैं किसीको भी इजाजत नहीं देता हूं। तुमको भी कैसे दूं?" मैंने दो-तीन दिन तक बहुत आग्रह किया तो उन्होंने सेवाग्राम में रोककर सब तरह से मेरी कड़ी परीक्षा ली और तब सत्याग्रह करने की अपवादस्वरूप इजाजत दी। मेरी खुशी का ठिकाना न रहा।

सत्याग्रह करने पर एक विचित्र समस्या उठ खड़ी हुई। छोटी उम्र की वजह से पहले तो सरकार पकड़ती ही नहीं थी। यदि पकड़ती भी तो जुर्माना करके छोड़ देती। मुझे बड़ा बुरा लगता, क्योंकि मुझे तो किसी तरह से जेल जाना था। आखिर जब मैं बराबर सत्याग्रह करता रहा तो सरकार को सजा देनी पड़ी। यह मेरेलिए बड़े सद्भाग्य और खुशी की बात थी। गिरफ्तारी के बाद सरकार ने मुझे नागपुर-जेल में भेज दिया जहां पिताजी, और विनोबाजी आदि भी थे।

काकाजी अनुशासन कितना मानते थे, इसका मुझे जेल के अन्दर बराबर दर्शन होता रहा। वहां जाते ही उन्होंने मुझे समझाया कि तुमने सत्याग्रह किया है तो तुम्हारा अलग व्यक्तित्व शुरू हो रहा है। तुम्हारे लिए अब सिर्फ मेरे ही अनुशासन में रहना और मेरी ही बात के अनुसार चलना जरूरी नहीं है। जहांतक घरेलू, पारिवारिक व व्यापारिक बातों का संबंध है, तुम्हें

मेरी बात माननी चाहिए, लेकिन राजनैतिक बातो में तुम्हें बापूजी और विनोबाजी की सलाह से चलना चाहिए। विनोबाजी को तो पहला सत्याग्रही चुना गया है। इसलिए यदि उनकी और मेरी राय में अतर हो जाय तो तुम्हें मेरी नही, बल्कि उनकी बात का अनुसरण करना चाहिए।

जेल में प्रथम श्रेणी के लोग बहुत कम थे। काकाजी को द्वितीय श्रेणी के लोगो के साथ रखा गया था। मुझे भी उन्हीके साथ एक अलग कमरे में रहने की इजाजत मिल गई थी।

एक बार एक प्रथम श्रेणी के कैदी के लिए बाहर से कुछ आम आये। उनमे से उन्होंने कुछ पिताजी तथा मेरेलिए भेज दिये। पिताजी प्रथम श्रेणी के कैदी थे, फिर भी द्वितीय श्रेणीवालो के साथ रहते थे। इसलिए द्वितीय श्रेणी के लोगो को जो सुविधाए थीं, उन्हीको लेते थे। उन्होंने वे आम रखने से इन्कार कर दिया। उन भाई ने कहा—"आप न सही, राम तो खा सकता है।" पिताजी ने कहा, "राम कैसे खा सकता है ? वह तो द्वितीय श्रेणी का कैदी है। वह तो तभी खा सकता है जबकि जेलर की विशेष इजाजत ली जाय।" जब जेलर से उन सज्जन ने पूछा तो जेलर को ताज्जुब हुआ कि इसमें पूछने की बात ही क्या थी। जेल के नियमो का अधिक-से-अधिक ध्यानपूर्वक एवं आग्रहपूर्वक पालन करने की ओर उनका विशेष ध्यान रहता था। जेल-अधिकारियो,साथी राजनैतिक कैदियो तथा सामान्य कैदियो से उनका बड़ा मीठा सबध होगया था।

वर्धा (बजाजवाडी) में, जहा हम लोग रहते थे, मेहमानो का तांता लगा रहता था। कभी वर्किंग कमेटी की मीटिंग, तो कभी चर्खा-सघ की, कभी एक कान्फ्रेंस तो कभी दूसरी। मीटिंग न होती तो भी बापूजी और काकाजी से मिलने के लिए आनेवाले बराबर आते रहते। जो लोग वर्धा आते, हमारे साथ ही ठहरते। हम लोगो के रहने के कमरे भी आवश्यकता पड़ने पर छिन जाते। उससे असुविधा तो होती ही, साथ ही पढाई में दिक्कत होती। लेकिन चारा क्या था ? जब हम देखते कि काकाजी के खुद के रहने के कमरे मे भी किसी अन्य व्यक्ति को ठहरा दिया गया है तो हम लोगो की जबान

अपने-आप बन्द हो जाती।

काकाजी का विचार था कि मेहमानों के साथ रहने से हमको जो शिक्षा मिलेगी वह अन्य सब शिक्षाओं से ऊची होगी। वे मेहमानों के आदर-सत्कार का पूरा खयाल रखते। अतिथि-सत्कार की भावना उनमें कूट-कूट-कर भरी थी, यहांतक कि किसी भी छोटे या बड़े अतिथि को कुछ असुविधा होती तो उनके दिल को चोट लगती। घर के सारे लोगों को मेहमानों की देखभाल करते देखकर उनको हार्दिक खुशी होती थी। वे जब वर्धा रहते तो शायद ही कभी ऐसा होता कि २०-२५ आदमियों से छोटी पगत जीमने बैठती। यदि कभी कोई बाहर का न होता तो उनको खाने में आनन्द ही न आता। बजाजवाडी में भोजन के लिए पगत बैठती तो उसकी भी एक अजीब शान होती। खूब रौनक रहती। बड़े-से-बड़े नेता और छोटे-से-छोटे कार्य-कर्ता सब एक ही पगत में बराब री से बैठकर खाना खाते। क्या मजाल कि किसी तरह का भेदभाव होजाय। सारा वातावरण प्रेम और आत्मीयता से भरा रहता।

एक बार एक धनी-मानी सज्जन बजाजवाडी में आये। वहीं ठहरे। देश के बड़े-बड़े नेता वहा आते थे और बड़े प्रेम, नम्रता तथा सादगी से रहते थे। इसलिए इन महानुभाव की अकड तथा रोब और बातचीत में मुझे कुछ अभिमान दिखाई दिया, जो मुझे बहुत पसन्द न आया। मैंने काकाजी से कहा तो उन्होंने समझाया कि हरएक का अपना-अपना तरीका होता है। ये इतने धनी-मानी इस तरह से यहा आकर रहते हैं, यही इनके लिए काफी है। तुमको दूसरो के स्वभाव से क्या मतलब ? तुमको तो सबसे मीठा सम्बन्ध बनाना चाहिए। इनसे मीठा सम्बन्ध रहेगा तो तुम्हारे भविष्य की दृष्टि से भी अच्छा है। भावी जीवन में यदि तुम व्यापारिक क्षेत्र में जाओगे तो भी तुम्हें उनके सपर्क में आना होगा और सार्वजनिक काम करोगे तब भी सार्व-जनिक कार्य के लिए धन-सग्रह में इनकी मदद मिलेगी। इस तरह से उनकी सलाह में नीतिमत्ता के साथ-साथ व्यावहारिक चतुराई भी समाविष्ट रहती थी।

उस जमाने में मध्य-प्रदेश में कामर्स कालेज की बड़ी कमी थी। काकाजी ने सोचा—वर्धा में कोई कालेज नहीं है, 'शिक्षा मंडल' के अन्तर्गत एक कामर्स कालेज खोल दिया जाय तो उससे आसपास के विद्यार्थियों को सुविधा हो जायगी। उन्होंने एक प्रतिष्ठित उद्योगपति से इसके लिए एक लाख रुपये देने का वादा करा लिया और कालेज खोलने की जोर-शोर से तैयारी होगई। पया आगया, किन्तु जब लिखा-पढ़ी का समय आया तो उन उद्योगपति ने कुछ शर्तें रखीं, जो काकाजी को पसन्द न आईं। वह सज्जन अपनी शर्तों पर अड़े रहे, परन्तु काकाजी ने कहा, "मैं इन शर्तों पर पैसा न लूंगा।" और उन्होंने उनको पये लौटा दिये। कालेज के उद्घाटन का समय नजदीक आ रहा था। संचालकों ने पूछा, "अब क्या होगा?"

काकाजी ने विश्वास के साथ उत्तर दिया—"तुम लोग निश्चिंत रहो। अपने कार्य और कालेज के उद्घाटन के कार्यक्रम में कुछ भी ढील न करो। पैसों का बन्दोबस्त कहीं-न-कहीं से हो जायगा।"

उन्हीं दिनों काकाजी का बंबई आना हुआ और वे इस सिलसिले में श्री गोविन्दरामजी सेक्सरिया से मिले, सारी परिस्थिति उन्हें समझाई और कहा कि इस काम के लिए एक लाख रुपये की अपेक्षा है। गोविन्दरामजी ने तुरन्त इस बात को स्वीकार कर लिया।

काकाजी को खुशी हुई कि उनका एक बोझा उतरा, लेकिन साथ ही उनको लगा कि उन्होंने जरा गलती कर दी। एक लाख के लिए ही क्यों कहा, अधिक के लिए कहते तो शायद अधिक भी मिल जाता। बनिये तो वे पूरे थे ही। उन्होंने बात पलटी और सेक्सरियाजी से कहा कि एक लाख तो शुरुआत का है। काम को बढ़ाने के लिए कुछ और रुपयों की जरूरत पड़ेगी।

सामनेवाला भी कम बनिया नहीं था। उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया—आप एक लाख के अलावा जितने रुपये इकट्ठे करेंगे उतने ही मैं और दे दूंगा। काकाजी ने अपनी तरफ से पच्चीस हजार देने को कहा, और यों उनसे २५ हजार और ले लिये। एक बनिये ने सोचा कि मैंने २५ हजार

देकर ५० हजार पा लिये और कालेज के लिए उतनी जिम्मेदारी कम हुई, दूसरे ने सोचा, कालेज तो मेरे नाम से होगा ही। मैंने सवा लाख देकर डेढ लाख पा लिये।

काकाजी के जीवन पर किसी विशेष कथन का प्रभाव था तो रामदास के इस कथन का—बोले तैसा चाले (त्याची वदावें पाउलें)। मैं छोटा था, उस समय राष्ट्रीय नेताओ के सदेश और हस्ताक्षर लेने का मुझे बडा शौक था। सभी बडे लोग वर्धा आते रहते थे, उनके तो मिल गये। एक बार काकाजी के पास भी पहुचा। उन्होंने उपरोक्त सन्देश मुझे लिख दिया। उसका उनके दिल पर गहरा असर था। इसलिए वे जब कोई भी बात सार्वजनिक या व्यक्तिगत रूप में कहते तो खयाल करते कि पहले उसे अपने जीवन में और अपने कुटुब के जीवन में अपना लें।

सार्वजनिक कामो में और लोगो की चिन्ताए तथा कठिनाइया सुलझाने में काकाजी रात-दिन व्यस्त रहते थे। उन दिनो मैं बच्चा ही था, इसलिए उनके काम का महत्व आक नही पाता था। अब जबकि उनके पत्र-व्यवहार तथा डायरियो आदि के सम्पादन का काम करता हू तो उनके कार्य की विशालता और व्यापकता का कुछ अदाज होता है। उनका दिल हरएक व्यक्ति के लिए, जो उनके सपर्क में आता था, प्रेम से लबालब भरा रहता। सार्वजनिक काम में लगे व्यक्तियो की व्यक्तिगत चिन्ताए दूर करने की उन्हें हमेशा फिक्र रहती। हम लोगो का कई बार पिताजी से मिलना व शाति से बात तक करना कठिन हो जाता। कई बार ऐसे मौके आते कि हमको पहले से समय निश्चित करके बातचीत का मौका मिलता। कई बार दो-दो, तीन-तीन दिन तक समय न मिल पाता।

काकाजी के देहान्त के समय मैं तो केवल १९ वर्ष का था और उनके रहते हर प्रकार की जिम्मेदारी या भार से मुक्त था। किसी भी पिता का इस तरह से जाना बच्चो के लिए दुखदायी होता है, लेकिन उनके-जैसे पिता का इस तरह से एकाएक चले जाना हम सभीके लिए बहुत बडा आघात था।

काकाजी हमेशा मृत्यु का मजाक उडाया करते थे और बडे ही हल्के

ढग से उसकी चर्चा किया करते थे, जैसे कोई बहुत मामूली बात हो। कई बार लोगो को बुरा भी लगता, लेकिन वे इसी तरह से आसपास के लोगो का मृत्यु के प्रति डर दूर करने की कोशिश करते थे। "एक दिन मरना अवश्य है, मरना तो हैजा का अच्छा", यह बराबर कहते रहते थे। हैजा को वे इसलिए पसद करते, क्योकि उसमें तुरत मृत्यु हो जाती है और आसपास के लोगो को तकलीफ नही होती। वे तो कहते थे कि यदि मुझे कोई पहले से बता दे तो मै पहले से ही स्मशान में जा बैठू, जिससे मेरे शरीर का भारी वजन उठाकर ले जाने की भी जरूरत न पडे।

वे जो बात कहते, खुद करते, इसलिए उनके जीवन का सारे कुटुब पर बडा असर था और अब भी है। हर बात में और हर काम मे करते समय उनकी याद आ जाती है और उनके जीवन से बराबर प्रेरणा मिलती रहती है।

हम लोग उनके नाम और काम को यदि आगे नही बढा सके, तब भी उसमें किसी तरह का धब्बा न लगने दें, यही हमारे लिए बडे सतोष की बात होगी।

: ९८ :

उनका विशेष स्थान आज भी रिक्त

श्रीप्रकाश

मुझे आज इस बात से सतोप हो रहा है कि अन्य मित्रो और सहयोगियो के साथ-साथ मुझे भी सेठ जमनालालजी बजाज की पुण्य स्मृति में दो-चार शब्दो द्वारा श्रद्धाजलि अर्पित करने का अवसर मिल रहा है। मुझे स्मरण है कि सेठ जमनालालजी की अकस्मात् और असामयिक मृत्यु से हम सब उनके साथियो और सहयोगियो को बडा धक्का पहुचा था। इस दुर्घटना से हमारे सार्वजनिक जीवन की भयकर क्षति हुई थी और उनका स्थान-विशेष आजतक खाली ही रह गया। मुझे उनको सबसे पहले देखने का अवसर दिसम्बर सन् १९२२ की काग्रेस के समय गया में मिला था। उस समय महात्मा गाधी जेल में थे, और काग्रेस में भयकर आतरिक संघर्ष चल रहा था। परिवर्तनवादियो और अपरिवर्तनवादियो में बडा झगडा उठा हुआ था। फल्गु नदी के किनारे, काग्रेस-मण्डप के समीप, दिन-रात प्रतिद्वदियो के भाषण होते रहे। सेठ जमनालालजी बजाज अपरिवर्तनवादी थे, और उन्होने वहापर श्री राजागोपालाचार्य (राजाजी) सरदार वल्लभाई पटेल और अन्य सहयोगियो के साथ-साथ कितने ही भाषण किये और आग्रह किया कि काग्रेस के प्रतिनिधि-गण पडित मोतीलाल नेहरू और देशबधु चित्तरजनदास के नये प्रस्तावो को अस्वीकृत करें और पुराने गाधीवाद पर ही अटल बने रहें।

उस समय मैंने उन्हें दूर से ही देखा था। वास्तव मे मेरी उनकी पहली मुलाकात कुछ महीने पीछे हुई। १९२३ मे नागपुर में झडा-सत्याग्रह का वह नेतृत्व कर रहे थे और उसके कारण जेल पहुच गये थे। अखिल भारतीय काग्रेस-कमेटी की बैठक के सबध में मैं वहा गया था। उस समय काशी से

श्री शिवप्रसादजी गुप्त भी साथ में थे । सेठजी को वह पहले से जानते थे और उनकी इच्छा स्वभाविक थी कि जेल मे उनसे मुलाकात की जाय । अपने साथी और मित्र श्री राघवेन्द्रराव भी वही थे । शिवप्रसादजी और मै दोनो ही उनके अतिथि थे । किसी प्रकार से जेल-अधिकारियो से अनुमति पाकर हम सब सेठजी से मिलने गये । जेल-अधिकारियो ने वही प्रतिवध रक्खा कि राजनीति की कोई बात हम न करेंगे। जेल-सुपरिंटेंडेंट श्री जठार भी मुलाकात के समय मौजूद थे।

अवश्य ही हम झडा-सत्याग्रह की भीतरी बातें जानना चाहते थे, पर उस सबध में बात करना सभव ही नही था । केवल कुशल-क्षेम पूछकर ही हमें सतुष्ट होना पडा। इतना अवश्य उनसे मिलकर मैंने अनुभव किया कि सेठजी किसी प्रकार से व्यग्र अथवा विचलित नही थे । आदोलन के परिणाम की चिन्ता वह नही कर रहे थे, चाहे किसीका कुछ भी विचार क्यो न हो। चाहे कोई उस सत्याग्रह को मूर्खता समझे या न समझे, उनको इतने से सतोप था कि उन्होने अपना कर्तव्य कर दिया।

उसके बाद तो उनसे बराबर साक्षात् होता रहा। जब-जब वह काशी आते थे, मुझसे अवश्य मिलने की कृपा करते थे। वह श्री शिवप्रसादजी गुप्त के यहा ठहरते थे। सभी मित्रो से मुलाकात वहा भी होती ही रहती थी। मुझे उनके सबध मे आरभ मे इतना बतलाया गया था कि वह बडे धनी पुरुष है, पर महात्मा गाधी से आकर्पित होकर राजनीति में उनके साथ आगये है और सबकुछ त्यागकर बडी सादगी का जीवन व्यतीत करते है और हर तरह महात्माजी का साथ देते है। उनकी सादगी का उदाहरण मुझे एक दिन श्री शिवप्रसादजी गुप्त के मकान पर इस रूप मे मिला कि वह अपने हाथ से ही कच्चे चने (अर्थात् बूट या काशी की भाषा में 'होरहा') आग में भून-भूनकर खा रहे थे। शिवप्रसादजी के विशाल उद्यान के एक कोने में जमीन पर आनन्द से बैठे थे और मेरी तरह जो भी वहा पहुच जाते थे, उनके साथ 'भोजन' में सम्मिलित हो जाते थे।

मुझे उनकी सहृदयता और मैत्रीभाव का एक बार इस रूप से परिचय

हुआ कि वह दोपहर के समय घूमते हुए एक दिन एकाएक मेरे घर पर आये। भोजन का समय था और मै भोजन के लिए उठ ही रहा था कि उनको देखकर बैठ गया। मै सकोच कर रहा था, पर उन्होंने थोडी देर बाद स्वय ही कहा कि यह आपके भोजन का समय होगा। मैं भी आपके साथ भोजन कर लूगा। सभी गृहस्थो को ऐसी अवस्था मे असमजस होता है, क्योकि जब कोई विशिष्ट अतिथि आता है तो उसके लिए कुछ विशेष प्रबध किया ही जाता है, पर उनको इस सबका कोई विचार नही था, और जो कुछ बना था, उन्होने बडे प्रेम से खा लिया। इस सबध में यह कह देना अनुचित न होगा कि महात्मा गाधी के बहुत-से अन्य अनुयायिओ की तरह सेठजी के भोजन-सबधी कोई विशेष प्रतिबध आदि नही थे। बहुत-से लोग उन दिनो नमक छोड रहे थे, बहुत-से लोग चीनी नही खाते थे। कोई केवल दूध या फल पर ही आश्रित थे। कितनो ने ही भोजन-सबधी विशेष नियम बना लिये थे, जिसके कारण आतिथेय-गृहस्थो को अवश्य असुविधा होती थी। सेठजी ने कोई ऐसे बधन नही लगा रक्खे थे, जिससे उनके आतिथ्य में किसीको कोई कठिनाई नही हो सकती थी।

जब गाधीजी ने नमक-सत्याग्रह के बाद यह प्रण किया कि जबतक स्वराज्य नही मिलेगा तबतक मैं साबरमती-आश्रम नही जाऊगा, तब सेठ जमनालालजी बजाज ने ही वर्धा से कुछ दूरी पर सेवाग्राम में (जिसका नाम पहले सेगाव था) गाधीजी के रहने आदि का प्रबन्ध किया। मैं पहले-पहल सेवाग्राम सन् १९४० मे गया था। उस समय वर्धा में अखिल भारतीय काग्रेस-समिति की बैठक थी। उसी प्रसग में मैं गया था। पीछे तो कई बार जाने का अवसर मिला। कुतूहलवश गाधीजी के आश्रम के पास में ही, जो पुराना सेगाव नाम का वास्तविक गाव था, उसमें मैं गया। गाधीजी की यूरोपीय शिष्या मीराबेन (मिस स्लेड) ने वहा अपने लिए कुटिया बनाई थी। आश्रम की तरफ से कुछ नवयुवक झाडू आदि देकर गाववालों को सफाई की शिक्षा देने का प्रयत्न कर रहे थे। एक के हाथ में झाडू देखकर मैं उनसे बात करने के लिए रुका। मालूम हुआ कि वे उत्तर प्रदेश के उन्नाव

जिले के है। वे बडे दुखी होकर मुझे बतलाने लगे कि गाववाले केवल उन्हें तग करने के लिए जहा-जहा वे सफाई करते है वहा-वहा अनायास गदा कर देते है। गाव की बस्ती में जाकर मैंने बहुत-से लोगो से बातें भी की।

इस गाव के जमीदार सेठजी ही थे। गाववालो को उनसे बहुत शिकायत थी। साथ ही महात्मा गाधी से भी शिकायत थी। उनका कहना था कि जब सेठजी की शिकायत हम महात्माजी के पास ले जाते है तो वह कुछ नही सुनते। वह पक्षपात करते है। इस कारण हमारी कठिनाइया दूर नहीं होती। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि गाववाले वास्तव मे गाधीजी के सारे आयोजन से ही रुष्ट थे। एक दिन मै गाधीजी के साथ शाम को वहा सडक पर टहल रहा था। उस तरफ से कुछ गाववाले गुजरे, पर उन्होने गाधीजी का अभिवादन भी नही किया। कहा तो दूर-दूर के लोग आकर इतनी श्रद्धा और भक्ति से उनके पैर छूते थे, कहा बगल के रहनेवाले उनसे इतने अप्रसन्न प्रतीत होते थे कि उनको नमस्कार भी करना नही पसद करते थे। मैंने किसी समय ये सब बातें सेठजी को बताई भी थी। मै नही कह सकता कि उन्होने इस सबध मे क्या किया। फिर मुझे पूछने का मौका नही मिला। हा, इसमे कोई सदेह नही कि गाव की सेवा करना सहल नही है। जिनकी भलाई करने जाइए वे ही सशक हो जाते है, और ऐसा समझते है कि ये हमारी हानि करने आये है और कुछ अपना ही लाभ करने की फिक्र में है। गाववालो की मनोवृत्ति से कुछ मुझे भी परिचय है और मै अच्छी तरह समझ सकता हू कि सेठ जमनालालजी बजाज को भी अपने सेवाकार्य में कितनी दिक्कतें उठानी पडी होगी।

जब महात्मा गाधी सेवाग्राम में रहते थे तब काग्रेस की कार्य-समिति की बैठकें जमनालालजी के यहा ही हुआ करती थी। कार्य-समिति के सदस्यो के लिए वर्धा में सेठ जमनालालजी बजाज ने अपना एक मकान दे रखा था और वही उनके अतिथि-सत्कार का सब प्रबन्ध भी कर दिया था। वह स्वय ही सब अतिथियो की फिक्र करते थे। एक-दो बार मुझे भी उनके यहा ठहरने का अवसर मिला है। जहातक मैंने देखा, सेठजी का बातचीत करने

का कुछ ऐसा तरीका था जिससे कुछ गलतफहमी हो सकती थी। मेरा ऐसा अनुमान है कि वह स्पष्ट बात और मजाक को मिश्रित करते थे और जो उन्हें पास से नहीं जानते थे उनके मन में गलतफहमी पैदा होने की सम्भावना हो सकती थी। अपने अतिथिगृह में भी खाना खाते समय वह ऐसी बातें कह देते थे, जिसका अर्थ कुछ लोग यह अवश्य निकाल सकते थे कि हमारा यहांपर बार-बार ठहरना सम्भवतः उन्हें अच्छा नहीं लगता। ऐसा भाव किसी नये अतिथि के ही मन में आ सकता था। जो उनके मित्र और साथी थे वे तो जानते थे कि वह कितने उदार प्रकृति के हैं और कितने प्रेम से सबको अपने पास आग्रहकर ठहराते हैं।

कांग्रेस के वह कोषाध्यक्ष बराबर रहते थे और उसके आय-व्यय पर कड़ी नजर रखते थे। सार्वजनिक सम्पत्ति के सम्बन्ध में प्रायः लोग लापरवाह होते हैं पर उसपर बड़ी तत्परता से बराबर ध्यान रखना अत्यावश्यक है। सेठजी इसमें बड़े ही कुशल थे, जिसके कारण कुछ लोग उनसे अधिक प्रसन्न नहीं रहते थे। हिसाब-किताब में वह ऐसे विशेषज्ञ थे कि मित्र-गण अपने निज के हिसाब भी उन्हें देखने को छोड़ देते थे, जिससे सार्वजनिक कार्य करते हुए घर की तबाही न होजाय। इस प्रकार से सेठजी ने कई बड़े घरों की रक्षा की। कोषाध्यक्ष होने के कारण वह कार्य-समिति के सदस्य भी रहे और वहा वह अपनी राय बहुत सफाई से देते थे। पर मैंने यह अवश्य देखा कि मत प्रकट करने का उनका कुछ ऐसा प्रकार था कि दूसरों को कुछ चोट भी लग सकती थी। दिल्ली की एक घटना मुझे याद आती है जब डाक्टर अन्सारी के मकान पर कार्य-समिति की बैठक हो रही थी। श्री केलकर भी वहा थे। सेठजी की किसी बात से श्री केलकर को इतना बुरा लगा कि उस छोटे-से कमरे मे उन्होंने बड़ी तेज आवाज से चिल्ला-चिल्लाकर बातें करनी शुरू कर दी। उन्हें इतना अधिक क्रोध आ रहा था कि शीतकाल में भी वह पसीने-पसीने होगये। उनको ऐसा विचार हुआ कि सेठजी ने मेरे ऊपर कुछ व्यक्तिगत आघात किया है। श्री केलकर ने तो बहुत ही कड़े शब्दों में सेठजी पर उत्तर मे आघात किये। महात्माजी ने शान्ति से दोनो पक्षों को

सुना, पर कुछ कहा नही। सेठजी ने धीरे-से यही कहा कि ऐसा व्यक्तिगत आक्षेप करना उचित नही है। बात यहा समाप्त हुई। सभवत सेठजी असावधानी से बाते कह देते थे, पर उनका हृदय सदा शुद्ध रहता था। एक बार मुझे याद है कि उन्होने ऐसी ही बैठक मे सत्याग्रह करने न करने के सम्बन्ध में विचार-विनिमय होते समय कह दिया कि अमुक-अमुक ने तो बड़े-बड़े महल अपने रहने के लिए बना लिये है, वे अब जेल क्यो जायगे। एक बार महात्मा गाधीजी के ही किसी सज्जन को अखिल भारतीय काग्रेस-समिति के दफ्तर मे सपुरस्कार कार्यकर्ता के पद पर रखने के लिए कहने पर सेठजी ने पूछा कि ये तो वही है न जो अमुक के अमुक लगते है। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि महात्मा गाधीजी को भी इसपर बुरा लगा, क्योकि उन्होने कहा कि 'क्या यह सम्बन्ध कोई गुण का सूचक है,' क्योकि वह तो उन सज्जन को व्यक्तिगत विशिष्ट योग्यता के ही कारण उस स्थान पर रखना चाहते थे। इन्होने पीछे सार्वजनिक जीवन मे बडा यश पाया। महात्मा गाधी को मनुष्यो की बहुत अच्छी पहचान थी।

जब श्री जवाहरलाल नेहरू लाहौर में काग्रेस के सभापति हुए और उन्होने मुझे काग्रेस का प्रधान मत्री बनाया और मै कार्य-समिति की बैठक में इस पद को लेने के लिए एकाएक अपने तबू से बुलाया गया, तो मैने इस ऊचे पद के लिए अपनी अयोग्यता प्रकट की और क्षमा चाही। तीन वर्ष पहले मै उस समय की केंद्रीय विधान-सभा के लिए बहुत बडे सघर्ष में खडा होकर हार चुका था। उसे यादकर सेठजी ने कहा कि विधान-सभा में तो खडे होने के लिए आप अपनेको योग्य समझते है और काग्रेस के प्रधान मत्री होने के लिए ऐसा नही समझते। मुझे याद है कि मुझे इन शब्दो से चोट लगी और मैने कहा भी कि विधान-सभा का तो सदस्य कोई मूर्ख भी हो सकता है, क्योकि वहा तो नेता के पीछे-पीछे केवल मत देने का ही काम रहता है, पर यहा तो बहुत महत्व का काम करना होगा। खैर, मै प्रधान मत्री तो होगया, पर यह घटना मुझे याद रही। पीछे जब एक बार सेठजी मेरे यहा काशी मे आये तो मैने बहुत क्षमा-याचना करते हुए

उनसे पूछा कि क्या आपको मेरा अमुक के विरुद्ध निर्वाचन में खड़ा होना बुरा लगा था। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया कि ऐसी बात नहीं है।

सभीमें गुण-दोष होते हैं। कोई भी पुरुष पूर्ण नहीं है, परन्तु यह तो कहना ही पड़ेगा कि सेठजी मे गुण बहुत थे, और यदि दोष थे तो कम। खेद है कि मुझे खुद उनके अधिक निकट रहने का अवसर नहीं मिला। यदि मैंने उनमें कोई त्रुटि देखी तो केवल इसमें कि वह अपना मत प्रकट करने मे अत्यधिक सफाई रखते थे जिससे कि सभवत दूसरो को बुरा लग जाता था, पर वास्तव में वह देश के विशिष्ट पुरुषों में होगये है। वह बिना अपने को बहुत प्रकट किये सब लोकोपकारी काम शान्ति के साथ गुप्त रूप से ही किया करते थे। उनपर सबको ही विश्वास था। उनकी उदारता अत्यधिक थी। वह दूसरो की व्यक्तिगत सहायता भी बहुत करते थे। वह समाज-सुधारक भी थे। विवाह-सबधी बहुत-सी बातो में उन्होंने व्यावहारिक रूप से परिवर्तन कराये थे। वह अतर्जातीय विवाह के पोषक थे और अपने पास उपयुक्त वर-कन्याओं की सूचि रखते थे, और उचित सबध कराने में गृहस्थो की सदा सहायता करते थे। विवाह में दहेज आदि तो लेना दूर रहा, मित्रो द्वारा साधारण उपचार के रूप में जो उपहार वर-कन्या को दिया जाता है उसे भी वह नहीं लेते थे। मुझे स्मरण है कि उनकी कन्या के विवाह मे जब मेरे मित्र श्री शिवप्रसादजी गुप्त ने निमत्रण पाकर कुछ उपहार भेजा तो उन्होंने क्षमा-याचना करते हुए उसे वापस कर दिया। वह सिद्धात के पक्के थे। उनके हृदय में सबके लिए बड़ा प्रेम था। वह सबकी सहायता करने के लिए तैयार रहते थे, और यदि महात्मा गाधी को उनके ऊपर हर प्रकार का विश्वास था तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

सेठ जमनालालजी बजाज अपनी धुन के बड़े पक्के थे और जो कुछ काम वह उठा लेते थे उसमें बराबर लगे रहते थे। हार-जीत की चिन्ता वह नहीं करते थे। इसका मुझे एकबार सुन्दर उदाहरण मिला था। सभवत बात १९३३ की होगी, क्योकि उसीके पहले १९३२ का कर-बदी-आदोलन समाप्त हो चुका था। सभी लोग जेल की अपनी अवधि काट कर बाहर

आगये थे। मैं उस समय बड़ा ही हताश हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि अब कोई आशा नही रह गई है। बार-बार प्रयत्न होता है और बार-बार विफल हो जाता है। उसी समय सेठ जमनालालजी बजाज इत्तिफाक से मेरे यहा आये। अन्य बातो के प्रसग मे मैंने अपने हृदय के ये भाव भी उन्हे बतलाये और कहा कि अब तो मालूम पडता है कि इस सब आदोलन मे कोई तथ्य नही रह गया है। काम बद ही करना होगा। सेठजी ने इसपर कहा कि मैं तो व्यापारी हू और व्यापार की प्रथा की कसौटी पर ही अन्य सब बातो को कस सकता हू। मेरे पास और कोई मापदड नही है। व्यापारी चाहे सफल हो या विफल, चाहे उसको लाभ हो या हानि, वह अपनी दूकान पर जाता ही है। उसको समझ मे ही नही आता कि और कोई काम भी किया जा सकता है। उदाहरणार्थ जब हडताल अथवा किसी अन्य कारण से दूकानदार अपनी दूकान बद करता है, तो भी बाहर अपनी ताली लिये हुए बैठा रहता है, चाहे दूकान खोले या न खोले।

उन्होंने आगे चलकर कहा कि यही हम लोगो की दशा है। हमने राजनीति के काम को उठाया है। इसमे हमें सफलता मिले या न मिले, हम अब और क्या कर ही सकते है। हमे तो इसे करते ही जाना होगा। हम अपनी प्रकृति से विवश हैं। हम कोई दूसरा काम उठा ही नहीं सकते। बात उन्होंने बहुत सीधे प्रकार से कही। उदाहरण भी उन्होंने बडा साधारण-सा दिया, पर जो कुछ उन्होने कहा, वह पूर्णतया सत्य है। मेरे ऊपर इसका बडा प्रभाव पडा। मुझे यह स्पष्ट प्रतीत हुआ कि वह किसी प्रकार से भी विचलित नही हो रहे है, और न काम छोडने को ही तैयार है। इसमे उनकी निष्ठा और श्रद्धा भी स्पष्ट रूप से प्रतीत हुई। मुझे भी इससे अपना कर्तव्य-पथ मालूम हुआ। इसमें कोई सदेह नही कि यदि बार-बार हारकर भी महात्मा गाधीजी के नेतृत्व मे हम सब राजनीतिक कार्य मे लगे न रहते, तो आज हम अपनेको स्वतत्र न पाते। खेद है, इस स्वतत्रता को सेठजी स्वय अपनी आखो से न देख सके, पर उन्होने हमारे ऊपर बहुत बडा उत्तरदायित्व छोडा है, जिसे हमें पालन करते रहना चाहिए।

आज हम सब उन्हें प्रेम, श्रद्धा और सम्मान के साथ स्मरण करते हैं। सेठजी विशेष रूप से प्रशंसा के पात्र इस कारण भी हैं कि सार्वजनिक जीवन में अपना सब समय और शक्ति देते हुए भी उन्होंने व्यवहार-धर्म का पालन किया, और अपने कुलवालों को अपने से कोई शिकायत का मौका नहीं दिया। अपने जीविका-सबंधी व्यापारादि का सदा वह सुप्रबन्ध करते रहे। वह वास्तव में सार्वजनिक पुरुष होते हुए सद्-गृहस्थ भी थे। संसार का आदर पाते हुए अपने कुटुम्ब का भी सम्मान पाते रहे। ऐसे उदाहरण कम देख पड़ते हैं। सार्वजनिक कार्यों में व्यस्त रहते हुए कितनों ने अपने कुटुम्बी-जनों की उपेक्षा की है, जिसका कटु परिणाम उन्हें पीछे सहन करना पड़ा है। सेठजी ने ऐसा नहीं किया, इस कारण वह विशेष रूप से आदर के पात्र हैं। हम सब उनको सदा स्मरण रक्खें और यदि हो सके तो उनका अनुकरण कर अपने देश की और अपने समाज की सेवा करने का प्रयत्न करते रहें।

: १८ अ :

उनका प्रेमल स्वभाव

विमला बजाज

मैं जब दस वर्ष की थी तब पिताजी (श्री जमनालालजी) से पहले-पहल मिली। उन्होंने बड़े स्नेह से मेरे सिर पर हाथ रखा, जैसे कि वर्षों से जानते हों। शायद सभीपर वह इसी प्रकार स्नेह की वर्षा करते थे, किंतु हरेक को यही लगता था कि उसीपर उनका अधिक स्नेह है। उस समय मुझे क्या मालूम था कि मैं इसी घर में आनेवाली हूं।[1] उनके मन में भी मेरे लिए कोई भावना थी या नहीं, यह आज भी नहीं मालूम। हां, एक बार जब कलकत्ते आये तो जाते समय बोले, "विमला तो मेरी बेटी बन गई है। उसे मैं अपने साथ ले जाऊंगा।"

काकाजी व मां को भला क्या एतराज हो सकता था। उन्होंने पिताजी से कहा कि अगर वह जाय तो अवश्य ले जाइए। किंतु उन दोनों को ही यह बिल्कुल विश्वास नहीं था कि मैं पिताजी के साथ अकेली चली जाऊंगी। पहले कभी भी मैं अकेली यानी मां के बिना कहीं भी नहीं गई थी। मुझसे पूछा गया तो पहले तो मैंने इंकार कर दिया, किंतु पिताजी के स्नेहभरे आग्रह के सामने मुझे हार माननी पड़ी। मैंने उनके साथ जाना स्वीकार कर लिया। किंतु ट्रेन छूटने तक सबको संशय हो रहा था कि न जाने यह कब ट्रेन से उतर पड़े। पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ।

अगले रोज ट्रेन में पिताजी का सिर बहुत दर्द कर रहा था। वह लेटे हुए थे। मैं सिराहने जा बैठी और चुपचाप सिर दबाने लगी। यह पूछने की

---

[1] बाद में श्री रामकृष्ण बजाज से विवाह हुआ।

जरूरत ही महसूस न हुई कि सिर दबा दूं क्या। वह भी चुपचाप आख बद किए सिर दबवाते रहे।

कुछ देर बाद मैंने सिर दबाना बद कर दिया। मुझे ऐसा लगा कि वह सो गए हैं। किंतु जैसे ही मैं उठी, उन्होने आख खोली और कहा—सिर तो बहुत अच्छा दबाती है। मुझे खुद की तबदीली पर बहुत आश्चर्य हो रहा था। मैंने सदा करवाना सीखा था, किसीके लिए करना नही। लेकिन इस छोटी-सी चीज के करने में भी जो सतोष और खुशी का अनुभव हुआ, वह मेरे लिए एक नई चीज थी। पिताजी का सपर्क ही प्रेरणाओ का जन्मदाता था। मेरा उनके साथ आना, और वह भी इस प्रकार, एक नया अनुभव था।

जब हम बबई में घर पहुचे तो पिताजी मेरी बहन[1] से बोले, "देखो, कलकत्ते से मैं तुम्हारे लिए क्या लाया हू।" मुझे देखकर सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ।

पिताजी के स्नेह से किसीका बचना असभव था। जो भी उनके सपर्क में आता, उसके दिल पर असर हुए बिना नही रहता था। आज सालो के बाद भी जब पिताजी के बारे में सोचती हू तो उनका प्रेमल स्वभाव, जो विनोद से ओतप्रोत था, उनका हँसता चेहरा, जिसपर कभी शिकन न आई थी, उनकी तीखी आखें, जो मन के अतरतम को ताड लेती थीं, निगाह के सामने आ जाती है और उनकी भव्य मूर्ति के सामने अनायास नतमस्तक हो जाती हू।

---

[1] श्रीमती सावित्री बजाज, श्री कमलनयन बजाज की पत्नी।

: ११ :

ईश्वरी प्रेरणा

कमलनयन बजाज

उत्तरायण, बुधवार, ११ फरवरी १९४२, एकादशी का दिन। कुरुक्षेत्र के युद्ध के बाद भीष्मपितामह अपने नाशवान शरीर को छोडने के लिए जिस दिन की राह देख रहे थे, वही यह पवित्र दिन था। पितामह के स्वर्गारोहण के दिन की सारी अनुकूलताए उस दिन भी थीं। बुधवार विशेष मे था। ऐसा था वह महत्वपूर्ण ऐतिहासिक और पौराणिक पावन पर्व।

मै अपनी शक्कर मिल के आफिस मे दोपहर के समय बैठा अपने मैनेजर श्री आनन्दकुमारजी नेवटिया के साथ मिल-सबधी बाते कर रहा था। दूसरे रोज मेरा लाहौर जाना जरूरी था। वहा मैंने अपनी कपनी के बोर्ड आफ डायरेक्टर्स की महत्वपूर्ण मीटिंग बुला रखी थी। लाहौर का रिजर्वेशन कराने के लिए कुछ रोज पहले कह रखा था। रिजर्वेशन मिल नही रहा था पर जाना तो अनिवार्य था।

मेरे मन मे एक प्रकार की बेचैनी थी। घबराहट भी कहू तो गलत न होगा। कुछ महत्वपूर्ण कामो की बातो मे हम दोनो लगे हुए थे। एक बडे सवाल का हल चर्चा मे से निकलता-सा दिखाई दिया। मेरे बडे बहनोई रामेश्वरप्रसादजी नेवटिया ही शक्कर की मिल को शुरू से सभालते आये है। वे कलकत्ता किसी खास मीटिंग के लिए गये हुए थे। मीटिंग के पूर्व हमारी चर्चा का सार उन्हे बताना जरूरी मालूम दिया, जिससे उस नए दृष्टिकोण से भी वे सोच ले और उस महत्वपूर्ण मसले की बाबत अपनी राय, लोगो से मिलने और मीटिंग मे जाने से पूर्व, कायम कर ले। आनदकिशोरजी और मै बातचीत में सलग्न थे कि इतने मे मिल का कर्मचारी पूछने आया कि लाहौर का रिजर्वेशन मिल रहा है, उसको पक्का करा लिया जाय?

आनन्दकिशोरजी पर कुछ ऐसा असर हुआ दिखाई दिया कि यह भी क्या पूछने की बात थी? वह क्या जानता नहीं था कि जाना जरूरी है? लेकिन वे तो कुछ बोले नहीं, मेरे मुह से झट निकल गया, "रहने दो, पता नहीं किधर जाना पड़े।" कर्मचारी तो चला गया, मैं स्वयं भी अचमे से देखता रह गया कि मैंने क्या कह दिया। मनमे आया कि कर्मचारियों को रोककर रिजर्वेशन करने को कह दूं। लेकिन न जाने क्यो जबान नहीं खुली। वह चला गया और उसने रिजर्वेशन के लिए इन्कार कर दिया।

मेरे मन की बेचैनी बढ़ रही थी। तरह-तरह के विचार मन मे आ रहे थे। करीब दस रोज पहले मैंने बर्मा छोडा था। वहा से कलकत्ता, डालमियानगर, बनारस होता हुआ अपनी मिल पर गोला गोकरणनाथ आया था। वर्मा से निकलने के पहले दिन शाम को काकाजी (पिताजी) से बजाजवाडी में मिलने गया। मैं शहर के मकान में रहता था। करीब ५।। महीने पहले उन्होंने गौ-सेवा का व्रत लिया था। उसीमें उन्होंने अपनी पूरी शक्ति लगाने का निश्चय करके छ: महीने के लिए रेल, मोटर आदि यत्र-चालित साधनो का उपयोग न करने का नियम लिया था। उनका वह नियम १३-१४ फरवरी को पूरा हो रहा था और १५ फरवरी को उन्होंने बम्बई पहुचने का कार्यक्रम बनाया था। व्यापार के हर काम से वे इन बीच पूरी तरह से निवृत्त हो चुके थे। इतना ही नहीं व्यापार-सबधी जानकारी प्राप्त करना या कोई सलाह आदि देना भी उन्होंने बद कर दिया था। गौ-सेवा के प्रचार के वास्ते ही वे बाहर निकल रहे थे और उसीमें पहला मुकाम बम्बई था। मैंने भी अपना कार्यक्रम इस तरह से बनाया था, जिससे अपने व्यापारिक कार्य को पूरा कर मैं भी १५ तारीख तक काकाजी के पहुचते-पहुचते बम्बई पहुच जाऊ और उनका मददरूप हो सकू। मेरे इस कार्यक्रम की जानकारी उनको थी।

काकाजी ने कभी किसी बात को जीवन में मुझसे 'ना' नहीं कहा था। अपनी राय वे दे देते थे अथवा कार्य होने के बाद में उसके अच्छे-बुरे की स्पष्ट चर्चा कर लेते थे। उनके प्रति मेरी भक्ति निर्मल और आदर अटूट रहा है।

मैं उनसे मजाक कर लिया करता था, लेकिन जीवन में उनके आदेश की मैंने कभी अवहेलना नही की थी। उनका भी मुझपर असीम स्नेह और विश्वास था।

इन्ही दिनो कुछ मेरी व्यापारिक नीति की वजह से, जिससे कि काकाजी सहमत नही थे, मेरे बारे मे कुछ असतोष रहने लगा था। साथ ही एक घटना ऐसी होगई थी, जिससे उनके मन में कुछ गलतफहमी पैदा होगई थी—कुछ अश मे उसमें मेरी गलती थी, जिसका उन्हे दु ख था। उस सबध मे हमारी थोडी बात हो चुकी थी। पूरी बात करने का मौका वर्धा में नही मिल रहा था। मैंने सोचा कि बम्बई मे सारी बातें कर लेगे। काकाजी ने भी शायद वही अधिक अनुकल समझा, क्योकि वे वर्धा मे बहुत अधिक व्यस्त रहते थे।

हर तरह की चर्चा वे मुझसे किया करते थे, सलाह भी लेते थे, अपने और मेरे गुण-दोषो की भी जानकारी मुझे देते थे और समय-समय पर चर्चा भी कर लेते थे। पिता-पुत्र का ऐसा निकट का सबध मेरे देखने म नही आया। उनका बडप्पन था कि इस सबध को उन्होने मित्रता के रूप मे पूरी तरह से परिवर्तित कर दिया था। लेकिन इसके लिए मै अपने को पात्र बिल्कुल नही समझता था।

फिर भी जब मैं उनसे मिला और दूसरे रोज सुबह ही कलकत्ता मेल से मुझे जाना था, इसलिए मैंने विदा-सूचक प्रणाम किया तो वह बोले, "कब जा रहे हो ?"

"सुबह मेल से।" मैंने उत्तर दिया,

"क्या करेगा जाकर?"

काकाजी के इस सवाल से मुझे आश्चर्य हुआ, क्योकि एक तो वे जानते थे कि काम बडा जरूरी है, दूसरे इस तरह से कहने की उनकी आदत नही थी।

मैंने कहा, "आप कहते हो तो न जाऊं।"

वह बोले, "तुम्हारा कार्यक्रम बन चुका है। तुम्हारा कर्तव्य जाने में ही है। हो सके तो सुबह मिलते हुए जाना। फिर भी मिलना शायद ही हो।"

दूसरे दिन मैं सुबह जल्दी ही तैयार होकर गया, लेकिन कोई अड़चन हो जाने से मिलना हो न सका। गाड़ी का समय हो चुका था। मुझे चला जाना पड़ा। मा से कह गया कि मेरा प्रणाम कह दें। काकाजी से इस तरह की बातचीत का मेरे मन पर गहरा असर था। कुछ महीनों से उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा होगया था। शायद वर्षों में ऐसा न रहा हो। चेहरे पर तेज था। मन की स्थिति भी बहुत उन्नत थी, शायद जीवन में वैसी पहले कभी न रही हो। हां, पू. बापूजी की तबीयत कमजोर थी। कुछ हफ्तों पहले चिन्ता का कारण होगया था, लेकिन अब वैसा भय नहीं रहा था।

ऐसी मनोदशा में मैंने वर्धा छोड़ा। कलकत्ते का काम करके मैं डालमियानगर गया। वहा श्री रामकृष्णजी डालमिया से बातचीत होते समय उन्होंने कहा कि 'भृगुसंहिता' के अनुसार इस साल जमनालालजी के जीवन को गहरा खतरा है। मैंने कहा कि यदि खतरा था तो वह जेल में पूरा हो चुका, वहा वे करीब-करीब चले ही गए थे। उनके खुद के शब्द थे कि जब उन्हें जीने की आशा नहीं रही तो उन्होंने बापूजी का स्मरण कर विनोबा को हृदय से प्रणाम किया और रामनाम लेते हुए मूर्च्छित होगए। उन्हें इस बात की तसल्ली थी कि आखिरी समय किसी प्रकार के मोह, लालच, भय आदि विकार ने उनको नहीं सताया और आनन्द से जाने की उनकी तैयारी होगई थी। मैंने रामकृष्णजी से यह सब कहा, लेकिन फिर भी उनको डर था कि खतरा टला नहीं है। खतरा उनका ५२ वर्ष की अवस्था तक है। अभी कई महीने बाकी हैं और इसकी उन्हें पूरी चिंता है।

यही विचार मेरे मन में घूमता रहा। 'भृगुसंहिता' पर मेरा विश्वास नहीं था। काकाजी को भी वे साल-दो-साल पहले कह आये थे। उन्हें तो ऐसी बात की चिन्ता ही नहीं होती थी। हमेशा कह दिया करते थे कि मरना तो एक दिन अवश्य है, उसके लिए हर वक्त तैयार रहना चाहिए। फिर भी मन की बेचैनी बढ़ती गई। ये सारे विचार दिमाग में उलट-पुलट आते रहे।

इतने में कलकत्ते से टेलीफोन आया। खयाल था कि वह रामेश्वरजी का ही होगा। आनन्दकिशोरजी नजदीक थे। उन्होंने ही उसे उठाया।

टलीफोन रामेश्वरजी का ही था। उन्होंने बहुत ही कापती हुई आवाज मे कहा, "वर्धा से बहुत ही खराब खबर है।" पास होने की वजह से मुझे भी उनकी आवाज सुनाई पड रही थी। मेरा दिल सन्न होगया, कपकपी आगई।

मन में यही डर विचार हुआ कि कही बापू को कुछ न होगया हो। ऐसा हुआ तो अनर्थ हो जायगा। भगवान करे, इससे तो काकाजी को कुछ होगया हो तो चलेगा, लेकिन बापू को इस समय कुछ नही होना चाहिए। इस तरह के भाव मेरे मन मे गुजरे कि तुरन्त रामेश्वरजी की आवाज फोन पर सुनाई दी कि जमनालालजी नही रहे। मेरी आखो मे अधेरा छा गया। आसमान ही मुझपर टूट पडा। अदर से एक आवाज कहने लगी कि तूने ही बापू के बदले काकाजी का जीवन दिया है। अब इसका दुख कैसा! उस अन्तर-आत्मा की आवाज को मैंने कई बार कोसा भी और कहा कि तेरी नीति ठीक नही, इसी तरह तूने हरिश्चन्द्र को दरिद्री बनाया, आदि-आदि, फिर भी मन मे अजीब प्रकार का धर्म-सकट पैदा हो गया। बापू के न जाने की तसल्ली थी। काकाजी की छत्रछाया टूट चुकी थी, उसका क्लेश था। मन मे इस विचार ने बल पकडा कि जो कुछ हुआ, इसमें दु ख मनाने का कोई कारण नही। काकाजी का जीवन उन्नत रहा और सफल रहा। उनके चले जाने में उनका भला हो सकता है। हमे दु ख हमारे मोह और स्वार्थ से होता है, आदि विचारो की शृखला बन गई। आनन्द-किशोरजी ने पूछा, "मिल बन्द कर दे ?" मैंने कहा, "काकाजी गए, पर उनके काम जैसे-के-तैसे चालू रहने चाहिए।" लेकिन यह उन्हे ठीक न लगा। मेरी भी आग्रह करने की वृत्ति नही थी। मिल बन्द कर दी गई।

लखनऊ से 'नेशनल हैरल्ड' द्वारा भी यही समाचार मिले। वर्धा, बम्बई, टलीफोन नही हो सके। मैंने तुरन्त वर्धा के लिए चल पडने का निश्चय किया। समय कम था, मोटर से रवाना हुआ। नहर का रास्ता सहूलियत का होने से उसी रास्ते जाने का तय किया। पूर्व-सूचना न दे सकने की वजह से रास्ते के दरवाजे बन्द मिलने की पूरी आशका थी। पर उसी रास्ते जाने से ही समय

पर पहुचने की सभावना हो सकती थी। मयांग से लगभग सभी दरवाजे खुले मिले। दो दरवाजे बन्द थे, उनके बगल से मोटर के निकल जाने की गुजाइश थी। ड्राइवर ने गाडी बडी तेजी और सावधानी से चलाई और काफी पहले लखनऊ ले आया। रिजर्वेशन हो चुका था। थोडा समय होने से, 'नेशनल हेरल्ड' के आफिस में चला गया, पर वहा से अधिक जानकारी नही मिली।

स्टेशन पर मालूम हुआ कि माता आनन्दमयी भी उसी गाडी से जा रही है। काकाजी उनके पास रह गए थे और उनके अशात मन को उनके पास रहने से शाति मिली थी। मै उनके डिब्बे में गया। उन्हे प्रणाम कर काकाजी के चले जाने के समाचार दिये। उनके साथियो मे भी दु ख का वातावरण छा गया। माताजी को विशेष आश्चर्य या दु ख नही हुआ। उन्हे शायद मालूम था कि वे जानेवाले थे। काकाजी के आग्रह पर इस तरह का इशारा भी उन्होंने काकाजी को किया था, यह काकाजी की डायरियो से बाद मे पता चला। माताजी ने कानपुर की टिकटे मगवाने का आदेशमात्र दिया था। कोई नही जानता था कि वे कहा जा रही है? मैंने उनसे प्रार्थना की कि वर्धा चले। उन्होंने इतना ही कहा कि जिधर मालिक की मरजी होगी, वही जाना होगा। लेकिन वर्धा फिर कभी आ जाने का वचन उन्होंने दिया। माताजी उस समय तो नही आई, पर दो-चार रोज बाद वर्धा आगई। उससे खासकर मा तथा हम सबको बडी तसल्ली रही और अच्छा रहा।

काकाजी के जानकार एक वयोवृद्ध सज्जन लखनऊ से ही उसी डिब्बे में सवार थे। भुसावल जा रहे थे। उन्हे तबतक कुछ भी पता नही था। मेरे मन में नाना प्रकार के सकल्प-विकल्प चल रहे थे। उनसे काफी बातचीत होती रही। मैंने उन्हे काकाजी के बारे में कुछ नही कहा।

दूसरे रोज अखबारो द्वारा उन्हे जानकारी मिली। वे रोने लगे। मुझे ही उन्हें तसल्ली देनी पडी। भुसावल से वे आगे चले गए, और गाडी बदलकर मैं वर्धा १३ तारीख की सुबह पहुचा। एक रिश्तेदार भुसावल से साथ हो लिये थे। वे खबर सुनकर इदौर से आ रहे थे। उन्होंने सिर के बाल दे दिये। मुझसे भी बाल देने का आग्रह किया। मैंने कहा, "बालो को देने से क्या होगा?"

उसी तरह घर पहुचा। सावित्री से मालूम हुआ कि सबकुछ हो चुका है। न तो उसे विशेष बोलने की हिम्मत थी, न मुझे ही कुछ पूछते बन पाता था। स्नान आदि करके सीधा गोपुरी गया। वहा माताजी तपस्विनी की तरह बैठी थी। उनको प्रणाम किया और लिपट गया। मन में डर था कि मा से कैसे मिलूगा? वहाका वातावरण देखकर मुझे बहुत अच्छा लगा और मेरा भी ढाढस बधा। होम, हवन, प्रार्थना, गीतापाठ आदि रोजाना बारहवे दिन तक बराबर चलते रहे। कुछ स्वामी अचानक उन्ही दिनो के लिए आगये थे। उन्होने होम, हवन आदि का कार्यक्रम बहुत अच्छी तरह चलाया। उन्हे न तो पहले हमने कभी देखा था, न बाद मे। पिताजी के फूल कैलास पर चढाने और मानसरोवर मे प्रवाहित करने के लिए लेकर वे अचानक चले गये। उसके बाद उनसे कभी मिलाप नही हुआ।

काकाजी चले गये। सारी वर्धा नगरी रो पडी। सारा देश विह्वल हो गया। बजाजवाडी के पीपल के बढते हुए वृक्ष को कटवाकर उसकी लकडिया रखी हुई थी। दादीजी के, जिनकी अवस्था उस समय अस्सी के ऊपर थी, तीनो लडके उनके सामने ही चल बसे। काकाजी उनके दूसरे लडके थे, पर जानेवालो में आखिरी थे। दादीजी से कहा करते थे कि मेरे लिए पीपल की लकडिया बटोर रखी है। तू निश्चित रह। वे लकडिया उन्ही के काम आईं। बडे दादा बच्छराजजी के समय के मगवाये हुए गगा-जल के कई हाडे थे, उन्ही में से एक बचा रह गया था। वह काकाजी के काम आया।

काकाजी ने कुछ महीनो पूर्व गोपुरी में घूमते समय एक स्थान पर खडे होकर अचानक मुझसे कहा था कि मेरी समाधि यहा होगी, और इशारा करते हुए कहा कि था कि यह बीच की और कुछ उठी हुई जगह है। इधर महिलाश्रम काकावाडी है, यह विनोबाजी की नालवाडी है, उधर बापू का सेवागाव है, उधर मगनवाडी है। बापू जब सेवाग्राम से वर्धा आते-जाते रहेगे तो यहा से मुझे उनके दर्शन होते रहेंगे। चारो तरफ मेरी नजर रहेगी। मुझे दुख था कि काकाजी की इस इच्छा को मैने किसी से व्यक्त नही किया था। मुझे क्या पता था कि मै ऐसा अभागा होऊगा कि उस आखिरी दिन उनके दर्शन मुझे

नसीब न होगे। मैंने गोला से वर्धा का टेलीफोन मागा था पर न मिला। समय जा रहा था, मैं अधिक ठहर नही सका। शाम होने आई थी। आनन्दकिशोर-जी से कहकर मुझे चला आना पडा। वर्धा आने पर पता चला कि दाग देने का जब सवाल खडा हुआ तो कई जगह सोची गई। मदालसा ने फिर उसी स्थान की सूचना की जो बापू आदि सभीको सुहाई। मदालसा को काकाजी की ही आत्मा ने प्रेरणा दी होगी ? अन्यथा उसको जानकारी नही थी। यह जानकर कि उनका दाग वही हुआ, मेरे सिर से एक भारी बोझ हट गया। पवित्र आत्माओ की इच्छा-पूर्ति ईश्वरीय प्रेरणा से ही होती है। हम उसको पूरी करनेवाले कौन ? यह विचार मेरे मन में घर कर गया।

•• •• ••

पूज्य काकाजी के वियोग ने मुझे जितना सावधान किया है उतना अपने जीवन में मैं कभी नही था। मेरे जीवन पर सबसे ज्यादा असर भी उन्हीका था। उनकी उपस्थिति में मै अपने निडर स्वभाव के कारण इतना निडर हो चुका था कि अपनी कमजोरियो से भी मै निडर रहता था। उनके छत्र के नीचे हमारी कमजोरिया दबी-छिपी और फूलती-फलती भी रहीं। वे ही थे जो हमारी कमजोरियो को सहन कर सकते थे। अब वे कमजोरिया नागवार होती है।

गुरुजनो के प्रेम और आशीर्वाद से यद्यपि हम लोग धीरज और शाति मे इस महान् आपत्ति को निबाह लेगये, फिर भी अपने-आपको हम लोग अभी भी नही सम्भाल सके है। मा की हिम्मत को देखकर तो हम सभी दग रह गये। यह उनकी हिम्मत थी कि जिससे हम लोग ही क्या, हरकोई कुछ समय के लिए भूल जाता था कि कुछ हुआ भी है। पू० काकाजी के बाद हममें भला कौन ऐसा है, जो उनकी कमाई हुई इज्जत को उसी मेहनत और चिंता के साथ बनाये रखे ? डर तो लगता ही है, परन्तु उन्होने जो काम किये, वे पूरे ही किये और इस तरीके से कर गये कि उनके बाद भी वे आसानी से चलाये जा सकें। मुझे तो पूरा विश्वास है कि उनके सारे काम उसी तरह से चलते रहेंगे, जिस तरह कि वे करते आये।

: १०० :

उनके जीवन का अंतिम ध्येय

जानकीदेवी बजाज

व्यक्तिगत सत्याग्रह मे भाग लेनेवाले का जेल से छूटने पर पुन जेल जाना आवश्यक था, लेकिन बीमार आदमी सत्याग्रह मे भाग नही ले सकता था। इस सत्याग्रह के प्रथम सत्याग्रही विनोबाजी चुने गये थे। इसके बाद तो एक-एक करके अनेक लोग जेल जाने लगे।

जमनालालजी का स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण उनको एक महीना पूर्व ही जेलवालो ने छोड दिया। बापूजी ने आराम करने को कहा, लेकिन उन्होने कहा कि मैं बिना काम किये कैसे रह सकता हू ? मुझे तो किसी-न-किसी काम मे लग ही जाना चाहिए। बापूजी ने कहा कि कम-से-कम जेल की अन्तिम अवधि तक तो यह मानकर आराम करो कि अभी जेल में ही हो, मुद्दत पूरी होने के बाद काम के बारे में सोचेंगे। इसके बाद बापू ने उन्हे राजकुमारी अमृतकौर के यहा शिमला भेजा। उनकी बडी भारी कोठी है। राजकुमारीजी जमनालालजी का बहुत खयाल रखती। उनको आराम मिले, इसलिए उन्होने जरूरत से ज्यादा व्यवस्था की, लेकिन जमनालालजी को सकोच होता कि राजकुमारीजी पर मेरा बोझ पड रहा है। बडी मुश्किल से किसी तरह पद्रह रोज निकाले। लेकिन जेल की अवधि समाप्त होने में तो अभी पद्रह दिन और बाकी थे।

जमनालालजी ने वहीसे बापू पर अपनी इच्छा प्रकट की, मुझे ऐसी आध्यात्मिक मा मिलनी चाहिए जो मुझे अपनी गोद में सुला सके। बात बडी विचित्र थी। और तो सबकुछ मिल सकता है, परन्तु मा कहा मिल सकती है ? बापू ने कहा, "पहाड-जैसे लडके को गोद में सुलानेवाली मा कहा मिलेगी ?" फिर भी बापू ने उनको लिखा कि शिमले से लौटते समय

देहरादून म कमला नेहरू की गुरु-मा आनन्दमयी से मिलते हुए आना। जमनालालजी लौटते हुए वहा गये। गये तो थे केवल दो घटे के लिए, पर रह गए दो दिन। वहा उनका मन लग गया। वहा के वातावरण से वह बहुत प्रभावित हुए। माता आनन्दमयी के पास उन्हे शाति और प्रसन्नता का अनुभव हुआ। उनकी चर्चा अत्यन्त सात्विक, प्रसन्न और तेजस्वी थी। वहा के धार्मिक और भक्तिपूर्ण वातावरण में जमनालालजी ने अपनी वृत्ति के अनुसार कर्मयोग का कार्य शुरू करवा दिया। माता आनन्दमयी से उन्होंने चर्चा की कि धार्मिक कार्यो के साथ गाधीजी के विधायक काम चलें तो बहुत अच्छा। माताजी ने इसे स्वीकार कर लिया। अब क्या था! वहा अब हिन्दी की कक्षाए, खादी का काम, चरखा आदि शुरू करवा दिये गए।

माता आनन्दमयी के पास हरएक भक्त एकात समय में आत्म-निवेदन करता था। एक दिन जमनालालजी ने भी समय मागा। उन्होंने कहा, "मा, क्या मैं आपकी गोद में सो सकता हू ?" माता आनन्दमयी ने कहा, "मा की गोद में सोने में क्या हर्ज है ?" बस जमनालालजी आखें मूदकर माताजी की गोद में ऐसे सो गये, मानो कोई प्रेत पडा हो। थोड़ी देर बाद आखें खोलकर उन्होंने कहा, "अगर इस समय मेरे प्राण भी छूट जाय तो कोई बात नही। मेरा अब किसी भी बात में मन नही रहा।" उनकी आध्यात्मिक मा की भूख आनन्दमयी की गोद में सोने से पूरी होगई। जमनालालजी ने माता से तीन बातो की माग की :

१. मेरी इच्छा है कि आश्रम के निकट जमीन लेकर मकान बनवाऊ, ताकि कोई कार्यकर्ता आराम तथा मानसिक शाति प्राप्त करना चाहे तो उसे भेजा जा सके।

२. मुझे 'सेठजी' के नाम से सबोधित न किया जाय, कोई छोटा-सा नाम हो।

३ मैं तभी जलपान करूगा जब आप बताओगी कि मेरी मृत्यु कब होगी।

पहली बात की स्वीकृति आसान थी, दूसरी बात की माग में माताजी

ने 'भैया' शब्द चुन लिया , लेकिन तीसरी माग बडी कठिन थी। माताजी ने कहा, "यो मृत्यु का समय तो किसीको बताया नही जाता। हा, आदमी को यह समझना चाहिए कि हर क्षण उसके सिर पर उसकी मौत खडी है।" इससे जमनालालजी का समाधान नही हुआ। बोले, "यह तो ठीक है, पर समय बताओ।" आखिर माताजी ने कहा, "छह महीने की तैयारी से काम करो।" इस वचन पर जमनालालजी को दृढ श्रद्धा होगई, ऐसा लगता है। उनकी डायरियो में मिलता है कि छह महीने तक वर्धा छोडकर नही जाना, रेल या मोटर मे नही बैठना। यह निर्णय उन्होने १५ अगस्त १९४१ से १५ फरवरी तक के लिए किया।

इन दिनो उनका आत्म-मन्थन बडी तेजी मे चल रहा था। वह व्यापारिक तथा अन्य कार्यों से निवृत्त होगए और अपनी व्यापारी बुद्धि के अनुसार ऐसा हिसाब बैठाया कि यदि इन छह महीनो में जाना पडा तो उसकी तैयार रहे। ऐसी साधना करें कि अधिक-से-अधिक समय पारमार्थिक कामो और चित्त-शुद्धि मे लगे और यदि आगे रहना पडे तो आदतें सुधर जायं। इसलिए घर-बार से निवृत्ति लेकर जीवन को ऐसे कामो मे लगाया, जिससे उनका आत्मीय भाव मूक प्राणियो तक बढे। इसीलिए उन्होने गो-सेवा को चुना। मानव-सेवा मे कही-न-कही कुछ सघर्ष होना सभव है। जमनालालजी सपूर्ण चित्त-शुद्धि में लग गए। हर क्षण का सदुपयोग करने के प्रयत्न में रहे।

जब उनकी जन्म-तिथि आती तब वह अपने पिछले साल का लेखा लेते और नए साल में पदार्पण करते समय अच्छे सकल्प करते। वे सकल्प पूरे हो, इसलिए प्रात काल की प्रार्थना के बाद गुरुजन के आशीर्वाद लेते। उसके बाद ही जलपान करते।

बापूजी की सलाह से जमनालालजी ने गो-सेवा का कार्य अपने लिए पसन्द किया और 'गो-सेवा-सघ' की स्थापना करके वह उस काम में लग गए। उन्होंने अपने-आपको इस काम मे इतना तल्लीन कर लिया कि उन्हें गो-सेवा के सिवा दूसरे काम की बात ही नही सूझती थी। यों गो-सेवा-सघ की स्थापना अक्तूबर १९४१ मे हुई थी और उसके वह अध्यक्ष

बने थे, पर उसकी तयारी तो उन्होंने इसके पहले ही कर ली थी।

वे चाहते थे कि अपना बचा हुआ जीवन प्राचीन ऋषियों की तरह कुटिया में वितावें। इसलिए एक कुटिया गोपुरी के पास बनाकर रहना चाहते थे, जहा रहकर वे गो-सेवा और आत्मचिंतन मे समय वितावे। उन्होंने कुटिया बनाना शुरू करा दिया था और ताकीद कर दी थी कि वह जल्दी-से-जल्दी बन जाय।

रात को उनको जल्दी उठने की आदत थी। एक रोज वह ३ बजे उठे और लालटेन लेकर शौच गए। उनके हाथ मे लालटेन गिर गई और उसका काच टूट गया। इसपर उन्हें बहुत दु ख हुआ। उन्होंने उस रोज अपनी डायरी में लिखा—"मै कैसा आदमी हू कि मेरे द्वारा दूसरे को कष्ट होता है, मेरा बोझ दूसरे पर होता है!" जमनालालजी को इन दिनो दूसरों का भी बहुत खयाल रहता था। वह किसीका जरा भी नुकसान बरदाश्त नही कर सकते थे। जरा भी भूल होती तो उसका उनके मन पर बहुत असर रहता था।

जैसी-तैसी अधूरी बनी झोपडी में दूसरे दिन ही वे रहने चले गए। उन्हे पूरा एकान्त चाहिए था। इसलिए मैं भी डरती हुई वहा उनके पास रहने नही गई, क्योंकि मैं उनके खाने-पीने की या आराम की चिंता करू, यह उनको बरदाश्त नही होता था। वहा उन्होंने अपने पास 'कौसल्या' नाम की एक गाय रक्खी थी। हाथ-मुह धोकर वे उसकी सेवा करते, उसके बदन को सहलाते। फिर वह अपनी मा के पास चले जाते और उनकी गोद मे अपना सिर रखकर भजन सुनते और डायरी लिखते। उसके बाद प्रार्थना करके घूमने जाते। घूमते हुए सबसे मिलते, सुख-दुख की बात पूछते और जिससे खास बात करनी होती, उसे साथ ले लेते। इस प्रकार रात-दिन जमनालालजी का चिन्तन गो-सेवा-संबंधी कामों का ही चलता। कोई व्यापार की बात करता तो कहते—"मेरे साथ व्यापार की बात मत करो।"

कुटिया का नाम 'जानकी-कुटीर' रक्खा था।

इसी बीच गंगाकृष्ण खादी के काम से सीकर जाने लगा तो मैं भी उसके साथ चली गई। वहां से जमनालालजी का नया जीवन-क्रम देखकर

मन कुछ खिन्न रहने लगा था। मैं उनके काम में सहयोग तो दे नहीं पाती थी, इस कारण मन के बहलाने के विचार से ही सीकर गई थी।

कुछ दिन बाद रामकृष्ण (सबसे छोटा पुत्र) लेने आया। मैं वापस वर्धा पहुंची।

मेरे लौटने पर जमनालालजी बड़े खुश हुए और हंसकर बोले, "जानकी-जी, आगई!" उन दिनों जमनालालजी नेत्र-यज्ञ तथा गो-सेवा-सम्मेलन के कामों में व्यस्त थे। मैं बंगले पर रहने लगी। एक दिन वह बोले—"तेरा क्या मन है? सेवाग्राम बापू के पास जाना हो तो वहां जा सकती हो। कुटिया पर आना हो तो कुटिया चलो।" मैंने कहा, "मैं तो कुटिया में चलूंगी।" जमना-लालजी बोले, "ला, अपना बिस्तर टमटम में रख।" मेरी तो मनभाती बात होगई। जल्दी-जल्दी बिस्तर लपेटकर मैंने टमटम में रखा और गोपुरी पहुंच गई। हम दोनों वहां पांच रोज ही साथ रह पाये।

कुटिया में पहुंचने पर जमनालालजी को किसी तरह कष्ट न हो या अशांति न हो, इसका मैं पूरा ध्यान रखने लगी। वह जल्दी उठते थे, मेरी आदत कुछ देर से उठने की थी। वह उठ जाय और मैं सोती रहूं, यह अच्छा नहीं, इसलिए मुझे ठीक से नींद न आती। हमेशा यही खयाल बना रहता कि कहीं वह उठ तो नहीं गए। इसलिए मैंने उनसे कहा कि आप उठ जाया करें तो मुझे भी उठा दिया करें। तबसे वह उठने पर मुझे जगा देते। मैं भी उठ-कर जैसा वह करते, करने लगती। मेरा मन किसी काम में लगा रहे, इस खयाल से गो-सेवा के लिए आये हुए एक साधु से उन्होंने कहा कि जानकी-देवी को सितार सिखा दो। मैं सीखने लगी, लेकिन जमनालालजी रात-दिन गो-सेवा के काम में ही लगे रहते थे।

गो-सेवा के कार्य को और बढ़ाने की दृष्टि से जमनालालजी ने बापूजी की सलाह से एक 'गो-सेवा-सम्मेलन' का आयोजन किया। सम्मेलन सफ-लतापूर्वक हुआ। उसमें सारे हिंदुस्तान से लोग भाग लेने आये।

इस सम्मेलन के तीसरे दिन ही उनकी जीवन-लीला समाप्त होगई।

: १०१ :

अंतिम झांकी

मातादीन भगेरिया

वर्धा में ३१ जनवरी को मिलते ही मुंह और कंधे पर दो-चार दुलार के चपत लगाकर वे बोले—"अकेला ही आगया न! केसर (लेखक की पत्नी) को नहीं लाया! अब सजा मिलेगी। जितना अवकाश निकालकर आया है उससे दुगुने दिन यहां खदेड़ूंगा। अच्छा, हाथ-मुंह धो लिया, पेट साफ होगया? दूध ले चुके? ठीक, तो आज नालवाड़ी, मगनवाड़ी, महिलाश्रम वगैरा सब जगह घूम लो। शाम को मेरे साथ कुटिया तक घूमने चलना है।"

उन दिनों वे वर्धा के बाहर नालवाड़ी के पास एक झोंपड़े में कर्मशील वानप्रस्थ की जिन्दगी बिता रहे थे। रात के ९ बजे सोकर सुबह ढाई-तीन बजे उठ जाते। शौचादि से निवृत्त होकर नियमित प्रार्थना और गीता-पाठ द्वारा भक्ति की भीख से अन्तर की झोली भर लेते। ब्राह्म वेला में, प्रभु के लीलाजिर नीलाम्बर पर अरुण उषा के आने के पहले ही, जब सुकेशा मायारानी की सहेली रात, कलशमंजूषा के मोतियों से चौक पूरकर, हरि-चरणों में बैठी मन्द मलयानिल का पंखा झलती है, ऐसे पुण्यकाल में वह भगत सेठ प्रार्थनामय हृदय के अरघे से विनय-अर्घ्य देता हुआ, सुधा-संचय करता था। सुबह चार बजे जब मैं उनको छोटे-से काठ के तख्ते पर छोटी-सी लालटेन के क्षीण प्रकाश में ध्यानस्थ पाठ करते देखता तो सोचता—लाखों की मिल्कियतवाला सेठ क्या यही सीधा गरीब आदमी है? किन्तु अपने सरल, तरल और अकिंचन हृदय के सहारे ही वह लाखों के धन का ट्रस्टी अपने गुरुतर भार को कर्तव्य-दृढ़ कंधों पर झेल रहा था। पर बोझा तो था ही और मन भी जैसे दबा रहता था। निर्बलता भी थी, पर निर्मल व्यवहार की उर्वरा भूमि को पाकर वह पंजर प्राण की हरियाली

के हरे-भरे खेत का प्राणद बल बनने में गतिमय थी। कई बार वैराग्यमयी अध्यात्म-भावनापूर्ण त्याग के प्रेरणात्मक संदेश दे जाती थी।

•• •• ••

मृत्यु के पहले दिन की सन्ध्या को मैं उनके साथ घूम रहा था। उस दिन, दिनभर रात के नौ बजे तक मैं उनके साथ रहा था। शाम को घूमते हुए मेरी कुछ घरेलू बातचीत के सिलसिले में अपरिग्रह की चर्चा चल पड़ी। सहसा मैंने एक कठोर सवाल कर डाला। उन्होंने दृढ़ता से पर तनिक वेदना-भरे स्वर में जो कहा, उसे मैं क्या, शायद ही कोई आजीवन भूल सके। वे बोले—"मैं सोचता हूं, तुम्हारे मन में यह पुराना सवाल रहा है, तुमने जयपुर में ही क्यों न पूछा? पर आज तुम्हें सब बताऊंगा। महावीरप्रसाद पोद्दार तो इस संबंध में बहुत जानते हैं। तुमने कभी जानना चाहा ही नहीं। एक-दो बार कामकाज के बारे में तुमसे बात हुई भी, पर तुमने विशेष उत्साह नहीं दिखाया। आज तुमने पूछा, मुझे खुशी हुई। किस युक्ति के आधार पर मेरा मन संग्रह को झेल रहा है? पूरी तरह तो मुझे खुद भी नहीं मालूम है, लेकिन तुम विश्वास मानो, मुझे धन से मोह तो कभी नहीं रहा, आर्थिक निर्बलता तो रही है। मुझे कई लाख सालाना की आय भी रही है। जहांतक बना मैंने खुले-दिल से दिया है।" मुझे खुद अब अपने सवाल से तकलीफ होने लगी थी। अतः बीच में ही मैं बोल उठा—"बस अब रहने दीजिए। मुझे आपकी लगभग सब बातें मालूम हैं।" वे बोले—"नहीं, तुम्हें पूरा नहीं मालूम हो सकता। अखबारों या सुनी-सुनाई बात से तुम्हारी जानकारी है। यह समझ लो तुम्हारी जानकारी के अलावा भी बहुत-सी बातें हैं। फिर किसी दिन मुझसे या महावीरप्रसाद से तुम्हें जान लेना है। जब तुम मेरे इतना नजदीक आगये हो तो मेरा बुरा-भला सब तुम्हें मालूम होना चाहिए। इन दिनों संग्रह का सवाल मुझे भी कुछ तंग करने लगा था। पिछले दिनों मैंने जायदाद का एक सेटिलमेंट किया है। कानूनी कठिनाई बहुत थी, वरना मेरी इच्छा तो उसे और भी काफी उदार करने की थी।" और फिर उन्होंने संक्षेप में अपनी जायदाद की व्यवस्था का ब्यौरा बताया और

जैसे कुछ अपने ही से कह रहे हों कुछ और भी बोले। मैंने कभी पहले किसी भी विषय की बातचीत में उनको अबकी तरह ज़रा-सा कम व्यावहारिक नहीं पाया था। इस व्यवहार-कला के आचार्य की शील-पटुता तो इनके सभी परिचितों में एक कहावत की चीज़ है। पिता की-जैसी उनकी हार्दिक व्यावहारिकता, उनकी स्पष्टवादिता, सरलतामयी तेजस्विता, तो उनकी अपनी विशेष निधि थी। पर मेरे सवाल ने जैसे उनके मर्म-स्थल को छू दिया हो। जैसे सोच रहे हों, इस मायात्मक अर्थ की उलझन-भरी परिस्थितियों में अध्यात्म को—परमार्थ को—किसी भी तरह मन में फिट करने की तुष्टि पा सके। पर जनक का राजघराने में पैदा होना और पैदा होकर राज-काज चलाना उनका अपराध था या कसौटी? धन-बल-वैभव से दुराचरण की क्षमता और सुविधा पाकर भी जो मनीषी प्रवृत्ति के इति पक्ष का दमन करता रहकर, नेति पक्ष के शून्य अंक तक जीवन को ले जाने के प्रयत्न में अनवरत गतिशील रह सके तो वह सबके साधुवाद का पात्र क्यों न होगा? जिस युवक सेठ को व्यवहार-कुशलता, प्रतिभा, प्रभुता और यौवन के रहते हुए भी गांधी-शरण सच्ची लगे और जो इस भक्ति के निजत्व को भूलना सीख सके, वह भक्त के अलावा और क्या चीज़ है? और अनवरत लोक-कार्य एक भयंकर कसौटी है, ऐसी कि जो महामनीषी को भी कभी-कभी विचलित कर दे। जमनालालजी के धन ने उनको कम कष्ट नहीं दिया। अनेक आजतक उनपर शंकाशील रहे हैं। सच्चे ही नाना अर्थ ढूँढ़ता रहा, पर जनता तो औषध-रूप में शोधित ज़हर को भी त्याग-मार्ग पर ज़हर की ही संज्ञा देती है। मानो इस रास्ते पर माफ़ी उनके कोष में है ही नहीं। पर लगता है, जैसे भक्त की चरम शुद्धि के लिए कल्याणमयी भगवद्-इच्छा जनता की इस दोष-दर्शन-भावना में प्रतिबिम्बित है। आखिर धोबी-रात के सीता-जैसे महात्याग का कारण बना, मानो विधि की साध-सीख की झोली, राज-त्याग और वनवास-जैसे हीरों को पाकर भी भरी नहीं।

ज़रा देर में तार से पता चला कि श्री बाल भाई येक पूज्य बापूजी से मिलने सेवाग्राम जायँगे। वे बोले— इसी सिलसिले में नेहरूजी का संदेश

लेकर डाक्टर लोहिया आ रहे हैं। वे भी तुम्हारे 'गाधी-मानस' की चौपाइया सुनेंगे। चलो, सबको न्योता दे आयें। आज महिलाश्रम में सब लोग तुम्हारी गाधी-रामायण सुनेंगे।" फिर तो वे खुद जाकर शांतिबाई, मदालसाबाई आदि को 'गाधी-मानस' सुनने का न्यौता दे आये और अपने इहजीवन की उस अंतिम रात को नौ बजे तक 'गाधी-मानस' सुनते रहे। उनको इस 'मानस' से अगाध प्रेम था। पहले दिन श्री विनोबाजी से मेरे लिए 'मानस' सुनाने को एक घटे का वक्त माग लाये थे। उस अंतिम रात को मुझसे बोले—"कल तुम गेस्ट हाउस से मेरे पास शिफ्ट कर लेना।" पर कहा! हमारे दुर्भाग्य से वे अकेले ही न जाने कहा शिफ्ट कर गये! निधन के पहले दिन तीसरे पहर उनके कहने से मैंने श्रीमती जानकीदेवी को 'गाधी-मानस' सुनाना आरंभ किया था, पर 'मानस' की पाण्डुलिपि को खोलते ही ऐसा प्रसग निकला, जिसे याद करके अब हृदय स्तब्ध रह जाता है। देखा, पूज्य गाधीजी सद्य विधवा वासती को चित्तरंजनदास के निधन पर सान्त्वना में कह रहे हैं—"बहन, तुम्हें क्या सान्त्वना दू ? पर पति-पद-चिन्हों पर चलती हुई सुधन्वा-सी आजीवन सत के तप्त कडाह में तपती हुई सती होती रहो। पतिव्रते, तुम्हें शाश्वत सतीत्व की योगाग्नि का चिर सौभाग्य मिले।" किसने सोचा था, काकी (जानकीदेवी) जैसी स्नेह-विनोदमयी गगा-सी निर्मल पतिपरायणा को कल बापू उन्ही सत के झलमल जलते अंगारों पर अपने हाथों बिठाने आयगे—सती-धर्म का सहज अर्थ बताने आयगे!

मेरी इन्ही आखों ने उन पतिपथानुगामिनी अनुरागमयी गुणाभरणा अर्द्धांगिनी को उस ब्राह्ममुहूर्त में पतिदेव की चरण-धूलि लेते देखा था। उनके साथ बैलगाडी में, कुटिया में, सभा में, प्रार्थना में, घूमने-फिरने में, अति दुख-सुख में आनन्द और तुष्टिपूर्वक विचरते देखा था। परम तोष की निश्छल हँसी हँसते, सरल विनोद करते और खेलते-डोलते देखा था, और पति की दिन-रात की अथक कर्मशीलता, कठिन कार्यव्यग्रता तथा इसी कारण होने-वाली स्वास्थ्य की थोडी-सी उपेक्षा के कारण भी प्रेम-कातर हृदय से अति दुखित होते देखा था। इनका पति के लिए अपार स्नेह अबाध बहता रहता

था। उनके स्वास्थ्य और आराम की वे सतत जागरूक पहरेदार रही और दूसरे दिन इन्हीको प्राणाधिक पति के शव के पास बैठे भी और चिता से चरण-धूलि की जगह भस्म उठाकर माथे पर लगाते भी मेरी इन्ही आखो ने देखा! इन जानकी और उस कीमती शव को देखकर मुझे भवभूति के राम-जानकी याद आगये। जो सीता राजमहल में पति-चरणो मे बैठी थी, सास कौशल्या आदि के शृगी ऋषि के आश्रम में एक-दो दिन के लिए जाने मात्र पर उनकी विरह-कातरता से राम की सन्निधि मे भी विकल हो रही थी, सहसा उन्हीको दूसरे दिन लक्ष्मण एकाकी, बीहड, विजन विपिन में राघव के आदेश मे छोड आये!

मैं सेठजी की वृद्धा माता को नालवाडी से चीत्कार करते शव के पास लाया था। मैंने देखा, सेठजी (अब भी मुझे प्रत्यय नही कि वह उनका शव था) गाढी नीद में सफेद खादी की चादर ओढे सो रहे थे। सिरहाने स्तब्ध महोदधि मे गौरवगिरि बापू बैठे थे। बापू के दाए, शव की बगल में सहज गभीर तपस्वी विनोबा, मानो अपने हृदय से किसी भाति जूझ-जीतकर अव-तरित गाभीर्य से बैठे थे। बाए, विकृता-विवरणा अस्त-व्यस्त बुत-सी जानकीदेवी बैठी थी। जैसे उनका रोदन, हृदय, इहलोक-परलोक सब सूख चुका था। मानो परिस्थिति की असलियत को उनकी इन्द्रिय ग्रहण न कर पाकर शून्य-बिन्दु तक पहुच चुकी हो। वह कलवाली विनोदिनी नारी गाय की-सी करुण-कातर वाणी में कह रही थी—"बापूजी, मैं क्या करू?" पर्वत-से बापू का हृदय तो विदीर्ण-सा होगया था। पर इस एकाकी, महाप्राण, प्रभुपथ के बटोही ने अपनी वज्रनिष्ठा की लाठी के सहारे ही चलना पाया था। द्वन्द्वान्दोलित भयावह भव-नीरधि में श्रद्धा-शतदल के एक पल्लवमात्र पर प्राणो की पलथी मारकर निश्चिन्त बैठा हुआ, यह महावीर वृद्ध, सहस्र फनो के कालिया नाग को देखकर भी प्रेमावेश मे नम्र मुस्करा देता है। वेदना के हलाहल को अमृत-रागिनी में बदलकर, मन के इकतारे मे अविराम सजीवन लय झरकाता रहता है। उस भैरव ने शव के पास ही विधवा जानकीदेवी का सर्वस्व दान स्वीकार कर लिया।

महादरिद्र और कई अबोध बच्चों की मा विधवा कत्तिन के कौडी-पैसे के अग्नि-दान को भी यह पचा जाता हूं!

फिर जरा देर पीछे शव नीचे लाया गया। बापू सेठजी की वृद्धा मा का हाथ और कलेजा थामे आधे घटे तक बैठे रहे। बाहर जनता की भीड आसू बहा रही थी। भीतर बजाज-परिवार की महिलाए, बालक, युवक, वृद्ध, परिचित, मित्र और रिश्तेदार आसू बहा रहे थे। बिडलाजी, किशोरलालभाई गभीर चिन्ता-व्यस्त थे। कमरे के दरवाजे के पास खडे महादेवभाई की आखो से रह-रह आसू निकल रहे थे। शव चला, फूल बरसे, दल-बादल पुरुष, महिला, बालक, नगे पाव पीछे भाग रहे थे। रास्ते में छतो पर दोनो ओर दर्शनार्थी भीड की कतार लगी थी। तिरगे झण्डे की छाया में अरथी चल रही थी। स्नेही बारी-बारी से कन्धा लगा रहे थे। सारा वर्धा सजल सरिता-सा साथ-साथ बढ रहा था। महिलाश्रम की छात्राए अन्तर्भेदी राग में 'राम धुन लागी, गोपाल धुन लागी' गा रही थी।

आखिर गोपुरी में सेठजी की प्यारी कुटिया के सामने दाह-सस्कार हुआ। चिता के चारो ओर भीड से बचाने के लिए चक्राकार बास बधे थे। उस व्यूह में महारथी का अवशिष्ट पच-भूतो में मिलाया जा रहा था। सेठजी की मा को बेहोशी की शातिप्रद गोद में सुलाकर बापू जानकीदेवी को हाथ से थामे, चिता के सामने निश्चल चित्त से दाह के अत तक खडे रहे थे। एक प्रेम की चिता बापू के हृदय में धू-धू करके जल रही थी। एक चिता क्या, सहस्र हृदयो में सहस्र चिताए थी। उस पावन चिता की लपटो से न जाने कितने हृदयो का कलुष स्वाहा हो रहा था। अपना लोहे-सा एक हाथ पीठ पर धरे और दूसरा हृदय पर धरे, वेद-मत्र से तप पूत विनोबा खडे हुए, शात स्थिर और मधुरवाणी से उपनिषद् और गीता गान कर रहे थे। आखिर सबको वहा से जाना पडा। झलझल करते चिता के अगारे, पता नही किस लोक का पावनकारी अग्नि-सन्देश देते हुए आकाश की ओर देख रहे थे। स्थितप्रज्ञ बापू प्राणोपम बेटे को जलाकर सेवाग्राम गये। जानकीजी वही कुटिया में, उसी तख्त पर जिसपर कि आज सवेरे उन्होने पति-चरणो में

प्रणति की थी, पड़ रही। मित्र, रिश्तेदार, बेटियां, बेटे वहीं पड़े कलपते-बिलखते रहे। गीता से शांति-शोध की—सान्त्वना की—व्यर्थ कोशिश होती रही। रात को विनोबा फिर आये, पर सामने चिता के अंगारे थे।

वहीं सुबहवाली कुटिया तो थी। सब परिचित चीजें—वह लम्बी-सी लुटिया, किताबें, कपड़े, तिपाई, कुर्सी, मेज ज्यों-के-त्यों जमे थे। विश्वास आता ही नहीं था कि जमनालाल अब सामने के अंगारों के अवशिष्ट-जैसी चीज ही रह गये थे। कैसे मान लें कि वह छ फुट लम्बा, शांत, पुष्ट, गंभीर राजर्षि-सा निर्मल देह, जो इन मसनद के सहारे, इस तख्ते पर, इस कुर्सी पर ऐसे प्रार्थना करता, ऐसे बैठता था, अब सामने की राख-मात्र रह गया है! वह तो नयनों में, कुटिया में, गलियों में, इधर-उधर, यह बैठा, वह चला, सभी जगह तो दिखाई दे रहा है। नहीं, वह गया नहीं है, यहीं कहीं आंखों से ओझल हो गया होगा!

उस रात को कुटिया में क्या, वर्धा में कौन सोया? नहीं, कौन सोया की गिनती शायद आसानी से हो सके, पर प्रातःकाल तो हुआ ही। पर वह सुबह वर्धा में किसकी रात का था? कौन जाने? उस स्नेह-प्राण का कौन शत्रु होगा? कोई हो भी तो, उस काल को प्रभात अपना उसने नहीं माना।

आज भी सदा की तरह वह नन्दिनी गाय आई, जिसकी सेवा-चाकरी, मालिश प्रतिदिन वह अपने हाथों किया करते थे, गरीब गाय की आंखें कुछ खोजती रह गईं—दूसरी मुमूर्षु-सी पतिपरायणा गाय जानकी पति का काम करने गो-माता के पास आई, मालिश का ब्रश उठाकर साहसमयी ने एक-दो हाथ चलाने की कोशिश की और धड़ाम-से नीचे गिर पड़ी। सेठजी का फूलचयन और यह सब इन आंखों ने देखा, पर विश्वास अब भी नहीं कि काका चल बसे हैं।

जानकीजी को वे सदेह गोपुरी का वास दे गये! ज्ञानी कहते हैं—वे गये नहीं, पर प्रतिमा-पुजारी मन सन्तोष नहीं पाता, उसे राम चाहिए, राम-चरित-सौरभ नहीं।

: १०२ :

महाप्रस्थान के बाद

प्यारेलाल

बुधवार, ११ फरवरी को दोपहर बाद करीब तीन बजे यकायक फोन पर गांधीजी से कहा गया कि जमनालालजी को खून के दबाव का दौरा हुआ है और ११० व २५० डिग्री दबाव के बीच वे बेहोश पड़े हैं। खून के दौरे को उतारने के लिए जो दवा गांधीजी लिया करते हैं, वह डाक्टरों ने तुरन्त मगाई थी और उसके लिए एक मोटर भी रवाना की थी। मोटर के आते ही गांधीजी दवा के साथ उसपर सवार होकर वर्धा रवाना हुए। सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला भी, जो कार्यवश उन दिनों यहीं थे, उनके साथ गये। मोटर में बैठते-बैठते गांधीजी के मुह से अचानक यह उद्गार निकला, "अगर वे जिन्दा न मिले तो बड़ा ही दुर्दैव होगा।" परन्तु उनके सहज आशावाद ने यहां भी उनका साथ न छोड़ा। उन्होंने इसी सिल-सिले में फौरन कहा, "मगर मुमकिन है कि हम उन्हें वहां हमेशा की तरह हँसते-खेलते ही देखें।"

लेकिन जमनालालजी तो उनके वर्धा पहुचने से पहले ही गोलोकवासी बन चुके थे। जिसने सुना, वही स्तब्ध रह गया। किसीको विश्वास ही न होता था, क्योंकि न तो उनकी उम्र ही अभी इस लायक थी और न तन्दुरस्ती ही इतनी खराब थी कि वे अचानक चले जाते। उस दिन दोपहर को बारह बजे तो वे फोन पर हमसे बातें कर रहे थे। वही हंसी, वही मीठा मजाक। सेवा की अभी उन्हें बड़ी-बड़ी उमगें थीं। पिछले दिनों जब नागपुर-जेल में हम सब साथ थे वे अक्सर बातचीत के दौरान में मुझसे कहा करते थे, "ऐसा कोई काम या प्रवृत्ति मुझे चाहिए, जिसमें मैं सारी शक्ति और समय लगाकर देश की सेवा कर सकू।" इसी दरमियान एकाएक तबीयत खराब

हो जाने की वजह से, वे अपनी मियाद के कोई पाच-छ हफ्ते पहले ही जेल से रिहा कर दिये गए। रिहा होते ही वे एक सत्याग्रही सिपाही के नाते सीधे गांधीजी के सामने हाजिर हुए। हुक्म मिला कि अबतक सजा की मुद्दत पूरी न हो, दुबारा सत्याग्रह करना मुनासिब न होगा। यह वक्त तन्दुरुस्ती को संभालने में खर्च होना चाहिए। अतएव स्वास्थ्य-सुधार के विचार से वे करीब एक महीने शिमला रह आये और जिस दिन उनकी नौ महीने की सजा की मुद्दत पूरी होती थी, ठीक उसी दिन वापस गांधीजी के पास आ पहुचे। बहुत सोच-विचार के बाद गांधीजी ने तय किया कि उनके शरीर की जर्जरित अवस्था देखते हुए उन्हें फिर से जेल जाने की इजाजत तो वे न दे सकेंगे। चुनांचे उन्होंने जमनालालजी को गोसेवा का काम उठा लेने की सलाह दी, और जमनालालजी किसी काम को आधे दिल से तो कभी करते ही न थे। जिस चीज को हाथ में लेते थे, उसके पीछे अपना सर्वस्व लगा देते थे। वे तुरन्त गोसेवा के व्रतधारी बन गये। वर्धा और नालवाडी के दरमियान उन्होंने अपने रुपयों से बहुत-सी खुली जमीन खरीद ली और उसपर अपने लिए घास-फूस की एक कुटिया बनाकर उसीमें रहने लगे। फिर क्या था? जमनालालजी थे और उनकी गोसेवा थी। रात-दिन उसीकी लगन, उसीकी धुन! सचमुच गोसेवा को उन्होंने अपने लिए 'मोक्ष का साधन' ही मान लिया था। ऐसा मालूम होता था मानो वसिष्ठ की नन्दिनी के इस वरदान को उन्होंने अपने जीवन का सूत्र बना लिया हो—"न केवलाना पयसः प्रसूतिमवेहि मा कामदुघा प्रसन्नाम्।" अर्थात्—यह न सोचो कि मैं केवल दूध ही दे सकती हू, मैं कामधेनु हू, प्रसन्न हो जाऊ तो जो चाहू, दे सकती हू।

इसलिए जब उनके अग्निदाह का प्रश्न उठा तो गांधीजी ने उसके लिए गोपुरी की भूमि ही पसन्द की। वहीं उनकी अर्थी पहुचाई गई। वर्धा की अधिकांश जनता तो उन्हें अपने पिता के रूप में देखती थी। शाम के वक्त उनकी शव-यात्रा के साथ सारा शहर गोपुरी में उमड़ पड़ा। वहीं गांधीजी भी जमनालालजी की अस्सी वर्ष की वयोवृद्ध माता, पत्नी जानकीदेवी और अन्य कुटुम्बीजनों के साथ आये। अतिशय स्नेह और आदर के

साथ उन्होंने जमनालालजी की सूनी कुटिया के कोने-कोने की यात्रा की।

गाधीजी के लिए यह कोई साधारण अवसर न था। जमनालालजी के कुटम्बियो के लिए तो यह अग्निपरीक्षा का समय था ही, किन्तु स्वय गाधीजी के लिए भी यह एक कडी कसौटी का समय था। गाधीजी का अपना यह जीवन-सिद्धान्त रहा कि आदमी खुद जो कहता या करता है, उससे उसकी इतनी जाच नही होती, जितनी उसके कहने या करने से उसके अपने निकट के साथियो और कुटुम्बियो के आचरण पर पडनेवाले प्रभाव से होती है। इसलिए जमनालालजी के स्वर्गवास के बाद, ईश्वर के भेजे हुए इस वज्र-पात का जवाब उनके कुटुम्बीजन किस तरह देते हैं, इसीमें उन्होंने उनकी और अपनी परीक्षा समझी। एक ओर उन्होंने जमनालालजी की माता को दिलासा दे-देकर शान्त किया, दूसरी ओर जानकीदेवी को, जो 'सती' होने के विचार से चिता पर बैठने को तैयार थी, 'सती' का सच्चा अर्थ समझाया और उनसे चिताग्नि की साक्षी में पति के अपूर्ण कार्य को पूरा करने के लिए अपना सर्वस्व दे देने और शेष जीवन यज्ञ-बुद्धि से बिताने का सकल्प कर-वाया। श्री विनोवा तो वहा थे ही। कुष्ठ-रोग से पीडित श्री परचुरे शास्त्री भी अपनी रोगशय्या छोडकर सेवाग्राम से पैदल गोपुरी आये थे और वहा मौजूद थे। विनोबाजी के और शास्त्रीजी के मन्त्रोच्चार की ध्वनि से सारी गोपुरी गूज उठी। श्रीमती अम्तुल सलाम ने 'फातेहा' पढा, कुरान की कुछ आयतें पढी। इतने मे काफी अधेरा होगया। चिता धू-धू जल रही थी। थोडे ही समय मे जमनालालजी का भौतिक शरीर जलकर भस्म-स्वरूप बन गया, किन्तु चिताग्नि की लाल-नीली लपटो के उस प्रकाश में जब सब लोग विसर्जित होकर अपने-अपने घर लौटे तो बजाय शोक या रुदन के सबके चेहरो पर सती के पुण्य सकल्प की झलक ही नजर आई। ऐसा प्रतीत होता था मानो सब अपने किसी महानुभाव साथी को किसी लम्बी पुण्य-यात्रा के लिए विदा करके उसके पदचिह्नो पर चलने का निश्चय लिए लौट रहे हो।

• •　　　• •　　　• •

उस दिन सेवाग्राम लौटने पर शाम की प्रार्थना के बाद गाधीजी ने

आश्रमवासियों के सामने सारी घटना का वर्णन करते हुए अपने हृदय के जो उद्गार प्रकट किये, श्री महादेवभाई के शब्दों में उनका सार इस प्रकार है—

"सवाल यह था कि अग्निदाह कहा किया जाय—सेवाग्राम के पास टीले पर, सार्वजनिक स्मशान-भूमि में या गोपुरी में? आखिर यह तय हुआ कि जिस गोपुरी को उन्होंने अपना घर बनाया था, जहा अपने जीवन के अंतिम कार्य के लिए अपना सर्वार्पण करके उन्होंने फकीरी को अपनाने का निश्चय किया था, अग्निदाह भी वहीं किया जाय। मैं इस बारे में तटस्थ था, लेकिन मुझे यह निर्णय अच्छा लगा।

"उनके शव के साथ हजारो लोग गोपुरी तक आये। अग्निदाह के बाद विनोबा ने अपने मधुर कण्ठ से सारे-का-सारा ईशोपनिषद् सुनाया। फिर मैंने उनसे 'गीताई' का बारहवा अध्याय सुनाने को कहा, ताकि वहां उपस्थित सब लोग उसे समझ सकें। बारहवा अध्याय मैंने इसलिए सुझाया था कि वह छोटा है, किन्तु उन्हें तो अठारहों अध्याय जबानी याद है, इसलिए उन्होंने सबा सुनाया। मगर उतने से मुझे तृप्ति नहीं हुई। मैंने कहा, "कोई अभग सुनाओ।" इसपर उन्होंने तुकाराम का एक अभग भी सुनाया। अन्त में मैंने कहा, "अब 'वैष्णव जन तो तेने कहीये' भी सुना दो।" उन्होंने वह भी सुनाया। श्री परचुरे शास्त्री वहा पहले से ही पहुच चुके थे। उन्होंने वेद-मन्त्र पढे और मेरे कहने पर लोगों को उन मन्त्रो का अर्थ भी सुनाया। मन्त्र बडे अर्थ-गभीर और सामयिक थे। थोडे में उनका सार यह था—'जो ज्योति जमनालालजी में सीमित थी, वह अब सीमारहित विश्व ज्योति में समा गई है, यानी हम सबमें आ मिली है। शरीर तो मिट्टी का था, मिट्टी में मिल गया। परन्तु उनमें जो शाश्वत था, मगर एक सीमा में बधा हुआ था, वह अब हम सबका होगया है। जबतक जीवित थे, जमनालालजी कुछ ही लोगों के थे, किन्तु अब वे सारे विश्व के बन गये है। उनके शरीर का अन्त हुआ है, किन्तु उनके व्रत, उनकी प्रतिज्ञाए, उनकी गोसेवा, उनकी खादी-सेवा, सत्य और अहिंसा की उनकी लगन, ये सब तो अब हममें आकर

हमारी विरासत बन गई है। उन्होंने इन सब व्रतो को सिद्ध करने के लिए जो कुछ भी किया, सो सब तो अब हमारा है ही, लेकिन जितना कुछ वह अधूरा छोड गये है, उसे पूरा करने का जिम्मा भी हमारा है। अपनी मृत्यु द्वारा वे आज हमें यही सिखा गये है।

"आज हमे विचार तो यह करना है कि हम उनकी जमीन पर बैठे है। सेवाग्राम के लिए उनके मन में कितना अनुराग था, सो मैं जानता हू। यहा एक-एक कौड़ी उन्हीकी खर्च होती है। उन्हें इस बात की चिन्ता रहती थी कि यहा खर्च होनेवाली एक-एक पाई का ठीक-ठीक हिसाब रहता है या नही, क्योंकि वे खुद अपनी कौडी-कौडी का हिसाब रखते थे। वे हमेशा इस बात का आग्रह रखते थे कि सेवाग्राम का कोई आदमी बाहर जाय तो उसका बर्ताव और उसकी रहन-सहन सेवाग्राम को शोभित करनेवाले होने चाहिए।

"जानकीदेवी के दु:ख की तो सब कल्पना कर सकते है। वे तो पागल ही होगई थी। कहती थी, 'बस, मुझे तो इनके साथ सती होना है। इनके बिना मैं जी ही नही सकती।' मैंने कहा, 'यह न समझो कि इस तरह सती होने से लोग तुम्हारी पूजा करेंगे। इससे तो उल्टे निन्दा होगी। हा, अगर कर सको तो योगाग्नि पैदा करो और उसमें भस्म होकर सती हो जाओ। न मैं तुम्हें रोकूगा और न दूसरा ही कोई तुम्हे रोक सकेगा, लेकिन वह तो सभव नही। इसलिए मैं तुमसे कहता हू कि अब तो उनके पीछे जोगिन बनकर ही तुम्हें सती बनना होगा!' घनश्यामदासजी पास ही थे। उन्होंने कहा, 'हमारे यहा तो ऐसे मौको पर कोई शुभ सकल्प करने का रिवाज है। जानकीदेवी से ऐसा कोई सकल्प कराइए।' जानकी बाई ने खुद ही कहा, 'मेरा सकल्प तो यही है कि वे मेरेलिए जो कुछ छोड गये है, सो सब मैं उनके काम के लिए अर्पण करती हू।' उन्होंने मुझे अपना हिसाब भी बताया, दो-ढाई लाख की रकम थी। यह सब उन्होंने गोसेवा के लिए अर्पण कर दी। इसके बाद जब वह चिताग्नि के प्रकाश में खडी थी, मैंने एक और बात भी उनसे कही। मैंने कहा, 'सिर्फ इससे काम न चलेगा।

अपना सारा घन कृष्णार्पण करके तुम भिखारिन बन गई हो। अब लडके तुम्हें खिलायगे तो तुम खाओगी, और नही खिलायगे तो मेरे पास आ जाओगी और मेरे भिक्षान्न में शरीक हो जाओगी। लेकिन इसके साथ ही अब तुम्हें इस चिता की साक्षी में अपने-आपको भी इसी काम के लिए समर्पित कर देना है। अब तुम्हे अपने लिए नही, बल्कि जमनालालजी के इस गोसेवा-कार्य के लिए ही जीना है। अब न तो लडको का घर तुम्हारे लिए है, न लडकियो का। तुम्हें या तो गोपुरी में रहना है, या मेरे पास सेवाग्राम में। तीसरी जगह तुम्हारे लिए नही। और चूकि तुम अपना सर्वस्व इस कार्य के लिए दे रही हो, इसलिए अब शोक करने का भी कोई अधिकार तुम्हें नही रह जाता।' जानकीदेवी ने इसे भी स्वीकार किया और स्वयं जमनालालजी की गोपुरी मे गड जाने का निश्चय कर लिया। इस तरह वे सच्चे अर्थ में सती बनी। यह सब शुद्ध वैराग्य से हुआ है, या श्मशान-वैराग्य ही है, सो तो समय ही बतायगा। वह खुद पूछती थी, 'क्या ईश्वर मुझे यह सब करने की शक्ति देगा?' विनोबा वही थे। उन्होने कहा, 'जहा शुभेच्छा होती है, वहा ईश्वर उसको पूर्ण करने की शक्ति भी देता ही है।' इस-पर मुझे महारानी विक्टोरिया की याद हो आई। राजगद्दी पर बैठते समय उनकी उम्र सिर्फ १९ बरस की थी। जब उनका प्रधान मत्री रानी के रूप मे उनको सलाम करने आया तो वह अपने सिंहासन से नीचे उतर आई और वृद्ध प्रधान के आगे सिर झुकाकर खडी होगई। जब उनके राज्याभिषेक की घोषणा की गई तो उन्होने ईश्वर से प्रार्थना की और प्रतिज्ञा ली—'आई विल बी गुड'—अर्थात् मैं भली बनूगी। बस, यह उनका एक शुद्ध सकल्प था, जो उनके मत्रियो की सहायता से चमक उठा। हिन्दुस्तान की वह सम्राज्ञी थीं। यह मैं नही कहता कि उनके राज्य मे हमें कोई तकलीफ ही नही हुई, फिर भी इतिहास इस बात का साक्षी है कि वह अपने उस शुभ सकल्प के अनुसार अपनी प्रजा की सेवा करना चाहती थी। जो काम उन्होने किया, वही जानकीदेवी भी कर सकती है। वे गोसेवा का सारा काम अपने हाथ में लेकर उसे पूरी तरह सफल बना सकती है।

"मैं फिर कहता हू कि हमें हमेशा यह याद रखना होगा कि हम जमना-लालजी की भूमि पर बैठे हैं। हमें उनके नाम को सुशोभित करना है। ऐसा कोई काम हमारे हाथों न हो, जिससे उनकी कीर्ति मे बट्टा लगे। उनकी शुद्ध कमाई को हमें खूब सोच-विचार कर खर्च करना चाहिए और एक-एक पाई का हिसाब रखकर हमेशा अपव्यय मे बचना चाहिए। उनका सयम हमारे लिए मार्ग-दर्शक हो।"

किन्तु गाधीजी को इससे भी सतोष नही हुआ। उस रात वे एक मिनट भी नही सो पाये। मुझे याद नही पडता कि इससे पहले कभी किसी प्रियजन की मृत्यु पर उन्होंने इस तरह सारी रात आखो में काटी हो।

सत्यशोधक को तो हर बात में अपना रास्ता दुनिया से न्यारा ही निकालना पडता है, और जमनालालजी ने तो गाधीजी से सत्यशोधक बनना ही सीखा था। गाधीजी ने सत्य की ही तलाश में अपने परिवार का त्याग किया और सारी दुनिया को अपना परिवार माना। जमनालालजी ने जगत की सेवा को अपना जीवन-कार्य बनाया। यही वह अमर गाठ थी, जो दोनो को एक-दूसरे से जोडे रही। इसलिए गाधीजी ने बडी खूबी के साथ जमनालालजी की मृत्यु के शोक को एक नया ही रूप दे दिया।

जमनालालजी अकेले एक व्यक्ति ही नही थे, वे सच्चे अर्थ में देश की एक सस्था थे। उनके आकस्मिक स्वर्गवास के बाद गाधीजी ने तय किया कि उनकी तमाम सार्वजनिक प्रवृत्तियो को पहले की तरह अखण्ड रूप से चलाते रहना ही उनका सच्चा स्मारक हो सकता है। इस हेतु को सफल बनाने के लिए उन्होंने जमनालालजी के करीब दो सौ ऐसे मित्रो को, जिन्हें उनके जीवन-कार्य से सहानुभूति थी, अपनी सही से निमत्रण भेजकर सलाह-मशविरे के लिए वर्धा बुलाया। जमनालालजी के राष्ट्र-भाषा-प्रचार के सिद्धात को ध्यान में रखकर निमत्रण-पत्र हिन्दी और उर्दू दोनो लिपियो में छापा गया। वर्धा के नवभारत विद्यालय मे २० और २२ फरवरी को दोपहर बाद इस निमित्त आये हुई भाई-बहनो की दो सभाए हुई। इस अवसर पर गाधीजी ने जो भाषण दिया, वह अपनी मिसाल आप ही है। उनके मुह से

ऐसे वचन, इस प्रकार के अवसर पर शायद पहले कभी सुनने में नहीं आये। रुपये-पैसे द्वारा ईंट-पत्थर का स्मारक बनाने की बात को छोडकर जमना-लालजी की मृत्यु को आत्मोन्नति का और उनके जीवन-कार्यों को आगे बढाने का एक साधन बना लेने की सलाह देते हुए उन्होंने वहा एकत्र मित्र-मडली से कहा, "आज का-सा अवसर मेरे जीवन में इससे पहले कभी नहीं आया था और जहातक मैं सोच पाता हू, आगे भी कभी नही आवेगा।

"अपना भिक्षा-पात्र लेकर मैं आपके सामने खडा तो हू, लेकिन मैं धन-दौलत की भीख नही चाहता। वैसी भीख भी मैंने अपने जीवन में खूब मागी है। गरीबो की कौडी और अमीर के करोडो की मुझे जरूरत रही है। लेकिन आज जो काम मुझे करना है, उसमे रुपये-पैसे की कम ही जरूरत है। अगर मैं चाहता तो आज के दिन जमनालालजी के सब धनिक मित्रों को यहा इकट्ठा करके उनपर दबाव डाल सकता था, उनकी खुशामद कर सकता था और उनकी भावनाओ को द्रवित करके थैलियो के मुह खुलवा सकता था। यह धधा भी मैंने अपने जीवन में जीभरकर किया है, और वह मुझे अच्छी तरह आता भी है। लेकिन अगर वही सब आज मै यहा करने बैठता तो उस व्यक्ति के नाम को बडा धब्बा लगता, जो मुझे अपना सर्वस्व देकर चल बसा है—जो मेरे पास आया तो मेरी परीक्षा लेने था, मगर पुत्र बनकर बैठ गया, औरा मेरा सारा बोझ उठाता रहा। मुझे जो भिक्षा आज आपसे मागनी है, वह तो यह है कि जमनालालजी के उठ जाने से आज जो बोझ बढ गया है उसको उठाने में कौन-कौन मेरी मदद करेंगे। अकेले एक आदमी की मदद से नही चलेगा, मदद तो सबको मिलकर देनी होगी और काम बाट लेना होगा।

"जमनालालजी की आख बन्द होते ही मैंने उनके बोझ का बटवारा शुरू कर दिया है। आप देखेंगे कि जमनालालजी के कामो की जो फहरिस्त आपको भेजी गई है, उसमें उनके आखिरी काम को पहला स्थान मिला है। यह काम स्वराज्य-प्राप्ति के काम से भी कठिन है। स्वराज्य मिलने से यह अपने-आप नही हो जायगा। यह सिर्फ पैसे से होनेवाला काम नही।

मैं इस बात का साक्षी हू कि आजीवन अलौकिक निष्ठा से काम करनेवाले उस व्यक्ति ने किस अपूर्व निष्ठा से इस काम को शुरू किया था। उन्हे इस तरह काम करते देखकर एक दिन सहज ही मेरे मुह से यह निकल गया था कि जिस वेग से वे इस काम को कर रहे है, उसको उनका शरीर सह सकेगा या नही ? कही बीच ही में वह धोखा तो न दे जायगा ? आज मेरा यह कथन भविष्यवाणी साबित हुआ है—मानो उस समय भगवान् ही मेरे मुह से बोल रहे थे। साराश यह कि यह काम पैसे से नही, एकनिष्ठा से ही होनेवाला है।"

दूसरे दिन सभा की कार्रवाई शुरू करते हुए गाधीजी ने कहा—

"अगर जमनालालजी की मृत्यु से हम फायदा उठाना चाहते है तो हमे बहुत ज्यादा सावधान बनना होगा, बहुत ज्यादा सयम और त्याग सीखना होगा।

.. . ..

"मैं अक्सर सोचता हू कि अगर हममे से हरएक को एक साल के फौजी अनुशासन का तजरबा रहता तो आज हमारी हालत कुछ और होती। जमनालालजी किसी फौजी विद्यालय में तालीम लेने नही गये थे। मगर उन्होने खुद अपनी कोशिश से अपने अन्दर फौजी अनुशासन के गुण पैदा कर लिये थे। वैसी ही तालीम हममे से हरएक को खुद ले लेनी होगी।

.. ..

"इसलिए कल मैंने अपने से यह तय कर लिया था कि अगर इस मौके पर पैसा इकट्ठा करने के बजाय मैं आपको सावधान कर पाऊ तो वही मेरा सच्चा व्यापार होगा। मै फिर आपसे कहता हू कि आप अपने दिल को खूब टटोलकर देखिए और जहा-कही जडता नजर आये, उसे उखाड़ फेंकिए। और भविष्य के लिए यहा से यही सकल्प करके उठिए कि जो अच्छी सलाह आपको मिलेगी या अन्तर से जो प्रेरणा उठेगी, उसके अनुसार आप तुरन्त काम मे जुट जाया करेंगे। जमनालालजी के स्मारक की सच्ची स्थापना का इससे अच्छा या महत्वपूर्ण आरभ और क्या हो सकता है?"

●

अमृत-पुत्र

सोहनलाल द्विवेदी

एक ओर तन मे जजीरे, हाथो मे है हथकड़िया!
पावो मे बेडिया, दूसरी ओर जलन की है घड़ियां!
घाव न भर पाते है पहले, और घाव होते जाते,
चले जा रहे गोद छोडते लाल, तोड़ते ही नाते,

गगा रोती और त्रिवेणी,
रोता सारा राष्ट्र विशाल !
यमुना रोती यही पास मे
खोकर अपना जमनालाल !

आज बनी जननी भिखारिणी, जिसका प्राण समक्ष चला,
कसी जजीरो से रियासतो के जन-गण का पक्ष चला,
चला आज अपना सेनानी, गढ का प्रहरी दक्ष चला,
क्यो न काग्रेस हो गरीबिनी ? जिसका कोषाध्यक्ष चला !

बापू दुखी, जवाहर व्याकुल,
राष्ट्र-ध्वजा है झुकी हुई,
वेणी लुठित, वाणी कुठित,
चरणो की गति रुकी हुई,

किंतु अमर हम, अमृत-पुत्र हम, मर-मर जीनेवाले है,
एक जन्म क्या ? जन्म-जन्म, शिव बन विप पीनेवाले है,
जबतक राष्ट्र बना है बदी, बनी बदिनी है माता,
टूट नही सकता रे तबतक, उस सेनानी का नाता,

उसका नाता, जो कि देश की आजादी का बना फकीर,
राजमहल को छोड जा बसा, जहा दलित की दीन कुटीर।
उसका नाता, जो कि राष्ट्र की लोहे की जजीरो में
बधा स्वय भी जाकर, लख मा बधन की प्राचीरो मे
उसका नाता, लिया न जिसने सेवा का कोई सम्मान,
पद को माना विपद्, होगया मातृभूमि पर बढ वलिदान।

है विश्वास हमे आवेगा,
आवेगा माई का लाल
यमुना दुखी न हो रो-रोकर
आवेगा फिर जमनालाल।

परिशिष्ट

मेरी आकांक्षा

विवाह-अनुष्ठान

[अनेक महत्वपूर्ण विषयो पर जमनालालजी ने समय-समय पर अपने जो विचार प्रकट किये थे उनके चुने हुए अश उन्हीके शब्दो मे नीचे दिये जा रहे है।

—सम्पादक]

'बाई कमला के नेगचार मे तथा विवाह-मकलावे में फिजूल खर्च बिल्कुल नही होना चाहिए। कमला के विवाह में भंडारा (पत्तल) नही करना चाहिए। जिनके माथ मम्बन्ध किया जावे उन्हें पहले से निवेदन कर देना चाहिए। अगर योग्य लडका वनिक घर का नही ही मिले तो अपने विचार मे मिलते हुए माधारण स्थिति के खानदानी कुल के लडके के साथ मवध कर दिया जावे।

(मृत्युपत्र, १८ अप्रैल १९१६ ई०)

'बालको के विवाह, मगाई आदि मे बन सके वहातक पू० महात्माजी के ध्येय का विचार किया जावे। अगर कई कारणो से असभव मालूम हो तो फिर योग्य वर या कन्या देखकर बहुत ही सादगी के साथ किये जावें। अगर पुत्र पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन कर आजन्म देश-सेवा करनेवाला हो तो फिर देखना ही क्या है।'

(मृत्युपत्र, १५ मार्च १९२१ ई०)

'अगर परमात्मा की दया मे लडके आजन्म ब्रह्मचारी रहना पसन्द करें तो मेरे घर के व ट्रस्टी मित्र उन्हें अवश्य उत्साहित कर आजन्म ब्रह्मचारी रह सकें, ऐसा प्रबन्ध शिक्षण व सगत का कर दे। लडकियो में से भी अगर कोई आजन्म कुमारिका (ब्रह्मचारिणी) रहना चाहे तो अवश्य उसका उत्साह बढाया जावे तथा उसके मुताबिक प्रबंध कर दिया जावे।'

(मृत्युपत्र, कार्तिक शु० ११, १९८९ वि०)

सामाजिक विचार

'मेरे धार्मिक तथा सामाजिक विचार नीचे लिखे मुताबिक आज हैं। मेरी प्रबल इच्छा है कि इन विचारो का हो सके वहांतक मेरे घर में काम पडने पर अमल किया जावे।

धार्मिक व सामाजिक—पू महात्माजी के विचार मुझे पसन्द है। मैं तथा मेरे घर के बालक अगर उन्हें अपने जीवन में ला सकेंगे तो अवश्य लाभ (कल्याण) होवेगा, ऐसा विश्वास है। खासकर सत्य, अहिंसा, अन्त्यजो के साथ व्यवहार तथा सेवा, विधवा-विवाह (जो लडकी ब्रह्मचर्य-पालन में असमर्थ हो)।

> नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
> कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

'यह सामने रखकर व्यापार तथा अन्य कार्य करने का प्रयत्न करना चाहिए।

'मृत्यु का खर्च, बिरादरी-ब्रह्मपुरी न की जावे। घर-शुद्धि हवन आदि से कर ली जावे। पचायत कम की जावे। विवाह में धार्मिक क्रिया आदि करने का खयाल रखा जावे।' (मृत्युपत्र, कार्तिक शुक्ल ११, १९८९ वि०)

'ऊंच-नीच का भेद हिन्दू-धर्म और संस्कृति के विपरीत है। हिन्दूधर्म तो सबमें एक ही आत्मा के निवास का—"घट-घट में वह राम रमैया" का सिद्धान्त सिखाता है। नीच वह है जो कुकर्म करता है—ऊंच वह है जो सुकर्म करता है। कोई ऊंच या नीच किसीके बनाये नही बनता। अपने कर्मों से अपने-आप बनता रहता है। हम मनुष्यों को चाहिए कि हम कोई ऐसी रीतियां व प्रणालियां न चलायें, न कायम रहने दे, जिनमें कोई मनुष्य कृत्रिम रूप से ऊंच या नीच ठहराया जाता हो।'

वाणिज्य-व्यवसाय

'मेरे बाद व्यवसाय-कार्य बन्द कर दिया जावे। अगर व्यवसाय-कार्य

किया ही जावे तो वह सत्यता के साथ व जिस व्यवसाय से देश को पूरा लाभ पहुचता हो वही करना चाहिए। बाकी बन सके वहातक व्यवसाय के झगडे में न पडकर आत्म-शुद्धि के व्यवसाय से ही जीवन बिताने की चेष्टा करना, मेरे पीछे रहनेवालो को मेरी सलाह है। साधारण खर्च-निबाह पूरना व्यवसाय-उद्योग उपरोक्त सिद्धान्त के अनुसार करते रहने से वैश्य-धर्म का पालन भी हो सकेगा तथा आत्मोन्नति करने निःस्वार्थ भाव से देशकार्य भी हो सकेगा।' (मृत्युपत्र, १५ मार्च, १९२१ ई०)

शिक्षा

मेरे बालको की शिक्षा का प्रबंध महात्मा गाधीजी का आदर्श रखते हुए जिससे कि भविष्य में निःस्वार्थ भाव से देशसेवा करे, आदर्श सत्याग्रही तथा त्याग के साथ इस मायावी ससार से सानन्द विचर सके इस तरह के बनाने में, मेरे ट्रस्टी, खासकर मेरी धर्मपत्नी, करे। मेरी राय में सत्याग्रह-आश्रम-सरीखी सस्था में रखकर ही शिक्षण की व्यवस्था की जावे तो ठीक। मेरे इस भारत देश में, खासकर मेरे कुटुम्ब के सच्चे सत्याग्रही जितने ज्यादा हो सकें उतने ज्यादा बनाने का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।'

'बालको का शिक्षण सत्याग्रह-आश्रम, साबरमती, वर्धा या इसी प्रकार के कोई उच्च ध्येय तथा चरित्र-बलवाले तपस्वी सज्जन कार्य करते हों वहा रखकर देने का प्रबन्ध करें।' (मृत्युपत्र, कार्तिक शु० ११, १९८९ वि०)

दान

मेरी जीवन-बीमा पालिसी की रकम १६-४-१९०९ ई० को, वसूल होने पर मारवाडी विद्यार्थियो के व्यवसाय-सबधी शिक्षण-कार्य में अथवा उक्त समय पर और कोई अधिक जाति-हित का कार्य हो उसमे स्थायी रूप से लगाया जावे।' (मृत्युपत्र, २९ अगस्त १९१४ ई०)

'मेरे स्मारक के लिए मारवाडी शिक्षा-मडल-कमेटी, वर्धा को रुपये एक लाख नगद या स्थावर-जगम स्टेट ट्रस्टी लोग समझे उस तरह दे दे। इमारत अथवा स्कालरशिप के कार्य के लिए कमेटी जैसा उचित समझे वह कार्य करें। मेरी इच्छा तो उससे अधिक रुपये मडल को देने की है। सो ट्रस्टी लोग उस वक्त का मौका सब तरह से देखकर अगर ज्यादा दे सकें तो ठीक ही है, नही तो इतनी रकम तो अवश्य दें।'

(मृत्युपत्र, १८ अप्रैल, १९१६)

'मेरे बाद मेरे हिस्से के रुपये या स्टेट मे से कम-से-कम बारह आना हिस्सा महात्मा गाधी के सिद्धान्त के अनुसार सत्याग्रहाश्रम, साबरमती, वर्धा तथा अन्य जो जगह अगर सीकर राज्य मे सभव हो तो वहापर उप-रोक्त प्रकार का आश्रम खोलकर खर्च किया जावे, अथवा मासिक सालाना के तौर पर भी जिस तरह करने में आदर्श सत्याग्रह-आश्रमो को विशेष लाभ पहुचे, वैसा किया जावे।' (मृत्युपत्र, १५ मार्च, १९२१ ई०)

'मेरे बाद जो कुछ स्थावर-जगम जायदाद रहे वह मेरे अधूरे रहे हुए काम में उचित समझे वह रकम या स्टेट लगावे। मुझे सबसे प्रिय काम तो खादी-प्रचार का है, दूसरा अन्त्यज-उद्धार का है तथा हिन्दी-प्रचार है, परन्तु हिन्दी-प्रचार में तो और भी सहायता मिलना सभव है, इसलिए खादी-प्रचार व अन्त्यज-उद्धार में ही जो कुछ लगाना हो वह लगाया जावे (बहुमत के अनुसार)।' (मृत्युपत्र, कार्तिक शुक्ल ११, १९८९ वि०)

राजनीति

उत्तरदायित्व

'हमारे स्वराज्य पाने के ये सब प्रयत्न इसीलिए जरूरी है कि हम अपने वर्तमान जीवन से ऊब उठे है और नवीन जीवन के सुन्दर स्वप्न देख रहे है। उस भव्य और दिव्य जीवन का निर्माण सर्वथा हमारे हाथ में है। हम जैसे

होंगे वैसा ही हम समाज और जीवन बनायगे। इसलिए हमारी—चाहे हम अधिकारी या राजवर्ग में आते हों, चाहे शासक या जनता के वर्ग में—जिम्मेदारी सबसे बढकर है। ईश्वर हमें उसके योग्य बनने का बल दे और अवसर दे।'

राजाओ से

'हमारे राजा-महाराजाओ से मैं निवेदन करूंगा कि वे दिल से भी सचमुच ही राजा-महाराजा की तरह ऊंचे और महान् बनें। अपनी प्रजा की मांगो पर विचार करें, साहस के साथ और बिना किसी बात को दिल में रखे शासन-सुधार की दिशा मे आगे बढें और उन्हे स्वराज्य (Self-Government) वास्तविक रूप में दें, न कि उसकी छाया। यह अक्लमन्दी है कि वे स्वेच्छापूर्वक झुकें और प्रजा के वास्तविक अधिकार और माग क्या है, इनको समझने की स्पिरिट से उन्हे सौंपें, बजाय इसके कि वे इस मामले में अपनी अनिच्छा बतायें और आखिर में हालात से मजबूर होकर ही कुछ दे।'

प्रजामण्डल

'मेरी यह शुरू से राय रही है कि देशी राज्यों में यदि कुछ भी राजनैतिक सुधार या अधिकार पाने हो तो उसका अच्छा उपाय स्थानिक प्रजामण्डल स्थापित करना है। जबतक प्रजा या जनता का बल अन्दर से नही बढाया जावेगा तबतक बाहर की या ऊपर की सहानुभूति और सहायता एक हदतक ही काम दे सकती है, बल्कि कई बार तो उल्टा साधक की बजाय बाधक भी बन जाती है।

.. .. ..

हम शासन की व समाज की त्रुटिया जरूर बतायें और उन्हे दूर भी करें। लेकिन उनसे ज्यादा जरूरी है कि खुद अपनी त्रुटियो को भी देखें और उन्हे दूर करते रहें।

साहित्य

हिन्दी-साहित्य

'हमारा साहित्य हमारे लोक-जीवन की झांकी है, हमारी सभ्यता और

संस्कृति का शीशा है। जीवन परिवर्तनशील है। साहित्य अमर है। हमने अभी ऐसा अमर और मौलिक साहित्य बहुत कम रचा है। आज बंगाल अपने साहित्य पर गर्व कर सकता है, परन्तु राष्ट्रभाषा के हिमायती भी संसार को कुछ मौलिक विचार भेंट करने के अरमान तो रखते हैं। हमारे लेखकों और साहित्यकारों की इज्जत न केवल भारत में बल्कि तमाम मुल्कों में हो और हमारे साहित्य से संसार में हमारा सर ऊंचा रहे, यह हमारी पवित्र अभिलाषा है।'

भाषा

हिन्दी-उर्दू

'संस्कृति के संगठन की बात कहते समय मुझे हिन्दी और उर्दू के मेल-मिलाप की बात भी याद आ जाती है। हमें अपनी अलग-अलग संस्कृतियों का एकीकरण करना होगा और उन सबके अमृत-मंथन से हमारी एक आदर्श संस्कृति का निर्माण होगा। इसलिए अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है हिन्दी और उर्दू का ऐक्य। दोनों पक्ष के विद्वानों से मेरी दरख्वास्त है कि वे एक दूसरे के नजदीक आने की कोशिश करें। अपने भीतरी मतभेदों और विचारों की खाई और चौड़ी न करें। जरा-सी समझदारी से हम अपने बीच के मतभेदों की खाई को पाट सकते हैं और हमारे इत्तिफाक का असर सिर्फ हमारी सामाजिक और राजनैतिक कठिनाइयों को हल करने पर भी नहीं होगा, बल्कि एक ऐसी संस्कृति बनाने में भी सहायक होगा, जो मनुष्य-जाति के लिए आदर्श हो सकती है।'

राष्ट्रभाषा

'देश की शक्ति बढ़ाने में साहित्य और शिक्षा का स्थान कितना महत्व-पूर्ण है, इसका मुझे खयाल है। इसलिए शिक्षा-शास्त्री और साहित्य-सेवियों के साथ प्रेम और मित्रता का संबंध जोड़ने की मैं हमेशा से कोशिश करता आया हूं। लेकिन साहित्य न तो मेरा क्षेत्र है, और न साहित्य-सम्मान हासिल करने की मुझे कभी इच्छा या आशा ही रही है। हां, मुझे बचपन से हिन्दुस्तान के लिए एक राष्ट्रभाषा की तो आवश्यकता जरूर मालूम होती है—खासकर

१९०६ की ऐतिहासिक कलकत्ता-कांग्रेस के समय से। मैं इस कांग्रेस में शरीक हुआ था। स्व० दादाभाई नौरोजी की सदारत में उस कांग्रेस का सारा काम अक्सर अंग्रेजी में ही हुआ जो मैं बहुत कम समझ पाया था। उस समय मन में ये विचार आये कि यह कितने दुःख और चिंता की बात है कि हिन्दुस्तानी होते हुए भी अपने ही देश में हमें आपस में एक विदेशी भाषा द्वारा काम-काज करना पड़ता है।'

• •• ••

'जनता की सेवा करते-करते आज २५-३० साल के तजुरबे से मैं यह साफ देखता हूं कि बिना राष्ट्रभाषा के प्रचार के हमारा लोक-संगठन हो ही नहीं सकता। हमारी संस्कृति का रक्षण और विकास रुक जाता है।'

•• • ••

'हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हिन्दी ईमान की भाषा है, प्रेम की भाषा है, राष्ट्रीय एकता की भाषा है और आजादी की भाषा है। यह सब ताकत हिन्दी में प्रकट करने की जिम्मेवारी हम सभी की है।'

•• •• ••

'भारत के कोने-कोने में राजस्थानी, गुजराती कच्छी और मुसल्मान लोग व्यापार करने के इरादे से जाकर बस गये हैं। इनकी बोल-चाल की भाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी होने के कारण वे जहां-जहां गये, वहां जान या अन-जान में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रभाषा का कुछ-न-कुछ प्रचार हुआ ही है। अफसोस तो इस बात का है कि आज भी हमारे प्रांतीय और अन्तर-प्रांतीय तिजारती कारोबार में हमें अंग्रेजी का सहारा लेना पड़ता है। अगर हमारे व्यापारी मित्र विदेशी भाषा की गुलामी से ऊपर उठकर राष्ट्रभाषा में अपने कारोबार चलाने का इरादा कर लेंगे तो उनको सहूलियत होगी और राष्ट्रभाषा के प्रचार का पुण्य भी वे हासिल कर सकेंगे।'

लिपि

'भाषा के साथ-साथ लिपि के बारे में भी हमें एक-दूसरे के प्रति उदारता और सहिष्णुता से काम लेना होगा। माना कि देवनागरी लिपि ही वैज्ञानिक

हैं, फिर भी हिन्दू विद्वानो का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे अरबी लिपि का अध्ययन करे और मुसलमान आलिमो का भी यह फर्ज हो जाता है कि वे देवनागरी को अपनावें। इसमें कोई बडी मुसीबत या दिक्कत पेश आनेवाली नही है।'

पत्रकारिता

'अखबारवालो का स्मरण होते ही मुझे एक खयाल आता है। हमारे लोगो ने बडी योग्यता से अग्रेजी में अखबार चलाकर देशी भाषाओ की प्रतिष्ठा बहुत-कुछ घटा दी है। आज अगर जनता की भाषा को कोई अधिक-से-अधिक अपमानित करते है तो वे हमारे ही देशी अखबारवाले है, जो भाषा में करीब-करीब अग्रेज ही बन गये हैं। अब तो नन्हें-नन्हे बालको के लिए भी अग्रेजी में पत्र निकालने तक की नौबत आ पहुची है।

'इससे भी ज्यादा खेद की बात तो है हिन्दी के अखबारो मे पाया जाने वाला सुरुचि का अभाव। बहुत-से अखबार ऐसे है, जिनके विज्ञापन इतने गन्दे होते है कि हम अपनी बहिन-बेटियो के हाथ में उन्हे देने मे हिचकिचाते है। इस बहते हुए गन्दे प्रवाह को रोकना होगा। मेरी प्रार्थना है कि देशभर के देशी भाषाओ के अखबारवालो को अपना एक जबरदस्त सगठन बनाना चाहिए और देशी समाचार-पत्रो की योग्यता बढानी चाहिए।'

.. .. ..

'मुझे पूरा विश्वास है कि निस्स्वार्थ भाव से जन-सेवा करते रहने से ही शीघ्र मोक्ष प्राप्ति हो सकती है। अगर मुझे कोई यह कहे कि इस तरह देश-सेवा करनेवालो को सौ जन्म में भी मोक्ष प्राप्ति नही होगी, तो भी मुझे कोई चिन्ता नही होती। एक प्रकार से आनन्द ही होता है। पवित्रता के साथ जन-सेवा करते-करते कई जन्म भी हो जावें तो क्या फिक्र? केवल विचार मनुष्य को इस बात का ही रखना चाहिए कि कही वह माया-जाल में फंसकर मनुष्य-जन्म के आदर्श को न भूल जाय और अभिमान में प्रवृत्त होकर इन नर-देह का पतन न करे।'

'जिन कर्मचारियो व कुटुम्बियो ने ईमानदारी और स्वार्थ-त्याग से मेरा

सेवा तथा व्यवहार किया है उनसे नम्रतापूर्वक यही निवेदन करूगा कि अब वे अपना भविष्य का जीवन इस मायावी ससार मे आजतक जैसे बिताते आये, वैसे बितावें। और यह नर-देह बहुत ही पुण्य कर्म से प्राप्त होता है, ऐसा जानकर सत्य को ही मुख्य धर्म और जन-सेवा को ही मुख्य कर्म समझकर अपने जीवन का परिवर्तन कर दें। . इस तरह अगर वे चलेंगे तो एक दिन अवश्य जीवन-मरण से छूट जावेंगे और परमात्मा की ज्योति में मिल जावेंगे। महात्मा गाधीजी के जीवन को आदर्श माने इतना निवेदन कर फिर उनकी आत्माओ से क्षमा प्रार्थना करता हुआ परमात्मा से प्रार्थना करता हू कि उन सबको अवश्य सद्बुद्धि प्रदान करे।

'मेरे पूज्य व परम स्नेही मित्रो से अब मैं ज्यादा नही कहना चाहता। कारण, मेरे कई मित्रो के कारण ही अगर मैं थोडा-बहुत मनुष्य कर्त्तव्य समझ सका हू तो समझा हू। उन्हे कोई बात कहना विनय का खून करने के समान है। मैं केवल उनसे नम्रतापूर्वक माफी चाहूगा और उनकी सगति से जो लाभ मुझे पहुचा है उसके लिए परमपिता से यही प्रार्थना करता हू कि उसका प्रतिदान उन्हे मिले।

'मेरे भारत के होनहार बालको तथा नवयुवको! तुम्हारी बालकपन की व जवानी की उम्र बहुत ही जोखम मे भरी हुई है, इसलिए उस उम्र को आदर्श, सच्चरित्र महानभावो के सग से व उपदेश से बिताना अपना धर्म समझो।'

दो स्मरण

(विनोबा)

आज जमनालालजी का सातवा पुण्यदिन है और गाधीजी की मृत्यु का तेरहवा दिन है। ऐसा यह एक योग श्रद्धालु मनुष्य के ध्यान में आता है। जानकीदेवी ने याद दिलाई कि जमनालालजी से अतिम बार मिलने के लिए आज के दिन और इसी समय गाधीजी यहा आये थे। उसी तरह गाधीजी के देह की रक्षा सेवाग्राम से आज यहा पहुच गई है। मतलब इतना ही है कि उन दोनो महापुरुषो के जीवन एक दूसरे मे समरस होगये थे। आज के इस योग से यह सिद्ध करने की जरूरत नही है। उनके जीवन ही यह बताते है।

गाधीजी यहा—वर्धा—आकर पद्रह साल रहे। उन्हे लाने का श्रेय जमनालालजी को ही है। जहा-जहा से जो-जो पवित्रता वर्धा में लाई जा सकी, जमनालालजी लाये। वे भगीरथ की तरह यहापर गगा लाये और वर्धा को एक क्षेत्र बनाया। यहा जो अनेक सस्थाए दिखाई देती है वे सब जमनालालजी की ही कृति है। गाधीजी विचार करें और जमनालालजी उसे अमल में लायें, ऐसा उनका रिश्ता था। आज जमनालालजी के कुछ पत्र देख रहा था। एक पत्र मे उन्होने लिखा है, 'गाधीजी का मार्ग-दर्शन हमें उत्तम मिला है। उनके बताये मार्ग से यदि निष्काम जन-सेवा की तो इसी जन्म मे मोक्ष को पा सकेंगे। इसी जन्म मे मोक्ष न प्राप्त हुआ तो भी कोई चिता की बात नही। अनेक जन्म लेकर सेवा करते रहने मे भी आनद है। बुद्धि शुद्ध रहे तो बस है।" अपनी दैनदिनी में उन्होने यह लिखा है।

वर्धा की सेवा उन्होने कितने प्रेम से की! केवल स्वदेशी-धर्म के लिए उन्होने वर्धा पर प्रेम किया। तुलसी-रामायण मे से भरत का चरित्र उन्हें बहुत अच्छा लगता था। गाधीजी को भी वह बहुत प्रिय था। अपने देश का 'भारतवर्ष' नाम भी भरत से सबद्ध है। राम के पास रहने को न मिला,

फिर भी भरत राम का नाम लेकर उनका काम करता रहा। यह राज्य राम का है, ऐसा मानकर वह उसे चलाता था। कवि ने वर्णन किया है—रामचद्र वन में गये। तपश्चर्या करके कृश बने। भरत अयोध्या में रहकर ही तपश्चर्या ने कृश बना। एक की तपश्चर्या वन में हुई, दूसरे की नगर में। "रामचन्द्र वनवास पूरा करके अयोध्या लौट आये। भरत से मिले। तब यह नही पहचाना गया कि वन से आया हुआ कौन है और नगर से आया हुआ कौन है।" ऐसा यह भरत का चरित्र उन दोनो ने अपने सामने आदर्शरूप रखा था। अब जमनालालजी गये और गाधीजी भी गये हैं। वर्धा के हम और आप नागरिक, जिनकी उन्होंने निरंतर सेवा की, उनके पीछे उनकी पुण्य-तिथि का दिन मना रहे हैं। इसमें उनके लिए हम कुछ भी नही करते। वे तो अपने उत्तम कर्मो से ही पुण्यगति को पा गये हैं। हम अपनी चित्तशुद्धि के लिए यह सब करते है।

जमनालालजी और गाधीजी दोनो ने जाति, धर्म आदि किसी प्रकार के भेद न रखते हुए मनुष्य-मात्र सब एक हैं, ऐसा समझकर सेवा की। गरीबो से एकरूप होने का निरतर यत्न किया। "परहित बस जिनके मन माही, तिन कहु जग दुर्लभ कछु नाही।"—तुलसीदासजी के इस वचन के अनुसार परहित का आचरण करके दुनिया का सबकुछ उन्होंने साध्य किया। ऐसे ये दो आदर्श पुरुष हमारे सामने ही होगये।

हम अपना स्वार्थ सम्हालें, ऐसी साधारण मनुष्य की भावना होती है। लेकिन कौन-सा स्वार्थ तुम सम्हालोगे? शरीर एक दिन छोडकर जाना ही है तो वह लोक-सेवा में चदन की तरह घिसवाना चाहिए। जबतक चदन घिसता नहीं तबतक सुगंध नहीं निकलती। चदन यदि घिसेगा ही नही तो फिर सुगंध कहा? तब दूसरे पेड और चदन में अतर ही क्या? हमने यदि सेवा न की तो मनुष्य-जन्म में आकर क्या साधा? खाने-पीने और मजा करने में ही यदि सार्थकता मान ली तो फिर जानवर और मनुष्य में क्या फर्क रहा? महापुरुषों के नाम हम लेते हैं? वह क्यो? इसीलिए कि वे अपनी देह की चिता छोडकर सारी दुनिया के हित की चिंता करते थे। हर रोज शाम

को सोने से पहले विचार करना चाहिए कि आज मैंने अपनी देह के लिए तो कई काम किये हैं, पर दुनिया के लिए क्या किया है ? क्या किसी बीमार की सेवा की है ? या कहीकी गदगी साफ की है ? या किसी दुखी को सुख दिया है ? या किसीको कुछ मदद दी है ? इस तरह का विचार छोटे लडको, को बूढो को, युवको को, स्त्री-पुरुष सबको करना चाहिए ? दिनभर में परोपकार का कुछ काम न किया होगा तो वह दिन बेकार गया, ऐसा समझना चाहिए और कुछ-न-कुछ सेवा करके ही सोना चाहिए।

मेरी आप सब लोगो से प्रार्थना है सब अपना जीवन परोपकार मे लगा दें और लोगों से यह कहलवाए कि "यह तो मर गया, लेकिन हमारे लिए घिसकर मर गया।"

जमनालालजी-श्राद्ध-दिन,
गोपुरी ११ फरवरी, १९४८

'गाधीजी को श्रद्धाजलि' से—

देह आत्मा के विकास के लिए है, परन्तु जिनका आत्मा विशेष उन्नत हो जाता है, उनके विकास के लिए देह में पर्याप्त गुंजाइश नही होती। उनका वह विशाल आत्मा देह के माप में समाता ही नही। तब देह को फेंककर देह-रहित अवस्था में ऐसे आत्मा अधिक सेवा करते हैं। ऐसी स्थिति जमनालालजी की हुई है। कम-से-कम मैं तो देख रहा हू कि उन्होंने आपकी और मेरी देह में प्रवेश किया है। ऐसी मृत्यु जीवित मृत्यु है। मृत्यु भी जीवित हो सकती है और जीवन भी मृत हो सकता है। जीवित मृत्यु बहुत थोडो की ही होती है। वैसी यह जमनालाल की मृत्यु है।

—विनोबा